अपराधी

[मौलिक सामाजिक उपन्यास]

लेखक—

श्री० यदुनन्दनप्रसाद श्रीवास्तव

प्रकाशक—

'चाँद' कार्यालय,

इलाहाबाद

पहला संस्करण ३,०००] [मूल्य २||) रु०

दो शब्द

श्व-साहित्य में आदर्शवाद (Idealism) और यथार्थवाद (Realism) का द्वन्द्व मचा हुआ है। आदर्शवादी यथार्थवादी को और यथार्थवादी आदर्शवादी को चिन्त्य शब्दों में याद करते हैं। इस आन्दोलन के प्रभाव से हिन्दी-साहित्य भी परेशान है। जिस तरह भक्त अपने उपास्य देव को ही पूर्णता का एकमात्र अवतार मानता है, उसी तरह साहित्य-सेवियों ने भी यथार्थवाद और आदर्शवाद को अपना-अपना उपास्य देव क़ायम कर रक्खा है। साहित्य की सार्वाङ्गिक उन्नति के लिए यह मनोवृत्ति घातक सिद्ध होती है।

आदर्शवाद और यथार्थवाद एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं, प्रत्युत वे एक-दूसरे के पूरक हैं। जिस तरह मनुष्य के दोनों पैर शरीर के सम्पूर्ण भार को सँभालने के लिए आवश्यक होते हैं, और उनमें से एक के भी ख़राब होने से मनुष्य लँगड़ा हो जाता है, उसी तरह आदर्शवाद और यथार्थवाद साहित्य तथा शिल्प के दो आधार-स्तम्भ हैं, और साहित्य की समृद्धि के लिए दोनों की उन्नति आवश्यक है।

आदर्शवाद सामाजिक उन्नति को अपना लक्ष्य बनाता है। आवश्यकता पड़ने पर आदर्श व्यक्ति को, अत्यधिक कष्ट झेलकर भी, सामाजिक मर्यादा की रक्षा करनी पड़ती है। सामाजिक वेदी पर

अपने व्यक्तित्व की बलि चढ़ा देना ही आदर्श पुरुष या स्त्री का कर्त्तव्य होता है। उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होना एकदम सहज बात नहीं है, इसके लिए तपस्या करनी पड़ती है। जिसकी तपस्या जितनी ही प्रखर और तीव्र होगी, वह व्यक्ति उतना ही उन्नत समझा जायगा तथा इस तरह के तपस्वियों की संख्या जिस समाज में जितनी ही अधिक होगी, वह समाज उतना ही उन्नत होगा। इस उद्देश्य को सम्मुख रख, आदर्शवादी लेखक अपने नायक को नाज़ुक और तीक्ष्ण परिस्थितियों में डालकर उनसे सामाजिक नीति-बन्धनों का प्रतिपालन कराया करते हैं। साधारण मनुष्यों के लिए इस तरह के आदर्श-चरित्र पथ-प्रदर्शक का कार्य करते हैं।

किन्तु आदर्शवाद जहाँ समाज को उच्चतम शिखर पर पहुँचाने का प्रयत्न करता है, वहीं वह व्यक्ति-विशेष की चिन्ता बिलकुल नहीं करता। आदर्श-लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में व्यक्ति-विशेष को किन अड़चनों का सामना करना पड़ता है, वे अड़चनें कभी-कभी कितना कठोर, निर्मम और असानुषी रूप धारण करती हैं, और इस चक्की में पिसकर आदर्श की ओर आगे बढ़ना तो दूर, वह व्यक्ति किस प्रकार पथ-भ्रष्ट होकर, साधारणत्व की सीढ़ी से भी नीचे गिर पड़ता है एवं किस प्रकार समाज पर इसकी प्रतिक्रिया होती है—इन बातों की ओर आदर्शवादी लेखक का ध्यान नहीं जाता। यह उसकी क्षेत्र-परिधि के बाहर की बात है। समाजोन्नति के इस भाग का भार यथार्थवादी लेखक के सिर पर रहता है। आदर्शवादी से छूटे हुए इस कार्य को यथार्थवादी पूरा करता है।

समाज की इस परिस्थिति में, जब उसके आदर्श प्राचीन, निर्जीव

और इसीलिए निर्मम हो उठते हैं, तब यथार्थवाद की आवश्यकता पड़ती है और इस अवसर पर यथार्थवाद के द्वारा समाज की अधिक सेवा होती है। आदर्शवाद के इस निर्मम आघात से व्यक्ति को बचाने के लिए, समाज के कठोर प्रतिबन्धों की अव्यावहारिकता के परिमाण के स्पष्टीकरण के लिए तथा परिस्थितियों के अनिवार्य सङ्घर्ष के दारुणत्व को दिखाने के लिए यथार्थवाद का अवतार होता है।

आदर्शवाद के नायक के सामने परिस्थिति क्रीत-दासी की तरह आज्ञाकारिणी बनी रहती है; सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक प्रतिबन्धों के समूह उसके उदात्त भाव को और भी अधिक प्रखर और दिव्य बनाते हैं। ऐसा बोध होता है कि आदर्शवादी नायक एक विजिगीषु की तरह सब दिशाओं पर अपनी प्रभुता जमाने के लिए, दिग्विजयी सेना को साथ ले, अपनी राजधानी से बाहर निकलता है। मार्ग में उसे कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है अवश्य, किन्तु उन्हें अतिक्रम करने में उसे विशेष तकलीफ़ नहीं होती। इसके विपरीत यथार्थवादी नायक विजिगीषु नहीं, एक साधारण मनुष्य होता है। उसका भी चरित्र उदात्त होता है। गुणों में आदर्शवादी विजिगीषु से वह किसी क़दर कम नहीं होता। किन्तु यह सब होते हुए भी वह एक साधारण मनुष्य होता है; गुण-दोषमयी सृष्टि का ही वह एक अङ्ग है। उसके पास अति प्राकृतिक या देवत्व विशिष्ट शक्तियों का विशेष संग्रह नहीं होता। प्राकृतिक अत्याचारों या पारिस्थितिक प्रतिकूलताओं का निवारण वह अपने मानव-सुलभ साधनों से ही करता है। जब तक उसके साधनों और

शक्तियों का अपचय नहीं होता, तब तक वह आधिदैविक प्रहारों के निवारण की चेष्टा करता है। किन्तु जब वह परास्त हो जाता है, तब निःशक्त और निश्चेष्ट हो, उन्हीं की गोद में सो जाता है। फिर वह नहीं जानता कि ये आधिदैविक शक्तियाँ उसे कहाँ लिए जा रही हैं।

यहाँ यह पूछा जा सकता है कि काव्य के लिए इन दोनों मार्गों में कौन अधिक प्रशस्त और उचित होगा? हमारी यह दृढ़ धारणा है कि आदर्शवाद और यथार्थवाद दोनों ही काव्य के लिए आवश्यक और उपयुक्त हैं। दोनों से रसों की उद्भावना एक-सी हो सकती है। कुशल कृतविद्य लेखक दोनों में समान भाव से ख्याति प्राप्त कर सकते हैं। टॉलसटॉय का 'रिज़रेक्शन', विक्टर ह्यूगो के 'लॉ मिज़रेबुल' से किसी क़दर कम नहीं है। इसी तरह कालिदास की 'शकुन्तला' और भवभूति के 'उत्तर रामचरित्र' से इब्सन का 'डॉलस हाउस' या 'गोस्ट' और ब्रीयो का 'डैमेज्ड गुड्स' या 'मेटरनिटी' किसी बात में कम नहीं हैं। अनातोल फ़्रान्स के 'थाई' में नग्न स्त्रियों तक का वर्णन है, लेकिन उसे पढ़कर शायद ही किसी पाठक के मन में कुविचार उत्पन्न हों।

प्रस्तुत पुस्तक तथा इसके पात्रों के विषय में विस्तृत विवेचन न कर, मैं केवल इतना ही कहूँगा कि इसकी नायिका 'सरला' को शरीर से पतित होने पर भी मैंने उसका मानसिक पतन नहीं होने दिया है। शुरू से आख़िर तक उसके मन में पाप-वासना या पापासक्ति नहीं आने पाई है। अन्त में जब वह राजा साहब पर मोहित होती है, तब भी सम्भोग-लालसा या आसक्ति से प्रेरित होकर नहीं।

पहला परिच्छेद
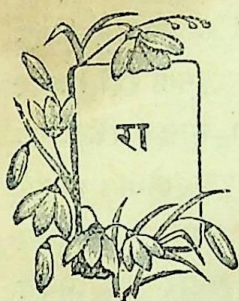
मगढ़ की आबादी लगभग उन्नीस हज़ार है । साधारणतया एक मुहल्ले का समाचार दूसरे मुहल्ले में नहीं पहुँचता । किसी के यहाँ पुत्र-पुत्री होने एवं विवाह तथा पूजा-पाठ का समाचार सम्बन्धियों तथा परिचितों के सिवाय किसी को नहीं मिलता; किन्तु रात को पण्डित बिहारीलाल जी की भतीजी सरला के ग़ायब होने का समाचार प्रातःकाल साढ़े पाँच बजे ही सारे शहर में फैल गया था ।

बात यह थी कि रात को जब आततायी अपनी लालसा-पूर्ति करने के उपरान्त सरला को अन्धकार में छोड़कर ग़ायब हो गए, तब सरला पहले तो तीन-चार घण्टे अर्द्धमूर्च्छिता-वस्था में वहीं पड़ी रही । हाँ, जब वह कुछ सचेष्ट हुई,

तब उसे घर पहुँचने की चिन्ता हुई; किन्तु वह तो परदे-नशीन औरत थी, यदि उसे कोई अपने घर से निकलने वाली सड़क पर भी छोड़ देता, तो भी उसके लिए घर पहुँचना कठिन था। तब इस जङ्गल से रात के अन्धकार में घर पहुँचना क्या उसके सामर्थ्य की बात थी ? सबेरा होने पर घर पहुँचने से परिणाम क्या होगा, यह उसे अच्छी तरह मालूम था; परन्तु वह करती क्या ? यदि परिणाम के रोकने की शक्ति दुर्बल मानव-जाति के हाथ में होती, तो क्या कभी किसी माता का पुत्र उसकी गोद सूनी कर जाता ? अस्तु, सरला भी पागल की तरह इधर-उधर घूमती रही। इधर रात धीरे-धीरे बीत चली। उसे क्या मालूम कि उसके बीतते ही एक निरीह बालिका पर वज्रपात होगा। मालूम होने पर भी क्या वह सरला के लिए रुकती ? इसीलिए लोग कहते हैं कि प्रकृति के नियम बड़े कठोर एवं निर्मम होते हैं।

नित्य-नियमानुसार पाँच बजे पण्डित बिहारीलाल उठे। दासी आई, और उसने घर बुहारना शुरू किया; पर सरला उसे कहीं दिखाई न पड़ी। उसने तमाम घर ढूँढ़ा, पर कहीं पता न चला। लाचार होकर उसने पण्डित जी को सूचना दी। वे बहुत चकराए। सब जगह ढूँढ़ा गया, सन्दूक़-झाँपी तक खोजी गईं कि शायद उन्हीं में मिल जाय; परन्तु वह न मिली। तब पण्डित जी ने रमानाथ को बुलवाकर धीरे से उनके

कान में सब बातें कहीं और पैर पकड़कर इस समाचार को गुप्त रखने का अनुरोध किया। पर यह बातें भी कहीं गुप्त रह सकती हैं? रमानाथ के पण्डित जी से बातें कर बाहर आने के पेश्तर ही यह बात विद्युत्-गति की भाँति मुहल्ले भर में पहुँचकर मुहल्ले की सीमा उल्लङ्घन करने की चिन्ता में थी।

पण्डित जी की दासी जब रमानाथ को बुलाने गई, तो वह सीधे रमानाथ के यहाँ न जाकर एक दूसरे पड़ोसी के यहाँ घुस गई। उस घर की दासी अपने काम में लगी हुई थी। पण्डित जी की दासी ने जाकर उसके कान में कहा—कुछ सुना है? हमारी मालकिन सरला का कहीं पता नहीं है; मुझे तो मालूम होता है कि रमानाथ बाबू ने ही कहीं......!

दूसरी दासी इतने से ही समझ गई। वह भौं चढ़ाकर, महान् आश्चर्यपूर्ण भाव दिखाती हुई, .खूब गम्भीरता से बोली—क्या जाने बाबा, आजकल जो न हो, सो थोड़ा है।

पण्डित जी की दासी ने उसके मुँह पर हाथ रखकर कहा—हाँ-हाँ, धीरे बोल। अभी बात ज़रा फैलने न पाए। मैं ही पकड़ी जाऊँगी। उसने उत्तर दिया—नहीं, मैं क्यों कहने लगी? इससे मुझे क्या मिलेगा? लेकिन यह भी कह रखती हूँ कि यह बात बिना फैले न रहेगी।

इतनी बातचीत होने के बाद पण्डित जी की दासी रमानाथ को बुलाने चली गई। इधर दूसरी दासी घर के कामों में मन लगाने का प्रयत्न करने लगी, किन्तु उसका मन

न लगा। यदि बात यहीं तक रहती, तो भी शायद वह अपने पेट की बात किसी दूसरे से न कहती, लेकिन कुछ देर के बाद उसका पेट फूलने लगा। अधिक देर होने से सम्भवतः उसका दम घुटने लगता, इसलिए प्राण-रक्षा के हेतु उसने अपनी मालकिन को जगाकर यह बात कह दी, और उसे गुप्त रखने का अनुरोध भी कर दिया, तब जाकर कहीं उसका जी हलका हुआ। इसी प्रकार नौकरानी से मालकिन और मालकिन से मालिक, होते-होते बात घण्टे भर में ही सारे शहर में फैल गई और जब तक रमानाथ पण्डित जी से बात कर बाहर निकले, तब तक पण्डित जी के दरवाज़े पर पड़ोसियों की भीड़ लग गई थी। ख़ैर, इस भीड़ में से कई टोलियाँ बन गईं। इस कार्य में सहायता के लिए किसी से अनुरोध करने की आवश्यकता न पड़ी। यद्यपि लोग नित्य-कर्म तक से निवृत्त न हुए थे, फिर भी परोपकार-भाव से प्रेरित होकर वे स्वयं सेवा करने पर कटिबद्ध हो गए।

सरला कहीं लुकी-छिपी तो थी नहीं, उजाला होने पर वह नदी के इस पार आकर घर का रास्ता ढूँढ़ रही थी; स्वयं-सेवकों की एक टोली से उसकी शीघ्र ही मुलाक़ात हो गई। इस समय इस टोली के अधिकांश लोगों को वही मज़ा आया, जो शिकारी को छिपे हुए शिकार के मिलने पर या सैनिकों को दुश्मन के किसी गुप्त-स्थान का पता मिलने पर आता है। किसी ने कहा—देखो, भागने न पाए; किसी ने

कहा—इसके हाथ-पैर बाँध दो; किसी ने कहा—इसे टोली के बीच में रखकर ले चलो। आख़िर बड़ी बहस के बाद तय पाया कि इसको सबसे आगे कर इसका जुलूस निकालना चाहिए। पापी को कुछ न कुछ दण्ड तो दिलाना ही उचित है। ख़ैर, सरला का जुलूस निकला। लोगों की दृष्टि सरला पर बँधी हुई थी। शायद महात्मा गाँधी के जुलूस पर भी लोगों की निगाहें इस उत्सुकता से न पड़ती होंगी!

इस झाँकी के लिए प्रायः प्रत्येक घर की महिलाएँ परदे का ख़्याल कुछ देर के लिए छोड़कर बाहर झाँक लेती थीं। वे यह सोचकर कि उन पर किसी की निगाह न पड़ेगी, दरवाज़े या खिड़की से ज़रा उचककर देखतीं; किन्तु देखते-देखते विभोर हो जाने के कारण ज़रा देर लग जाती। कुछ महिलाएँ घूँघट खींचकर बाहर ही निकल पड़तीं, लेकिन देखने के लिए जब घूँघट उठातीं, तो यह ध्यान ही न रहता कि चेहरा खुला जा रहा है।

एक ताँगे पर कुछ सम्भ्रान्त महिलाएँ कहीं पूजा करने जा रही थीं, उन्होंने पहले तो परदे के अन्दर से ही देखने की कोशिश की, लेकिन तृप्ति न हुई; धीरे से एक ने परदे का एक छोर उठाया। दूसरी ने इसी प्रकार दूसरा छोर उठा दिया। एक मसख़रा स्वयंसेवक इस बात को देखकर चुप न रह सका। उसने कहा—बाई जी, परदे को निकाल ही न डालो, उससे लाभ ही क्या है?

लोगों की आँखों में भी कितनी ताक़त होती है, इसे सब लोग नहीं जानते। जिस पर कभी लोगों की आँखें उठी हों, वही इसका मज़ा जान सकता है। जब विजयी सेनापति विजय से लौटता है; जब किसी खिलाड़ी टीम का कप्तान शील्ड या कप लेकर वापस होता है; जब कोई नेता जेल से छूटकर वापस आता है, तब उससे पूछिए कि लोगों की निगाहों के पड़ने से उसके मन में कैसी मीठी गुदगुदी पैदा होती है। जब कोई चोरी या गिरहकटी के लिए पकड़ा जाता है; जब कोई ओवरकोटधारी बाबू बिना टिकट के रेल में सफ़र करते रोके जाते हैं; जब कोई भलेमानस रुपया ग़बन करते या रिशवत लेते देख लिए जाते हैं, तब जिस समय पुलिस हथकड़ी लगाकर उन्हें आम-रास्ते से निकालती है, तब उनके दिल से पूछिए कि वे ईश्वर से कितनी प्रार्थना करते हैं कि लोगों की और ख़ासकर परिचितों की निगाह उन पर न पड़े।

सरला पर भी आज जो निगाहें पड़ रही थीं, उनमें कम घृणा या क्रोध का भाव न था। फिर सरला एक परदेनशीन महिला थी। घृणा, क्रोध, आनन्द या उल्लास—किसी भी प्रकार की निगाहों के सहने की उसे आदत न थी। ऐसी दशा में उसे इन निगाहों से कितना कष्ट होता होगा, यह लिखकर प्रकट नहीं किया जा सकता, अनुमान ही किया जा सकता है। आश्चर्य तो यही है कि सरला उन्हें सह गई।

रास्ते में सब जगह जिसे देखो वही आज सरला की चर्चा में रत था। पण्डित ललितकिशोर, जो अपनी ५० वर्ष की अवस्था में एक रउताइन के प्रेम में फँस गए थे और प्रत्यक्ष-रूप से उसे अपने घर में रख लिया था, अपनी उसी प्रेमिका से कह रहे थे—अब घोर कलिकाल आ गया। इतनी उमर हुई, मगर ऐसी दुष्टा लड़की देखने में न आई थी। इसने कुल का ज़रा भी लिहाज़ न रक्खा, पण्डित बिहारीलाल की इस बुढ़ापे में नाक उतार ली। बेचारे विवाह करने के विचार में थे, अब कौन ऐसे कलङ्कित कुल में अपनी लड़की देगा ?

उनकी प्रेमिका ने कहा—और क्या बाबा, मेरी भी उमर लगभग चालीस-पचास बरस होने को आई, किन्तु इस तरह की बेहयाई का ध्यान भी नहीं किया। भगवान् जानते हैं, मैंने तुम्हारे पास आने पर किसी पर-पुरुष का मुँह तक नहीं देखा है।

कोई बाबू साहब एक रण्डी के कोठे पर से सरला के भोले-भाले मुख की ओर लालसापूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। उनकी बाई जी को यह बात ज़रा खटक गई। उसने डाँटकर बाबू साहब से पूछा:—क्या देख रहे हो ?

बाबू साहब डर गए, फिर उन्होंने सँभलकर जवाब दिया—यही देख रहा हूँ कि लड़की देखने में कैसी भोली-भाली है, लेकिन इसके पेट में कितना पाप भरा है !

रण्डी ने ताने से कहा—हम लोग तो बेइज्जत रण्डियाँ हैं, हुजूर! अपने घर का हाल आपही भलेमानस लोग जानिए। मगर ऐसी निर्लज्जता से अकड़कर लोगों के सामने तो हमसे भी नहीं चला जाता!

इसी प्रकार प्रत्येक घर, गली और कूचे में आज यही चर्चा छिड़ रही थी और हरेक घर के लोग अपना-अपना काम-धाम छोड़कर एक नज़र सरला को देखने के लिए तरस उठते थे!!

आख़िर ले-देकर सरला अपने घर के दरवाज़े पर पहुँची। वहाँ पहुँचकर वह अचानक रुक गई। उसकी इच्छा हुई कि भागकर वह भीतर चली जाय और इन क्रूर शिकारियों से अपनी रक्षा करे। अपनी इस इच्छा को पूरी करने के उद्देश्य से ज्योंही वह आगे बढ़ी कि पण्डित बिहारीलाल की उग्र मूर्ति सामने आ गई, और उसने गुस्से से डाँटकर कहा—वहाँ कहाँ घुसी पड़ती है? वहाँ अब तेरे लिए स्थान नहीं है। इतनी देर से हृदय के अन्तस्तल में जलती हुई विषाद की चिता अब रुकी न रह सकी—वह रो पड़ी!!

पण्डित बिहारीलाल का रुख़ देखकर एक वृद्ध सज्जन आगे बढ़े, और गम्भीर भाव से कहने लगे—सरला के सम्बन्ध में जो कुछ जातीय निर्णय करना हो, वह इसी समय हो जाना चाहिए। इसमें विलम्ब करने से कोई लाभ नहीं दीखता। जिन लोगों को बुलाना आवश्यक हो, उन्हें

इसी समय बुला लिया जाय। लेकिन किसी को बुलाने की आवश्यकता ही न पड़ी। समाज के सभी सम्मानित वयोवृद्ध व्यक्ति वहीं उपस्थित थे और इस पर विचार करने के लिए सभी उत्सुक थे। इसलिए उसी समय विचार कर डालने का निश्चय हुआ।

सब लोग पण्डित जो के दालान में बैठ गए। सरला से सब हाल पूछा गया। उसने कोई बात छिपाई नहीं—सब सच-सच बता दी; किन्तु अपने ऊपर आक्रमण करने वालों का नाम वह न बता सकी, क्योंकि रात के समय वह उन्हें ठीक-ठीक न पहचान सकी थी।

सब बातें सुन लेने पर सब लोग एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। बोलना तो सभी चाहते थे, लेकिन सबसे पहले बोलने के लिए कोई तैयार न था—रुख़ देखकर अपनी राय ज़ाहिर करने का सभी का इरादा था।

जब कई मिनट तक किसी ने कुछ न कहा, तब पण्डित ललितकिशोर ने हिम्मत करके कहना शुरू किया—सरला भ्रष्ट हो चुकी, इसमें तो अब शक रहा नहीं। अभी स्वयं उसने अपनी ज़बान से सब बातें क़ुबूल की हैं। तब ऐसी दशा में सनातन से जो होता चला आया है, वही होगा; वही हम लोगों को भी करना पड़ेगा।

पण्डित रामचन्द्र शास्त्री ने गम्भीरभाव से सिर हिलाते हुए कहा—अवश्य ही शास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार सरला

को जाति से अलग करना होगा। उसके साथ ही पण्डित बिहारीलाल को भी उससे सभी तरह का सम्बन्ध त्याग देना पड़ेगा। उनके कुल में तो दाग़ लग ही चुका, लेकिन इसमें उनका कोई दोष नहीं है, इसलिए उन्हें किसी प्रकार दण्डित करना अन्याय होगा।

शास्त्री जी के इतना कह चुकने पर पण्डित दीनदयालु शर्मा ने, जिनके तमाम शरीर में भस्म लगी हुई थी और रुद्राक्ष के दाने इधर-उधर बँधे हुए थे तथा शायद एकत्रित व्यक्तियों में ये सबसे अधिक धार्मिक व्यक्ति जान पड़ते थे, कहना शुरू किया—यह सब ठीक है, सरला को जाति में रखने के लिए अब कौन कह सकता है? हज़ार कलि-युग हो, लेकिन धरम-करम अभी एकदम उठ नहीं गया है। केवल इतने निर्णय से तो काम नहीं चलेगा—यह भी तय करना होगा कि सरला अब रहेगी कहाँ? यदि उसे घर में ही रहने दिया गया, तो फिर पण्डित बिहारीलाल के हाथ का पानी कौन पिएगा? अस्तु, अच्छा तो यही होगा कि सरला को कहीं काशी-वृन्दावन भेज दिया जाय। धर्म-प्राण पण्डित दीनदयालु शर्मा की बात सुनकर सभी लोग विचार में मग्न हो गए।

पण्डित बिहारीलाल का सरला के प्रति यथेष्ट स्नेह था, लेकिन उसे घर में रख लेने से उनके विवाह की सुविधा में भारी विघ्न उपस्थित होने की सम्भावना थी। उन्हें विश्वास

था कि उसे घर से बाहर निकाल देने पर कुछ दिनों के बाद लोग इस घटना को भूल जायँगे, और तब रुपए के बल से किसी ग़रीब कन्या का पाणिग्रहण कर लेना उनके सरीखे उच्च गोत्रीय ब्राह्मण के लिए कठिन न होगा। किन्तु सरला घर में ही रह गई तो लोग इस बात को आजीवन न भूल सकेंगे, और उनका कलङ्क धुलना कठिन हो जायगा।

इन्हीं सब बातों पर अभी तक वे मन ही मन विचार कर रहे थे। पण्डित दीनदयालु की बातों से प्रसन्न होकर उन्होंने कहा—आप लोग चाहे जो कुछ भी निर्णय करें, पर अब मैं उस कलङ्किनी को अपने घर में स्थान नहीं दे सकता।

कुछ लोगों को यह बात बड़ी कठोर जान पड़ी, किन्तु इतने सम्मानित तथा वयोवृद्ध लोगों के विरुद्ध उनकी ज़बान न खुली। वे खिन्न-मन से उदासीन भाव धारण किए बैठे रहे; पर पण्डित दीनदयालु का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। उनकी धार्मिक आत्मा को धर्म की विजय तथा पापी को समुचित दण्ड पाते देखकर परम सन्तोष हुआ।

रमानाथ अभी तक एक कोने में विचार-मग्न हो बैठे थे। इस सभा में उन सरीखे नवयुवकों का मुँह खोलना सख़्त बेअदबी समझी जाती, और उनकी बात का वज़न भी कुछ न होता; किन्तु इस बार वे चुप न रह सके। उन्होंने कहा—मेरी समझ में नहीं आता कि सरला ने क्या अपराध

किया है ! वास्तविक दोषी तो उसे पकड़ ले जाने वाले ही हैं। मान लीजिए, आप ही के मुँह में जबरदस्ती दो-चार आदमी मिलकर गोश्त का टुकड़ा डाल दें, तो क्या आप पतित हो जायँगे ?

पण्डित दीनदयालु ने सरोषभाव से डपटकर कहा—क्या अशुद्ध बात मुँह से निकाल रहे हो। शिव ! शिव !! आजकल के छोकरे एकदम नास्तिक हो गए।

उनकी बात पर ध्यान न देकर रमानाथ कहने लगे—उन आततायियों को दण्ड न देकर आप बेचारी एक अबला को दण्ड देने जा रहे हैं। यह तो ठीक उलटी बात हुई। आप लोग चोर को दण्ड न देकर, उसे दण्ड दे रहे हैं, जिसकी चोरी हो गई है ! क्या यह घोर अन्याय नहीं ?

पण्ड़ित ललितकिशोर ने कहा—भैया, थोड़े दिन सबर करो। तुम्हारे पिता तो चल ही बसे, दस-पाँच साल में हम लोग भी चल देगें। तब क्रिस्तान होकर सरला से विवाह कर लेना ; लेकिन हम लोगों के जीते जी तो ऐसी बातें न हो सकेंगी।

रामचन्द्र शास्त्री ने भी कुपित होकर कहा—हम लोग तो सनातन से चली आई बात पर चौका नहीं लगा सकते।

नवयुवक-दल सरला की निस्सहायावस्था की बात सोचकर द्रवित हो उठा था, किन्तु रमानाथ की धृष्टता देखकर उनमें से दो-एक का मन तिलमिला उठा। ललित-

किशोर जी का नवयुवकों के प्रति लाञ्छन सुनकर उसे झूठ ठहराने के लिए एक अर्द्धशिक्षित नवयुवक बोल उठा—रमानाथ जी, बलिहारी है आपकी समझ पर ! सरला का दोष ही इनकी समझ में नहीं आ रहा है ! अरे महात्मा ! किसी भले घर की लड़की रातभर बाहर रहे, और न जाने क्या-क्या करवाए, फिर भी आप कहते हैं कि कुछ अपराध नहीं ! आश्चर्य है !!

एक दूसरे नवयुवक ने कहा—और चोरों का उदाहरण भी आपने ख़ूब ही दिया। अरे भाई ! अपना दोष कोई क़ुबूल करता है ? चोर-ओर नहीं ले गए थे—वह अपने मन से बाहर गई थी। रोज़ इसी तरह बाहर जाती थी। कहाँ जाती थी, यह भी सबको मालूम है—आप भी जानते हैं। कहिए तो मय गवाह-सुबूत के बतला दूँ। लेकिन इस झञ्झट से लाभ क्या ? अरे बाबा, यह सब नख़रा है। यार के यहाँ से लौटने में आज किसी ख़ास वजह से देर हो गई होगी।

पण्डित दीनदयालु ने कहा—चोर ले गए, इसका सुबूत तुम्हारे पास क्या है ? फिर पुरुष-जाति इस बारे में सदा से स्वतन्त्र है, उसे दोष नहीं लगता। दोष हो भी तो उनका पता कहाँ है, जो उनको सज़ा दी जाय।

पहले नवयुवक ने कहा—आजकल बाबू रमानाथ को कोई काम-धाम नहीं है। बेकार बेचारे की तबीयत ऊबती

होगी। पता लगाने का काम उन्हीं को दे दिया जाय, कुछ जासूसी भी सीख जायँगे। रमानाथ चुप रहे। अधिक बोलना व्यर्थ था। उनकी बात कोई सुनता नहीं। अस्तु—

रमानाथ को छोड़ सर्व-सम्मति से यह तय पाया कि सरला भ्रष्टा है, अतएव वह जाति से अलग कर दी जाय, और घर में भी वह न रह सके। सरला के सामने इस समय घोर अन्धकार था। अपना कहने के लिए इस समय उसके पास कुछ न था। समाज ने इस असहाय अबला को हिंसक संसार की भेंट कर दिया, जहाँ उसे निगलने के लिए हज़ारों सभ्य घड़ियाल मुँह बाए बैठे थे!
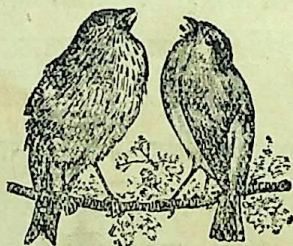
दूसरा परिच्छेद
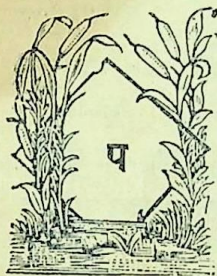
पण्डित बिहारीलाल की उम्र ५० वर्ष से कम न थी। बाल पकने लगे थे; लेकिन अभी काले बालों की संख्या अधिक थी। ग़रज़ यह कि बुढ़ापे का अधिकार बालों पर न जम सका था। हाँ, कमर अवश्य ही कुछ झुक-सी गई थी। लेकिन इससे क्या, पण्डित जी ख़ूब तनकर चलते और इस तरह बुढ़ापे के असर को रोक रखने का प्रयत्न करते थे। लेकिन एक बात से पण्डित जी बड़े लाचार थे—दाँतों ने उनका साथ न दिया। सब बातों के लिए तो पण्डित जी किसी न किसी तरह की सफ़ाई दे देते थे, पर दाँतों के टूट जाने का कोई माक़ूल सबब न बता सकते थे। कृत्रिम दाँतों से पण्डित जी को बहुत परहेज़ था, इसलिए उनकी सहायता भी न ली जा सकी। बातचीत में पण्डित जी अपनी उम्र ४० वर्ष ही बताया करते और २० वर्ष के पट्ठों से अपने को किसी क़दर कम न

समझते थे। उनका कहना था कि उन्होंने काफ़ी घी-दूध

खाया है, इसलिए उनमें आजकल के जवानों से कहीं ज़्यादा क़ूवत है। आजकल भी पण्डित जी खाने-पीने में कमी न करते थे। बारह महीनों में लगभग साढ़े ग्यारह महीने वे च्यवन-प्राश अवलेह का सेवन करते।

पण्डित जी को और तो कोई कष्ट न था, लेकिन इस प्रौढ़ावस्था में गृहिणी का न होना उन्हें बहुत अखरता था। हज़ार घी-दूध खाने पर भी उनका शरीर अस्वस्थ रहा करता। कभी कमर में दर्द है, तो कभी सिर में; कभी बद-हज़मी की शिकायत है, तो कभी हरारत ही हो आती है। ऐसे समय में यदि एकाध हृष्ट-पुष्ट घरनी रहती, तो बेचारे पण्डित जी की सेवा-शुश्रूषा तो किया करती। अब पण्डित जी की केवल एक ही वासना शेष रह गई है। वह यह कि जो कुछ दस-पाँच वर्ष जीना है, उसमें पत्नी-सुख से वञ्चित न रहा जाय। इसीलिए पहले तो पण्डित जी ने बुढ़ापे के लक्षणों को दूर ठेलकर यौवन लाने का प्रयत्न किया; फिर किसी ऐसी लड़की की तलाश में रहने लगे, जिसके माता-पिता ग़रीब हों और जिसकी आयु साधारण वैवाहिक अवस्था को पार कर गई हो। इसी प्रश्न को लेकर आजकल उनके यहाँ विशेष चहल-पहल रहती है।

पण्डित जी के कुटुम्ब में पण्डित जी को छोड़कर केवल दो ही व्यक्ति थे। एक तो पण्डित जी की वृद्धा माता और दूसरी उनकी षोड़श वर्षीया विधवा भतीजी सरला।

पण्डित जी की माता की अवस्था लगभग ७५ वर्ष की होगी। उनमें अब चलने-फिरने तक की भी शक्ति न रह गई थी, और वे पण्डित जी के विशाल भवन की एक सुनसान कोठरी में पड़ी रहकर अपना सारा समय व्यतीत किया करती थीं। पण्डित जी भी आजकल घर से विशेष सम्बन्ध न रखते थे। दिन में केवल भोजन के लिए दो बार भीतर आते। गृहिणी-विहीन सूना घर उन्हें काटने दौड़ता था। घर में आते ही उनका रसिक मन भावी या भूत पत्नी की याद कर रो उठता था। इसलिए उन्होंने उस समय तक बाहर ही रहने का निश्चय-सा कर लिया था, जब तक कि इस नीरव, निरानन्द भवन के शून्य सिंहासन पर किसी रमणी-रत्न की प्रतिष्ठा न हो जाय।

इस प्रकार इस जन-शून्य विशाल भवन में सरला का ही एकमात्र अधिकार था। इसी एकान्त में उसका निरानन्द जीवन व्यतीत होता था। सरला असाधारण सुन्दरी थी। उसे पहले पहल देखने पर किसी कुशल चित्र-कार के खींचे हुए चित्र का ही आभास होता। यह हाड़-मांस की नारी-मूर्ति है, इस पर विश्वास करना कठिन हो जाता। और जब वास्तविक स्थिति तथा सरला की दशा का पता चलता, तब तो दर्शक के मुँह से अनायास ही निकल पड़ता कि इस सजीव चित्र का निर्माता अत्यन्त कुशल होने पर भी एकदम निष्ठुर है। नहीं तो वह इस

चित्र को इस प्रकार निर्मम एकान्त में परिवेष्टित होकर बिना पूर्ण विकसित हुए तथा अपने रूप, रस एवं मधुरता का संसार में बिना सिञ्चन किए ही विलीन होने की व्यवस्था क्यों करता ?

संसार की सभी वस्तुओं में किसी न किसी प्रकार की शक्ति रहती है, और शक्ति के लिए चुप रहना—निश्चल एवं निश्चेष्ट होकर बैठे रहना असम्भव है। शक्ति किसी न किसी चीज़ को लेकर कार्य करती है, खेलती है। इसी का नाम संसार है। इसी खेल के द्वारा नाना प्रकार के मङ्गल तथा अमङ्गल कार्य सम्पादित होते रहते हैं।

रूप में भी शक्ति होती है। रूप को लेकर किसी व्यक्ति का चुप बैठा रहना नहीं हो सकता। उसे लेकर भी किसी न किसी प्रकार का कार्य करना पड़ता है। रूप के द्वारा पुत्री के, पत्नी के, माता के, सखी के, परिचारिका के तथा अन्य कई प्रकार के काम होते हैं। किन्तु रूप के लिए जब कोई स्वस्थ कार्य नहीं रह जाता, तब वह रुद्ध-प्रवाह सरिता-धारा की तरह सड़कर अस्वाभाविक दशा में आ पड़ता है और किसी न किसी अमङ्गल की ही साधना करता है।

इस एकान्त में सरला का एक ही साथी था। वह था उसका रूप। अपने रूप की उच्छ्वास से वह स्वयं तरङ्गित हो-हो उठती। साथी रहने से आदमी अपने को कुछ बली समझने लगता है। इससे उसमें हिम्मत आती है, सहारा

मिलता है। किन्तु सरला के कोई साथी न था। न बोलना, न हँसना ; न सङ्गी न साथी। यदि दो-चार हित-कुटुम्ब या मुलाक़ाती थे भी, तो उनसे वर्ष में दो-चार बार ही मिलने का अवसर आता था। साल के बाक़ी ३६१ दिन उसे इस विशाल भवन की निस्तब्धता में काटने पड़ते थे।

एक दिन की बात है, पण्डित बिहारीलाल भोजन कर रहे थे। सरला परस रही थी। पण्डित जी यद्यपि धनी व्यक्ति थे, पर कान्यकुब्ज ब्राह्मण होने के कारण रसोई-दारिन न रख सकते थे। फलतः सरला को ही यह कार्य करना पड़ता था; और फिर जिस हिन्दू-घर में विधवा हो, वहाँ नौकर की आवश्यकता ही क्या ? विधवा का और काम ही क्या रहता है ? घर के काम-धन्धों में लगे रहकर समय बिताना, काम में ज़रा-सी ग़लती होते ही झिड़की सहना, यही तो दो-चार काम हिन्दू-विधवा के हैं। कुछ देर चुप रहने के बाद पण्डित जी ने कहा—देखो सरला, घर कैसा सूना हो गया है ! जिस दिन से तुम्हारी काकी का स्वर्गवास हुआ, उस दिन से घर की मानो रौनक़ चली गई।

सरला—चाची देवी थीं।

पण्डित जी—सच कहा है कि 'बिन घरनी घर भूत का डेरा।' मेरी तो उस दिन से घर में पैर देने की तबीयत ही नहीं होती।

सरला—काका, आप तो भला बाहर लोगों से मिल-जुल

चित्र को इस प्रकार निर्मम एकान्त में परिवेष्टित होकर बिना पूर्ण विकसित हुए तथा अपने रूप, रस एवं मधुरता का संसार में बिना सिञ्चन किए ही विलीन होने की व्यवस्था क्यों करता ?

संसार की सभी वस्तुओं में किसी न किसी प्रकार की शक्ति रहती है, और शक्ति के लिए चुप रहना—निश्चल एवं निश्चेष्ट होकर बैठे रहना असम्भव है। शक्ति किसी न किसी चीज़ को लेकर कार्य करती है, खेलती है। इसी का नाम संसार है। इसी खेल के द्वारा नाना प्रकार के मङ्गल तथा अमङ्गल कार्य सम्पादित होते रहते हैं।

रूप में भी शक्ति होती है। रूप को लेकर किसी व्यक्ति का चुप बैठा रहना नहीं हो सकता। उसे लेकर भी किसी न किसी प्रकार का कार्य करना पड़ता है। रूप के द्वारा पुत्री के, पत्नी के, माता के, सखी के, परिचारिका के तथा अन्य कई प्रकार के काम होते हैं। किन्तु रूप के लिए जब कोई स्वस्थ कार्य नहीं रह जाता, तब वह रुद्ध-प्रवाह सरिता-धारा की तरह सड़कर अस्वाभाविक दशा में आ पड़ता है और किसी न किसी अमङ्गल की ही साधना करता है।

इस एकान्त में सरला का एक ही साथी था। वह था उसका रूप। अपने रूप की उच्छ्वास से वह स्वयं तरङ्गित हो-हो उठती। साथी रहने से आदमी अपने को कुछ बली

समझने लगता है। इससे उसमें हिम्मत आती है, सहारा

मिलता है। किन्तु सरला के कोई साथी न था। न बोलना, न हँसना ; न सङ्गी न साथी। यदि दो-चार हित-कुटुम्ब या मुलाक़ाती थे भी, तो उनसे वर्ष में दो-चार बार ही मिलने का अवसर आता था। साल के बाक़ी ३६१ दिन उसे इस विशाल भवन की निस्तब्धता में काटने पड़ते थे।

एक दिन की बात है, पण्डित बिहारीलाल भोजन कर रहे थे। सरला परस रही थी। पण्डित जी यद्यपि धनी व्यक्ति थे, पर कान्यकुब्ज ब्राह्मण होने के कारण रसोई-दारिन न रख सकते थे। फलतः सरला को ही यह कार्य करना पड़ता था; और फिर जिस हिन्दू-घर में विधवा हो, वहाँ नौकर की आवश्यकता ही क्या ? विधवा का और काम ही क्या रहता है ? घर के काम-धन्धों में लगे रहकर समय बिताना, काम में ज़रा-सी ग़लती होते ही झिड़की सहना, यही तो दो-चार काम हिन्दू-विधवा के हैं। कुछ देर चुप रहने के बाद पण्डित जी ने कहा—देखो सरला, घर कैसा सूना हो गया है ! जिस दिन से तुम्हारी काकी का स्वर्गवास हुआ, उस दिन से घर की मानो रौनक़ चली गई।

सरला—चाची देवी थीं।

पण्डित जी—सच कहा है कि 'बिन घरनी घर भूत का डेरा।' मेरी तो उस दिन से घर में पैर देने की तबीयत ही नहीं होती।

सरला—काका, आप तो भला बाहर लोगों से मिल-जुल

कर दिल बहला लेते हैं। सोचिए तो, इस सूने घर में मेरे दिन कैसे कटते होंगे ?

पण्डित जी—क्या करूँ बेटी, तुम्हारा भाग ही बहुत खोटा है। नहीं तो मेरे साथ तुम्हें क्यों इस सूने घर में कष्ट उठाना पड़ता। मज़े में अपने घर रहकर ज़िन्दगी बिताती। अच्छा घर-बार देखकर ब्याह किया था, किन्तु तुम्हारे भाग्य ही में सुख न बदा था तो क्या करूँ ?

सरला—अकेला घर जैसे काटने को दौड़ता है—रो-रोकर दिन बिताती हूँ।

पण्डित जी—अवश्य ही तुम्हें बहुत कष्ट है, बेटी ! तुम्हारी उमर भी अभी ऐसी नहीं कि अकेली रहो। इन्हीं सब बातों पर विचार करके तो मैं बहुत कोशिश में हूँ कि तुम्हारी नई काकी आ जाय, तो तुम्हारा बोझ बहुत-कुछ हलका हो ; लेकिन कुछ जुगुत ही नहीं लगती है।

यह बातचीत हो ही रही थी कि एक व्यक्ति ने घर में प्रवेश किया। आगन्तुक का नाम था पण्डित रामलाल दुबे। वह दूर के रिश्ते में पण्डित बिहारीलाल का भतीजा होता था। उसकी अवस्था लगभग ३२ वर्ष की होगी।

उसने आते ही कहा—प्रणाम, फूफा ! भोजन हो रहा है क्या ? तब तो हम भी अच्छे वक्त पर आए। क्या कर रही हो बिटिया ?

"आओ रामलाल, बैठो भाई। कहो, क्या हाल-चाल

है। तुम तो रामलीला के पीछे आजकल बड़े परेशान हो रहे हो।"

रामलाल—हाँ फूफा, आजकल ज़रा फ़ुरसत कम मिलती है। आप अपना कुछ हाल-चाल तो सुनाइए। शादी का रङ्ग-ढङ्ग कहीं कुछ जमा कि नहीं ?

पण्डित जी—जी क्या बताऊँ बच्चा, इस शादी ससुरी के पीछे बड़ी परेशानी उठा रहा हूँ, मगर कुछ हिसाब ही नहीं जमता। जहाँ कहीं बात चलती है, कुछ न कुछ काट-कूट हो जाती है—जवानों के सामने हमारी कहाँ चलती है।

रामलाल—जल्दी ठीक कर डालिए। बुढ़ापे में क्या तकलीफ़ उठा रहे हैं ? अरे हाथ-पैर को आराम तो हो।

पण्डित जी—हाँ, तकलीफ़ तो भाई बहुत है। तकलीफ़ की बात तो हम जानते हैं या भगवान् जानता है, लेकिन करें क्या ? जोर-जुलुम तो करने से रहे !

रामलाल—फूफा, आप तो हैं कञ्जूस ! देश चले जाइए और दो-चार सौ देकर एक लड़की ले आइए। जोर-जुलुम कुछ न करना पड़ेगा। तुम्हारी कञ्जूसी के मारे सरला बिटिया को भी तकलीफ़ हो रही है। अकेले सब काम करना पड़ता है। इसीलिए वह दुबली हो गई है।

पण्डित जी—हाँ, कुछ दिन और देख लें। फागुन तक अगर यहाँ ठीक-ठाक न हुआ तो देश ही चले जायँगे। वहाँ ज़रूर ही ठीक हो जायगा।

रामलाल—अरे ऐसा कौन काम है, जो रुपए से नहीं हो सकता। रुपए ख़र्च करने के लिए आप तैयार हो जायँ तो एक क्या, तीन शादी आपकी हम छः महीने के अन्दर ठीक कर दें।

पण्डित जी—हाँ, रुपए ख़र्च करने पड़ेंगे, लेकिन भाई हम लोग पुराने ख़्याल के आदमी ठहरे। हम ज़रूरत पर ही रुपए ख़र्च करते हैं। रुपए फेंकने की हम लोगों की आदत नहीं है। हमने मसक्कत से रुपए पैदा किए हैं। तुम लोगों की तरह हमें भी अगर बाप की कमाई जायदाद मिल गई होती तो हम भी इसी तरह फूँकते-उड़ाते!

रामलाल—अच्छा, यह तो बताइए, रामलीला में आप लोग कुछ मदद दीजिएगा कि नहीं।

पण्डित जी—अरे, तुम लड़के-लड़के मिलकर यह काम कर डालो। बुड्ढों को क्यों खींच रहे हो?

रामलाल—बुड्ढों के बिना काम न होगा। देखिए, हम कहे देते हैं, आप लोगों को इस काम में मदद देनी पड़ेगी।

पण्डित जी—अरे, तो क्या हम तुमसे बाहर हैं। जब तुमने यह काम उठा लिया है, तब पूरा करना ही होगा।

सरला अब तक चुप बैठी थी। पण्डित जी की आँख बचाकर रामलाल बीच-बीच में उसकी तरफ़ देख लिया करता था। उससे बातचीत चलाने की ग़रज़ से उसकी

तरफ़ मुख़ातिब होकर उसने कहा—क्यों बिटिया ! रामलीला देखने चलोगी न ?

सरला—हम देखकर क्या करेंगी ?

रामलाल—क्या करोगी ! ज़रा देर राम की चर्चा में वक़्त काटना। इसमें हानि क्या है ? फ़ायदा ही होगा।

सरला चुप रही। पण्डित जी ने कहा—हमारी बिटिया बड़ी सीधी है। घर से बाहर जाना उसे पसन्द नहीं। वह घर में ही राम का नाम ले लेती है। कुछ देर यों ही गप-शप कर, रामलाल चला गया।

रला के घर के पिछवाड़े एक छोटा-सा शिवालय था। शिवालय के पास एक छोटा-सा कुआँ था, जिसकी चारों ओर कनेर, धतूरा, गुलाब, बेला आदि के फूल लगे थे। कुएँ से कुछ दूर हट कर एक बेल का दरख़्त था। सरला इन्हीं वृक्ष से फूल और विल्वपत्र संग्रह कर, नित्य सायं-प्रातः शङ्कर भगवान् की पूजा किया करती थी।

इतने कष्ट, इतनी साधना और इतनी तपस्या से भी उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग का अनलंकृत सौन्दर्य विनष्ट न हो सका, प्रत्युत उसकी आकर्षण-शक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि ही हो रही थी। मालूम होता था, मानो उसके शरीर-राज्य पर अधिकार जमाने के लिए काम और वैराग्य में प्रचण्ड प्रतिद्वन्द्विता का भाव जाग्रत हो उठा है। किन्तु प्रतिकूल परिस्थिति के होते हुए भी अपमानित मदन सिंहासनच्युत

न किया जा सका। वैराग्य का कटक राजधानी के प्राचीर प्रान्त में डेरा डाले पड़ा हुआ है—वह प्रवेश न पा सका। जिस समय पुष्प-पात्र को ज़मीन पर रखकर अपने दोनों रक्तोत्पल्ल कमलनाल-हाथों को वह ऊपर उठाती है, और उर्ध्वोन्मुखी हो, एक हाथ से डाली पकड़कर दूसरे हाथ से विल्वपत्र तोड़ती है, उस समय अञ्चल सिर से खिसक-कर कन्धे पर आ जाता है; आलुलायित केश पीठ के ऊपरी भाग पर मन्द गति से नृत्य करने लगते हैं; दो-एक अलक आँखों के सामने आ जाते हैं; आकर्ण विलम्बित लोचन और भी आयत हो जाते हैं, और वक्षःस्थल अपने समस्त उभार के साथ ऊपर की ओर सरक कर पतली कमर को झुका देता है। उस समय विजयी सौन्दर्यपति सुदूरस्थित तपस्विनी को अवज्ञा की दृष्टि से देखता है, किन्तु शिवालय के इस निर्जन स्थान में लावण्य के इस अनुपम विकास को कौन निरखने जाता है।

शिवालय के पास ही रघुवरदयाल ज़मींदार की एक अट्टालिका है। तीसरी छत पर उसके पुत्र रमानाथ की पाठ्य कक्षा है। पाठ्य कक्षा की खिड़की शिवालय की ओर ही खुलती है। अट्टालिका और शिवालय के बीच में कुआँ है। रमानाथ के माता-पिता का एक वर्ष पूर्व देहावसान हो चुका था। घर में उसकी बहिन के सिवाय और कोई नहीं है।

बहिन का भी विवाह हो चुका है। रमानाथ सुभग और

सुशील युवक है, अभी हाल ही में उसने बी० ए० पास किया है। उसका विचार आगे पढ़ने का था; किन्तु माता-पिता की मृत्यु से वह काम रुक गया। अब वह घर पर ही रहकर ज़मींदारी का काम देखता और अपना अधिकांश समय पठन-पाठन में ही व्यतीत करता है।

रमानाथ इस एकान्त तपस्विनी के तपस्या-क्रम से पूर्ण-रूपेण परिचित है। कुएँ पर जहाँ बर्तनों की झनक और बालटी की खड़क हुई कि रमानाथ अपनी पुस्तक एक ओर पटक देता और खिड़की के पास आकर खड़ा हो जाता। उस समय मिल्टन, शेक्सपियर, कालिदास या भवभूति के ही रसपूर्ण ग्रन्थों का आस्वादन क्यों न करता हो, वह उन्हें झटपट समेट डालता था ; क्योंकि एकान्त मन से तपस्या में निरत, आभरणहीना, शुभ्रवसना, सौन्दर्यशालिनी सरला के नैतिक कार्य के अवलोकन में उसे जो सरल एवं अस्पष्ट आनन्द मिलता था, वह संस्कृत और अङ्गरेज़ी के समस्त काव्य, नाटक और उपन्यास के पाठ से भी उसे नहीं मिलता, यही उसकी धारणा थी।

इसी से नियत समय पर वह और सभी कामों को अलग रख, खिड़की के पास आ खड़ा होता। खिड़की में लोहे के जो सींकचे लगे थे, उन्हीं के सहारे वह इस स्वर्गीय दृश्य का अवलोकन करता। कर्मयोग में लगी हुई इस ज्योत्स्ना

विकीर्ण करने वाली मानवी के हृदय-तल में अग्नि की ज्वाला

दबी हुई है या हिमाद्रि की तरह वह शीतल हो गई है—यह प्रश्न इस अबोध वैज्ञानिक के हृदय में किसी विशेष अर्थ का द्योतक बनकर नहीं, प्रत्युत स्वाभाविकतया ही उदय होता था।

कटकटाते हुए शीत-काल में जब सरला स्नान कर, गीले कपड़े पहने हुए, अञ्जलि में एक लोटा पानी रख, एक ही स्थान पर खड़ी हो, आँखें मूँद, ध्यानावस्थित होकर चारों ओर घूमती और धीरे-धीरे अर्घ्य चढ़ाती, उस समय रमानाथ का शरीर सिहर उठता। ओवरकोट और स्वेटर से दबे हुए रोम भी सीधे खड़े हो जाते। सुख से पले हुए इस नवयुवक को यह अनुमान भी नहीं हो सकता था कि साधारण व्यक्ति को इस शीतकाल के प्रभात में, इस प्रकार गीले कपड़े पहन, इस तरह परिक्रमा करने का साहस हो सकता है। इस कारण उसने समझा कि सरला अवश्य ही कोई दिव्य लोक-निवासिनी है। इस समय उसके मुख पर जो साधना, जो तेज प्रस्फुटित हो उठता, उससे प्रभावान्वित हो, रमानाथ का हृदय इस ब्रह्मचारिणी के प्रति भक्ति से गद्‌गद हो जाता था।

एक दिन सन्ध्या-समय वह सर्वदा की भाँति सरला के कार्य-कलाप का अवलोकन कर रहा था, इसी बीच में रामलाल ने फुलवारी में प्रवेश किया। रामलाल ने बड़े

परिश्रम से आज अपूर्व सन्ध्या का अवसर प्राप्त किया

था। इस समय पण्डित जी को वह जिस कार्य में लगा आया था, उससे शीघ्र ही उनको फ़ुरसत पाने की बिलकुल सम्भावना न थी। नौकर-चाकर भी इस समय बाहर थे, और एक घण्टे के अन्दर वे वापस आने वाले न थे।

कौशल से इतना प्रबन्ध कर लेने के बाद, वह आज एकान्त में सरला से मिलने के लिए पहुँचा था। घर में आकर उसने देखा, सरला नहीं है। बग़ीचे के प्रकाश से उसे पता लगा कि सरला वहीं होगी। किन्तु जब तक वह बग़ीचे में पहुँचा, तब तक सरला शिवालय के अन्दर प्रवेश कर चुकी थी। मन्दिर में पहुँचकर रामलाल ने सरला को ध्यानावस्थित पाया। सहसा उसके मुख से निकल पड़ा—बड़ी पुजारिन मालूम पड़ती है। सन्ध्या तो आजकल बड़े-बड़े पण्डित नहीं करते। जब तक सरला पूजा कर बाहर निकले, तब तक रास्ता देखते बैठे रहना रामलाल से न हो सका। मन्दिर के अन्दर सुविधा भी अच्छी थी, इसलिए वह मन्दिर में घुस पड़ा। रामलाल इस फ़न में काफ़ी कौशल तथा नाम पा चुका था।

किसी आदमी की आहट पाकर आशङ्का से सरला का ध्यान भङ्ग हो गया। अचानक रामलाल को इस एकान्त में पाकर वह घबड़ा उठी, उसका दिल धड़कने लगा, हाथ-पैर काँपने लगे, और वह पसीने-पसीने हो गई।

सरला को इस प्रकार घबड़ाहट में पाकर रामलाल ने

उसे आश्वासन देते हुए कहा—सरला, मुझे यहाँ पाकर इस प्रकार डरने या काँपने की क्या ज़रूरत है। मैं कोई ग़ैर आदमी तो हूँ नहीं—तुम्हारा अपना आदमी ही हूँ। मैं किसी प्रकार तुम्हारी बुराई नहीं कर सकता। मैं जो कुछ भी कहूँगा, तुम्हारे लाभ के लिए ही कहूँगा। शान्त होकर मेरी बात सुनो।

रामलाल की भूमिका देखकर सरला ऊब रही थी। उसने उत्तर में कहा—आपको जो कुछ कहना है, जल्दी कहिए।

रामलाल—सरला, सोचो तो भला, तुम कहाँ के खट-राग में पड़ी हो। तुम्हारी अवस्था क्या पूजा करने योग्य है ?

सरला—मैं इस एकान्त में आपकी कोई बात नहीं सुनना चाहती, आप चले जाइए !

रामलाल—अजी सुनो भी, इतना शिष्टाचार मुझे भी मालूम है ; लेकिन मैं जो बात करने आया हूँ, वह अकेले में ही की जाती है।

सरला—मैं कह चुकी, मैं आपकी एक बात भी न सुनूँगी। आप मिहरबानी कर यहाँ से चले जायँ।

रामलाल—अरी छोकरी, ज़रा सीधे होकर मेरी बात सुन। मुझे ताव न दिखा। यह जवानी, यह हुस्न क्या इस तरह बर्बाद करने के लिए मिला है ? दिनभर पूजा करती है, इतना भी नहीं समझती ? परमात्मा किसी को कोई भी

चीज़ बर्बाद करने के लिए नहीं देता। ईश्वर की दी हुई चीज़ का उचित उपयोग न करना ईश्वर का अपमान करना है। इससे तुम्हारे शङ्कर भगवान् .खुश न होकर उलटे तुम पर नाराज़ होंगे।

सरला—मैं आपसे धर्म की शिक्षा नहीं लेना चाहती। आप×××!

रामलाल बात काटकर बोला—धर्म की शिक्षा न ले, किन्तु दुनियाँदारी की बात तो सुन। तू तो कुछ भी नहीं सुनना चाहती। देख, इस ज़माने में इस यौवन को बचाकर रखना कठिन काम है। मैं नहीं तो और कोई न कोई तुझे अपने जाल में फँसा ही लेगा। अगर तू यह सोचती है कि तू जीवनभर कोरी बच जायगी तो यह भूल है। ऐसी हालत में अगर मैं ही इसका उपभोग करूँ तो क्या हर्ज है?

सरला—आप सीधे यहाँ से न जायँगे तो मैं हिरिया की माँ को पुकारती हूँ।

रामलाल—हिरिया की माँ यहाँ है नहीं। इसके सिवाय यह तो सोचो, वह इस एकान्त में पर-पुरुष के साथ तुझे देखकर क्या सोचेगी। औरतों की इज्ज़त कच्ची हाँडी है, छाया पड़ते ही बिगड़ जाती है। इसीलिए तुम्हें यह नेक सलाह दे रहा हूँ कि सोच-समझकर काम करो।

सरला—देखिए, मैं सोचना-समझना नहीं जानती। आप दूर होइए, नहीं तो मैं चिल्लाती हूँ।

रामलाल—अच्छा, मैं जाता हूँ; लेकिन जब सोचना-समझना नहीं जानती तो दूसरे से सलाह लो। देखो, मैं सोचने-समझने के लिए तुम्हें दस दिन की मुहलत देता हूँ। यदि इस बीच में रास्ते में आ जाओ तो ठीक है, नहीं तो याद रखना, रामलाल दुबे के चङ्गुल से आज तक उसका शिकार बच कर नहीं निकला है। तुम्हारी इज्ज़त भी चली जायगी, और किसी काम की भी न रहोगी। मेरी बात मान लेने से इज्ज़त-आबरू से घर में रहकर मज़े उड़ा सकती हो। कौन जानता है कि घर के अन्दर तुम क्या करती हो। लोगों को दिखाने के लिए इसी तरह, बल्कि इससे भी ज़्यादा, पूजा-पाठ किया करो और भगतिन बनी रहो। इधर मज़ा भी करती जाओ। अच्छा मैं जाता हूँ, लेकिन मेरी बात याद रखना, इसी में कुशल है।

रमानाथ को रामलाल के आगमन तथा उसके बाद वाली घटना का बिलकुल पता न चला, क्योंकि उसी समय उसके एक मित्र मुरलीधर ने उसके कमरे में प्रवेश किया। रमानाथ को उसके आने की आहट न मिली। मुरलीधर नज़दीक पहुँचा। पहुँचते ही उसकी दृष्टि सजी हुई आरती को लेकर शिवालय में प्रवेश करने वाली सरला पर पड़ी। उस समय अन्धकार हो चुका था। सरला के सारे शरीर पर उसकी दृष्टि न पड़ी। वह आरती के आलोक से आलोकित मुखमण्डल को ही देख सका। चारों ओर के अन्धकार

में केवल उस प्रकाशित मुखमण्डल ने सहसा मुरली-
धर के हृदय को अभिभूत कर लिया। उसे बोध हुआ,
मानो जो कुछ देखा उसे देखने के लिए वह प्रस्तुत न था।
जो कुछ दिखाई दिया वह एकदम अभूतपूर्व था। सरला
मन्दिर में चली गई। मुरलीधर ने पूछा—रमा, यह कौन है ?

यदि मुरलीधर के स्थान में कोई दूसरा व्यक्ति होता, तो
शायद रमानाथ उसे ठीक उत्तर न देता; किन्तु मुरलीधर से
उसकी घनिष्ट मित्रता थी। उसने उत्तर में कहा—पण्डित
विहारीलाल की विधवा भतीजी है। उत्तर सुनकर मुरलीधर
के मुख पर प्रसन्नता की हलकी रेखा दौड़ गई। उसने सरल
भाव से पूछा—विवाह करने का विचार है क्या ?

मुरलीधर के इस प्रश्न को सुनकर रमानाथ अवाक्
रह गया। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि सरला के
सम्बन्ध में कभी उससे कोई ऐसा प्रश्न करेगा। किन्तु
मुरलीधर के प्रश्न पर उसे क्रोध नहीं आया। वह जानता
था कि मुरलीधर सामाजिक प्रश्नों पर ख़ूब ग़ौर से विचार
करता है, और उन पर अपनी निर्णीत सम्मति भी रखता
है। कॉलेज की विवाद-सभाओं में विधवा-प्रश्न पर उसने
अपनी राय कई दफ़ा अपने मित्रों की परिहासपूर्ण करतल-
ध्वनि के बीच प्रकट की है। वह इन सब बातों को अच्छी
तरह जानता था, इसीलिए उसने मुरलीधर के उत्तर में
केवल 'नहीं' कहा।

इस उत्तर से मुरलीधर का व्याख्यान-श्रोत प्रबल वेग से फूट पड़ा। वह विधवाओं की करुण-स्थिति, पुरुष-जाति के निष्ठुर अत्याचार, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, भ्रूण-हत्या, स्त्री-हत्या प्रभृति विषयों पर एक ही साँस में बहुत-सी बातें बक गया।

उसके व्याख्यान को बिना प्रतिवाद के चुपचाप सुनकर रमानाथ ने कहा—मुरली, तुम नहीं जानते वह कैसी स्त्री है, इसीलिए इतनी बातें बक गए। वह विवाह के योग्य नहीं, वरन् पूजा के योग्य है।

मुरली—जब ऐसी बात है, तब तो उससे अवश्य ही विवाह करना चाहिए। शायद मन रहते भी तुम समाज के डर से ऐसी बात नहीं कर रहे हो, किन्तु इससे तुम समाज का हित नहीं, अहित ही कर रहे हो। परम्परा से रूढ़ियों का दास होकर समाज ने जीवन के प्रधान लक्षण को खो दिया है—कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान उसमें रह नहीं गया। दृढ़ता से समाज में इन दुर्गुणों का आरोपण करना ही हम लोगों के जीवन का मुख्य कार्य होना चाहिए।

रमानाथ ने संक्षेप में कहा—इन सब बातों को मैं भी समझता हूँ, किन्तु सरला को तुम नहीं जानते, वह मानवी नहीं, देवी है।

जाते-जाते मुरलीधर अपने प्रस्ताव पर गम्भीरता से विचार करने का आग्रह करता गया।

मुरलीधर से जब तक बातचीत न हुई थी, तब तक रमानाथ को स्वयं इस बात का पता न था कि वह कितनी गहराई में है।

मुरलीधर के चले जाने पर उसे ज्ञात हुआ कि सरला का जगज्जयी रूप उसके हृदय पर रह-रहकर सम्पूर्ण वेग से आघात कर रहा है। उसने सतत प्रयत्न से इस घात-प्रतिघात को रोकना चाहा, किन्तु जितना ही वह प्रयत्न करने लगा, उसकी विकलता भी उतनी ही बढ़ने लगी।

वह सोचता था कि धर्मिष्ट सरला अपने परलोकगत स्वामी का ध्यान कर, उनकी मङ्गल-कामना करती हुई कठिन साधना में रत हुई है। मानसिक विकारों पर विजयी हो, वह एकान्त तपस्विनी होगई है। ऐसी धर्मप्राणा हिन्दू-विधवा के मन में पुनर्विवाह की कल्पना तक नहीं उठ सकती, तब इस प्रकार के विचार से वह व्यर्थ ही नई वेदना की सृष्टि क्यों कर रहा है? मुरलीधर के ऊपर वह बहुत क्रोधित हुआ। पत्नीत्व की पवित्रता का उसे बिलकुल ही ध्यान नहीं है, इसी से समय-असमय वह ऐसा ही अनर्गल प्रलाप कर बैठता है। दूसरे दिन सबेरे उसकी हिम्मत न हुई कि वह सरला के नैतिक कार्यों का अवलोकन करे। आज सरला की ओर देखने में उसे लज्जा आती थी। उसे भय होता था कि कहीं उसके अपवित्र विचार देवी की एकान्त साधना में व्याघात न पहुँचाएँ; किन्तु ज्योंही बर्तनों की

झनक हुई, उसके चिरअभ्यस्त पैर विचार के लिए बिना रुके ही खिड़की के पास पहुँच गए। मन ही मन उसने अपनी दुर्वासना के लिए उससे क्षमा माँगी।

किन्तु यह क्या? पुण्य-लोक में निवास करने वाली शान्त मानसी शिवालय की ड्योढ़ी पर पैर लटकाए उदास-भाव से बैठी है। सम्मुखवर्ती शून्य की ओर उसकी आँखें गड़ी हुई हैं, उनके कोनों से अश्रुबिन्दु नियमित रूप से अञ्चल पर टपक रहे हैं। रमानाथ को सहसा विश्वास न हुआ कि वह जो कुछ देख रहा है, वह सत्य है।

कुछ समय तक वह एकाग्रचित्त तथा अनिमेष दृष्टि से सरला के भावों के समझने का प्रयत्न करता रहा, किन्तु भाषा-ज्ञान-शून्य अनुवादक की तरह उसका हृदय सरला के हृदयोद्गत भाव-लहरियों को अपने में सञ्चित न कर सका। हृदय की इस असमर्थता पर उसे बहुत ही क्षोभ हुआ!

प्रभात-कालीन वायु के हलके झोंके से सरला का अञ्चल नीचे खिसक पड़ा; सुदूरस्थित रसाल वृक्ष से कोयल कूक उठी; पुष्प-मधु के आस्वादन से तृप्ति न पा, एक भौंरा उसके कुञ्चित केशों के पास आकर गुञ्जार करने लगा। उससे अपनी रक्षा करने के लिए सरला ने अपने सुडौल बाहु को ऊपर उठा, एक विचित्र ढङ्ग से सञ्चालित कर, भौंरे को निवारण किया—बाहुभङ्गी वातावरण को तरङ्गित करती हुई

अनन्त में विलीन हो गई। उस समय ऐसा बोध हुआ, मानो रमानाथ के पुस्तक-ज्ञान को अपमानित करने के लिए सौन्दर्य ने अपने सम्पूर्ण वैभव को एकत्रित कर, शिवालय की ड्योढ़ी पर बैठी हुई सुन्दरी को अर्पित कर दिया है। रमानाथ प्रकृति के इस मूक व्यङ्ग को न समझ सकने पर भी उससे प्रभावान्वित हो उठा।

सरला इस समय उदास भाव से कल की सन्ध्या वाली घटना पर विचार कर रही थी। देव-मन्दिर में प्रविष्ट होकर उस दुष्ट ने ऐसा हेय एवं कुत्सित प्रस्ताव करने का साहस किया! अच्छा, देवादिदेव शङ्कर भगवान् उसे शीघ्र ही कोई न कोई दण्ड देंगे!!
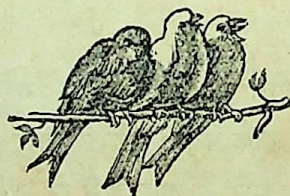
चौथा परिच्छेद

सरला की एक सखी थी पार्वती। दोनों समवयस्का थीं। पार्वती सरला से एकाध साल छोटी थी। दो वर्ष - पूर्व उसका विवाह हुआ था। विवाह के पश्चात् बिदा होकर वह पति के यहाँ कुछ दिन रह आई थी। शीघ्र ही प्रथा के अनुसार उसे अपने मायके वापस आना पड़ा। अब फिर शीघ्र ही उसका द्विरागमन होने वाला है।

पार्वती रमानाथ की बहिन थी। माता-पिता के न रहने से तथा भाई का अत्यधिक स्नेह पाकर वह कुछ अधिक स्वतन्त्र हो गई थी। वह सरला के यहाँ अक्सर आया करती और सरला भी कभी-कभी उसके यहाँ चली जाती। पार्वती में जितनी स्वतन्त्रता थी, सरला में पराधीनता का भाव उससे कहीं अधिक भरा हुआ था। किसी प्रकार का प्रत्यक्ष दबाव न होते हुए भी सरला न जाने किस अलक्ष्य

भार से दबी रहती थी, इसीलिए वह घर से बहुत कम बाहर निकलती थी।

रामलाल के द्वारा सताई जाकर सरला ने आज अपनी अभिन्न हृदया सखी से मिलकर इस घटना की सूचना देने और उसकी सलाह लेने का विचार किया।

यौवन की प्रथम तरङ्ग में मनुष्य संसार को भूल जाता है। सोना, उठना, बैठना, खाना-पीना—संसार के सभी काम अनर्थक बोध होते हैं। आँखों में नशा छा जाता है। आदमी एक ही धुन में मस्त रहता है। प्राणनाथ, प्राणाधिक, प्रियतमे, हृदय-देवी, इन्हीं चार शब्दों में मनुष्य लीन रहता है। इन्हीं को दुहराते-दुहराते सारी रातें बीत जाती हैं। कुछ दिनों तक यही क्रम जारी रहता है; फिर नशा उतरने लगता है। किन्तु यदि इसी बीच में वियोग हो जाय तो नशा और भी उग्र रूप धारण कर लेता है। विछोह प्रेम को उत्तेजित करने का काम करता है। शिथिल प्रेम को जाग्रत करने के लिए इससे बढ़कर कोई उपाय ही नहीं है।

पार्वती आजकल इसी अवस्था में थी। कुछ दिन वैवाहिक जीवन का रसास्वादन करने के बाद विछोह हो जाने के कारण उसे आजकल सदैव प्रेम का ही स्वप्न दिखाई देता था।

अपनी सखी सरला से मिलते ही उसकी प्रेम-कथा का श्रोत खुल गया। वह आनन्द में गद्‌गद होकर अपने वैवाहिक जीवन का सुखमय चित्र खींचने लगी। तब दीर्घ

निःश्वास लेकर सरला ने कहा—बहिन, एक विधवा के सम्मुख इस प्रसङ्ग को छेड़ने से क्या लाभ? जिस व्यक्ति की जिह्वा काट दी गई हो, उसके सामने पकवानों के मधुर स्वाद का वर्णन करना अनुचित है।

सरला की बात से पार्वती लज्जित हो उठी। उसे स्वयं इस बात का ख़्याल कर अपनी सखी को व्यथित न करना चाहिए था; किन्तु आनन्द के अतिरेक में उसे सखी की अवस्था का विस्मरण हो गया। इस ग़लती का एक और कारण था। अपनी सखी के सुख का ख़्याल कर सरला आज तक बड़े चाव से उसकी बात सुना करती थी। आज तक कभी भी उसने पार्वती की प्रेम-गाथा के प्रति उदासीनता या विराग न दरसाया था। पार्वती ने सरला को आज विशेष उदास देखकर पूछा—सखी, आज तुम इतनी खिन्न क्यों दिखाई देती हो?

सरला—मेरे लिए तो आनन्द की व्यवस्था ही नहीं है। सखी, विधवा के सामने इतने प्रलोभन हैं कि उसे बहुत बच-बचकर चलना पड़ता है। इस पर भी कुशल नहीं। नाना प्रकार के जाल बिछाकर रूप के भूखे मनुष्य व्याघ्र की तरह उसे अपने चङ्गुल में लाने के लिए अग्रसर होते रहते हैं। विधवा के लिए अपने मन को रोक रखना पग-पग पर कठिन हो उठता है। इसीलिए मेरी प्यारी सखी! प्रेम-पुराण के तुम्हारे सरस उत्तेजक अध्यायों से मैं अलग

रहना चाहती हूँ। मस्तिष्क में पहुँचकर यह बातें अशान्ति का कारण बन जाती हैं।

पार्वती—सखी, तुम्हारी भूमिका देखकर तो मैं ऊब उठी हूँ। तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आ रही है। ज़रा साफ़-साफ़ समझाकर भी तो कुछ कहो।

सरला—देखो, सदैव तुम मेरे सामने घण्टों प्रेम-राग अलापा करती हो। आज एक दुखिया की दर्दनाक कहानी भी सब्र से सुन लो—ऊबो मत।

पार्वती—सखी, मेरी यह मन्शा न थी कि मैं तुम्हारी बात न सुनूँ। मैं सिर्फ़ यही चाहती हूँ कि तुम साफ़-साफ़ बात कहो, जिससे मैं समझ सकूँ।

सरला—एक तो विधवा का जीवन वैसे ही कठिन होता है, दूसरे उसके लिए सताने वालों की कमी नहीं रहती। रामलाल, जोकि दूर के रिश्ते में मेरा मसेरा भाई है, कल शाम को अचानक, जब मैं मन्दिर में थी, घुस आया। वहाँ आकर उसने ऐसा कुत्सित प्रस्ताव मेरे सामने रक्खा कि उसका ज़िक्र करते लज्जा आती है। यदि बात यहीं तक रहती तो भी मैं न घबराती और चुप रहती; लेकिन वह धमकी देता गया है कि यदि दस दिन के भीतर मैं उसके प्रस्ताव से सहमत न हुई, तो ज़बरदस्ती मुझे ठीक रास्ते पर लाएगा।

पार्वती—सखी, यह तो बड़ी बेढब बात है। इसमें हम

लोगों की सलाह से काम न चलेगा। तुम अपने काका को इस घटना का समाचार दो। और नहीं तो कहो, भैया से कहकर सलाह लूँ।

सरला—सखी, तुम्हें हिन्दू-विधवा की स्थिति का ठीक-ठीक पता नहीं है। जिस प्रकार एक निरीह पशु खूँटे से बाँधकर भाले का शिकार बनने पर भी चिल्लाने और छटपटाने के सिवाय किसी प्रकार अपनी रक्षा का उपाय या विरोध नहीं कर सकता, उसी प्रकार हिन्दू-विधवा सिवाय अकेले में बैठकर रोने के और कुछ नहीं कर सकती। काका से कहने पर, बहुत सम्भव है, वे मुझ पर ही सन्देह करें। यदि वे ऐसा न भी करें, तो भी वे क्या कर सकते हैं? जो सुनेगा वह मुझे ही दोषी समझेगा। अपने भैया से तो हर्गिज़ इस बात की चर्चा न करना। मैं उन्हें इस प्रकार की गड़बड़ी में नहीं डालना चाहती।

पार्वती—तुम्हारे काका उसका अपने घर में आना-जाना तो बन्द कर ही सकते हैं। फिर वह किस प्रकार तुम्हें तङ्ग करेगा?

सरला—मेरी सखी, तुम बड़ी भोली हो। उसका आना-जाना बन्द कर देने से क्या लाभ हो सकता है? चोर को कौन अपने घर में आने के लिए निमन्त्रण देता है; फिर भी वह अपने मतलब के लिए जिस घर में चाहता है, घुसकर कार्य-साधन कर ही लेता है।

पार्वती—मेरी तो बुद्धि चकरा रही है। क्या करना चाहिए, कुछ समझ में नहीं आता।

सरला—सखी, हिन्दू-विधवा के लिए उसकी रक्षा का एक ही उपाय है, और वह है विष। दूसरी जगह उसे शान्ति नहीं मिल सकती। इसीलिए चिता की भयङ्कर ज्वाला उसे अत्यन्त सुखद बोध होती है। मैं यह सब जानती हूँ। यह भी जानती हूँ कि इस जीवन में मेरे लिए सुख नहीं, मैं जीवन-मृत हूँ। फिर भी इस संसार से अलग होने की इच्छा नहीं होती। न जाने किस प्रकार का एक मूक-स्नेह, एक सुनहरी ज़ञ्जीर मुझे जकड़ रखना चाहती है।

पार्वती—सखी, तुम्हारी कविता तो मेरी समझ में ज़रा भी नहीं आती। मैं तुम्हारी बात फिर न समझ सकी।

सरला—उस बात को स्पष्ट कहने की हिम्मत नहीं पड़ती, लेकिन देखती हूँ कि बिना कहे काम न चलेगा।

सरला बहुत धीमी आवाज़ में कहने लगी। सखी, पति से जिस समय मैं मिली, उस समय मैं एकदम अबोध बालिका थी। अब मुझे उनकी आकृति-प्रकृति का बिलकुल स्मरण नहीं रह गया है। ऐसी अवस्था में मैं उन्हें कैसे अपने हृदय में लाती। मेरा हृदय किसी के स्नेह के लिए, किसी की एक मीठी बात के लिए आकुल रहने लगा। इसी अवस्था में मेरे पथ में तुम्हारे भाई की मूर्ति आ खड़ी हुई। तब से वह मञ्जुल मूर्ति मेरे हृदय में बस गई है। शिवालय

में जाकर मैं उन्हीं को पाने के लिए पूजा करती थी—इस जन्म में नहीं, उस जन्म में। इस जन्म में एक हिन्दू-विधवा के लिए फिर से सम्बन्ध स्थापित करना अनीति है—अधर्म है। सखी, मैं सच कहती हूँ, आज तक मैंने उनकी ओर भरपूर दृष्टि से देखा तक नहीं है। मुझे भय था, कहीं मेरी सर्व-ग्रासी शनि-दृष्टि से उनका अमङ्गल न हो जाय। मैं अपने विशुद्ध स्नेह में वासना का मिश्रण होने देना नहीं चाहती। निश्चय किया था कि यह भेद किसी पर प्रकट न करूँगी। जीवन-सर्वस्व, महा मूल्यवान्, अर्थ-लोलुप के मणि की तरह इस प्रेम को हृदय के अन्तस्तल में छिपाए हुए एक दिन इस संसार से चल दूँगी; किन्तु देखती हूँ कि यह प्रेम-ज्वाला बिना बाहर निकाले मेरा हृदय फट जायगा। सखी, मेरी सब बातें सुनकर मुझपर घृणा मत करना। इस पापिनी के प्रति दया करना। पापी के प्रति दया दरसाना मानवी नहीं, दैवी गुण है। यह कहते-कहते सरला रो पड़ी। पार्वती भी रोने लगी। अब उसे अपनी सखी का दुःख पूर्ण-रूप से समझ में आ गया। उसने रोते-रोते पूछा—तब क्या यह सब बातें मैं भैया से कह दूँ?

सरला ने उसे रोककर कहा—नहीं बहिन, ऐसा करने से एक दिन सर्वनाश का मार्ग खुल जायगा, और मेरा तो सर्वनाश होगा ही, एक भोले-भाले युवक का भी सर्वनाश सङ्घटित हो जायगा। रूप में जादू रहता है। इस जादू के

असर से ब्रह्मा, विष्णु तथा स्वयं जितेन्द्रिय शङ्कर भगवान् भी विचलित हो चुके हैं। अपने जगज्जयी रूप का मुझे बोध है; किन्तु मैं यह भी जानती हूँ कि यह रूप निरुद्देश्य है—इस रूप के अस्त्र को लेकर मुझे किसी को जय नहीं करना है। मेरे आगे का मार्ग अवरुद्ध है। इस रूप को लेकर जहाँ मैंने खेलने की कोशिश की, उसी समय सर्वनाश उपस्थित होगा। बहिन, न जाने मैं कब क्या कर बैठूँ, यही सोचकर मैंने यह भेद हृदय का भार हलका करने के लिए, तुमसे कह दिया है, किन्तु तुम इसे प्रकट न करना। इतना कहकर सरला वहाँ से चली गई!

नुष्य की शक्ति कितनी परिमित है; वह कितनी थोड़ी दूर की बात देख सकता है, इस पर विचार करने से आश्चर्य होता है। इसी समय हमारे सम्बन्ध में कौन क्या सोच रहा है, क्या कर रहा है, इसका हमें पता नहीं रहता। एक क्षण के बाद ही अदृष्ट हमें लेकर क्या खेल खेलेगा, यह हमें मालूम नहीं रहता।

रामलाल आजकल दत्तचित्त होकर रामलीला का कार्य कर रहे हैं। खेल भी प्रारम्भ हो गया है। आज सीता-हरण का करुण-दृश्य दिखलाया जा रहा है। राक्षसराज रावण के अङ्क में फँसी हुई सीतादेवी के विलाप से रङ्ग-मञ्च काँप रहा है। जनता में भी सन्नाटा छाया हुआ है।

स्त्री-दर्शिकाएँ अपने भावों को रोक न सकने के कारण सिसक-सिसककर रो रही हैं। भक्त पुरुषों की आँखों से भी आँसुओं की धारा बह रही है। पण्डित बिहारीलाल को भी सहसा अपनी मृत-पत्नी की याद हो आई और वे रो पड़े। दर्शकों में करुणा-रस का श्रोत उमड़ पड़ा !!

केवल रामलाल आज यहाँ दिखाई नहीं देता। खेल प्रारम्भ होने तक वह सिर में पट्टी बाँधे हुए यहाँ उपस्थित था, लेकिन सिर की पीड़ा असह्य हो जाने के कारण वह घर जाकर सो रहा।

लोगों को सिर-दर्द का चकमा देकर रामलाल कुछ गुण्डों को साथ लिए हुए पण्डित बिहारीलाल के मकान पर पहुँचा। रात को एक बज चुका था। हिरिया की माँ ऊँघती हुई पण्डित जी का मार्ग देख रही थी। आहट पाते ही आकर उसने दरवाज़ा खोल दिया। पाँचों आदमियों के भीतर चले जाने पर दरवाज़ा फिर बन्द हो गया।

सरला के कमरे के समीप जाकर रामलाल के आदेशानुसार उसमानअली क़साई भीतर घुसा। भीतर पहुँचते ही उसने चिराग़ गुल कर दिया। सरला इस समय स्वप्न देख रही थी। उसमान ने जाकर पहले सरला को धक्का दिया। सरला नींद में भरी हुई थी। उसे बोध हुआ, उसकी तपस्या सफल हुई। स्वयं शङ्कर भगवान् रमानाथ को लेकर उसके अपार्थिव प्रेम को पवित्र करने आए

हैं। उसने औढरदानी भोलानाथ को मन ही मन प्रणाम किया !

जब दुबारा ज़ोर का धक्का लगा, तब सरला सचेत हुई। अपने कमरे में एक विशालकाय पुरुष-मूर्ति को देखकर सरला को रामलाल की धमकी याद आ गई। किन्तु ज्योंही उसने चिल्लाने के लिए मुँह खोला, त्योंही उस मूर्ति ने झपटकर उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया। सरला के हाथ-पैर भी बाँध दिए गए। न तो उसे भागने का ही अवसर मिला और न वह शोर-गुल ही कर सकी।

सरला को लेकर आक्रमणकारी पीछे के दरवाज़े से चल दिए। उनके निकल जाने पर हिरिया की माँ ने दरवाज़ा बन्द कर लिया।

पास ही नदी थी। नदी के उस पार आम के घने बग़ीचे थे, जिसे रात को छोटा-मोटा जङ्गल ही समझना चाहिए। इसी बग़ीचे में पहुँचकर सरला के हाथ-पैर खोल दिए गए, लेकिन इसके पहले उसे अच्छी तरह समझा दिया गया कि भागने की कोशिश करना व्यर्थ है। आँख की पट्टी खोलने की भी मनाही थी।

सरला क्या करती। वह .खूब अच्छी तरह समझ रही थी कि इन लोगों के सामने भागना, पट्टी खोलने की कोशिश करना आदि व्यर्थ है। ऐसा करने से केवल एक यही हो सकता था कि वे लोग और भी सख़्ती से पेश

आते। चिल्लाने से कुछ लाभ हो सकता था, लेकिन उसका मुँह तो बन्द था।

उसने दीनों के रक्षक, निराधार के आधार अपने इष्ट-देव शङ्कर भगवान् का कई बार स्मरण किया, किन्तु उसकी कातर-प्रार्थना भक्त-वत्सल के कानों तक न पहुँची—पाप के कोलाहल में वह विलीन हो गई।

इसके बाद क्या हुआ, इसका वर्णन हम पहले परिच्छेद में कर चुके हैं।

ञ्चायत से वापस आकर रमानाथ ने भोजन किया न स्नान। उन्हें किसी काम के लिए स्फूर्ति न मालूम होती थी। रोगी की तरह शिथिलता का बोध होता था, किन्तु रोग का उन्हें ख़ुद पता न चलता। पीड़ा मालूम होती, किन्तु किस स्थान पर पीड़ा है, इसका पता न चलता!

दिनभर बड़ी बेचैनी में बिताया। वे स्वयं अपने आप पर असन्तुष्ट थे। अपने लिए उनके मन में धिक्कार उठ रहा था। अपनी अकर्मण्यता पर वे स्वयं लज्जित थे।

खुली हुई कई पुस्तकें उनके सामने पड़ी हुई थीं, किन्तु तिरस्कृत वस्तु की तरह रमानाथ के ध्यान को अपनी ओर आकृष्ट करने में असमर्थ थीं। उसमें व्यक्त किए गए भाव और अलङ्कार मानो उनकी ओर टकटकी लगाए देख रहे हैं और उनकी कल्पनाद्भूत विचार-माला से प्रतिस्पर्द्धा करने का

उपक्रम कर रहे हैं, किन्तु रमानाथ को किञ्चित्-मात्र भी इसका अनुभव न हुआ।

उनके हृदय-सागर में उत्पन्न हुई ध्यान-तरङ्गावलि पर सरला की मन-छवि तैर रही है; किन्तु सदा की भाँति उसमें साधना की ज्योति या तपस्या की गम्भीरता नहीं है—केवल है उसमें काल्पनिक अस्वस्थता की उदास प्रतिच्छाया।

प्रेम का पन्थ कितना कठिन होता है, यह रमानाथ को मालूम न था। साहित्य आदि विषयों के मार्मिक विद्वान् होते हुए भी इस विषय में वे एकदम अबोध थे, किन्तु अब उन्हें ज्ञात हुआ कि सरला से अलग होने की जितनी ही कोशिश करते हैं और उससे मिलने की सम्भावना जितनी ही कम होती जाती है, उनका मन सरला के प्रति उतना ही अधिक खिंचता जा रहा है।

आज जब सरला तिरष्कृत होकर घर से निकाल दी गई, तब रमानाथ का मन उसके लिए और भी ज़ोरों से मचलने लगा। रह-रहकर उनके मन में यह विचार उठता कि सरला के प्रति उनकी कुछ ज़िम्मेदारी है—कर्त्तव्य है, जिसे वे पूरा नहीं कर रहे हैं। यदि उन्होंने कुछ दृढ़ता दिखाई होती, तो शायद सरला की यह दुर्दशा न हुई होती, जो आज हुई।

लेकिन रमानाथ का भीरु मन कल्पना-जगत् की सीमा

को पार कर आगे बढ़ने के लिए तैयार न होता था। सङ्कोच के मारे वे कुछ न कर सकते थे। उन्होंने कई बार सोचा कि उन्हें दृढ़तापूर्वक सरला को सहायता तथा आश्रय देने के लिए तैयार हो जाना चाहिए, लेकिन जहाँ उनके मन में यह बात आती कि लोग क्या कहेंगे, वे शिथिल पड़ जाते। रमानाथ के स्वभाव में यदि यह कमज़ोरी न होती, तो आज तक उनके द्वारा लोक-हित के कई कार्य हुए होते।

सरला के आदेशानुसार पार्वती ने उसकी करुण-कहानी तथा रामलाल के दुस्साहस की बात का ज़िक्र आज तक किसी से न किया था। रमानाथ के प्रति सरला के जो भाव थे, उसे कहने की तो उसकी हिम्मत भी न पड़ सकती थी। किन्तु जब उसे आज की घटना का समाचार मिला, तब अपने मौन-व्रत का पालन न कर सकी। उसने रमानाथ को सब बातें बतला देने का निश्चय किया।

इसी विचार से वह कई बार रमानाथ के कमरे तक गई भी, लेकिन भीतर जाने की उसे हिम्मत न पड़ी। इस प्रयत्न में बार-बार असफल होकर उसने यह तय किया कि ख़ुद जाकर अपनी ज़बान से ये सब बातें बतलाने का साहस उससे न हो सकेगा, इसलिए एक काग़ज़ में ये सब बातें लिखकर उसे भाई के पास रख आना चाहिए।

तदनुसार उसने एक काग़ज़ लेकर सरला द्वारा कही गई बातें ख़ूब अच्छी तरह याद करके लिख डालीं। सरला के

रमानाथ के प्रति भाव, रामलाल की धमकी, आज की घटना के साथ उस धमकी का सम्बन्ध और दुख में पड़ने पर सरला की विष खा लेने की इच्छा आदि सभी बातें एक-एक कर उसने लिख डालीं। इसे तैयार कर उसने इस काग़ज़ को एक लिफ़ाफ़े में रक्खा और लिफ़ाफ़े का मुँह गोंद से अच्छी तरह बन्द कर दिया। लिफ़ाफ़े पर कुछ न लिखा।

इस पत्र को लेकर वह भाई के कमरे में पहुँची और उनके सामने पत्र रख दिया। जब तक रमानाथ पत्र खोल-कर यह देखने की कोशिश करें कि वह किसका पत्र है, तब तक पार्वती वहाँ से खिसक गई।

इन सब बातों को पढ़कर रमानाथ और भी विचलित हो उठे। उनका मस्तिष्क इतना उत्तेजित हो उठा कि उनकी विचार-शक्ति प्रायः लुप्त हो गई। वे कुछ भी न सोच सके। इसलिए उन्होंने यही निश्चय किया कि इस सम्बन्ध में मुरलीधर से सलाह ली जाय और उसी के मतानुसार कार्य किया जाय।

मुरलीधर के प्रति रमानाथ की यथेष्ट श्रद्धा थी। किसी भी बात पर वह बड़ी निर्भीकता तथा निस्पृह भाव से विचार करता था। उसमें यदि कोई ऐब था तो यही कि उसके विचार बड़े उग्र होते थे।

रमानाथ को रातभर नींद नहीं आई। पञ्चायत में खड़ी सरला का कातर मुख, झुकी हुई प्रार्थी आँखें रह-रहकर

उन्हें याद आने लगीं। सरला की दीन दशा की याद से उनके हृदय में कठोर वेदना का अनुभव होता। यदि कुछ देर के लिए उनको झपकी-सी आती तो स्वप्न में उन्हें वही दिखाई देती। उसकी आर्त्तवाणी सुनकर वे सहायता को दौड़ते और नींद खुल जाती। इसी बेचैनी में सारी रात कट गई।

प्रातःक्रिया से निवृत्त होकर रमानाथ ने मुरलीधर के घर का रास्ता लिया। उस समय आठ बज चुके थे। मुरलीधर नाश्ता-पानी से निबटकर एक आराम-कुर्सी पर बैठा हुआ किसी गम्भीर चिन्ता में लीन था।

रमानाथ के पहुँचते ही उसने कुर्सी से उठकर उनका स्वागत किया। दोनों मित्र आमने-सामने कुर्सी पर बैठकर वार्तालाप करने लगे।

कुछ समय अन्य बातों में बिताकर मुरलीधर ने कहा—सरला के साथ तो घोर अन्याय किया गया है। इन न्यायाधीशों को अभी इस बात का पता तक नहीं है कि उनके इस प्रकार के अन्याय से कितना बड़ा अनर्थ खड़ा हो सकता है। ख़ैर, उनकी बात छोड़ो, तुम अपनी बात तो बताओ। मेरी उस बात पर तुमने कुछ विचार किया—सरला से पुनर्विवाह करोगे या नहीं ?

रमानाथ—सोचा है। एक बार नहीं, अनेक बार सोचा है, किन्तु अपने मन को इस बात के लिए राज़ी न कर

सका। विधवाओं की दशा सुधारने का यह ठीक उपाय नहीं है। विधवाओं की करुण-स्थिति का थोड़ा-बहुत ज्ञान मुझे भी है, लेकिन इसके लिए कोई और दवा तजवीज़ करनी होगी। विधवा-विवाह प्रारम्भ कर देने से पत्नीत्व की पवित्रता नष्ट हो जायगी।

मुरली०—पतीत्व की पवित्रता का जब कोई ध्यान नहीं रक्खा जाता, तब पत्नीत्व के लिए इतना ख़याल रखना कहाँ तक न्यायसङ्गत होगा ?

रमा०—यदि हमारा एक हाथ सड़ गया हो, तो दूसरे को भी सड़ा डालना कभी उचित नहीं कहा जा सकता। विधवा-विवाह से भारतीय नारी-समाज के प्रति जो हमारी, केवल हमारी ही नहीं, संसार की, उच्च भावनाएँ हैं, वे भङ्ग हो जायँगी। अन्य लोगों की तरह हमारे समाज से भी पति-पत्नी के सम्बन्ध की पवित्रता एवं धार्मिकता जाती रहेगी। स्त्रियाँ केवल उपभोग की सामग्री रह जायँगी। मातृत्व का अपमान होगा।

मुरली०—तुम अपनी इस भावुकता को लेकर प्रसन्न होते रहो। कुछ दिनों में समाज इसी भावुकता को लिए हुए क़ब्र में दफ़न हो जायगा।

रमा०—समाज की दशा भी मुझसे छिपी नहीं है। विधवाओं के कारण भीतर ही भीतर जो पाप एवं अत्याचार हो रहा है, उससे मैं अवगत न होऊँ, यह बात नहीं है।

किन्तु तुम्हारा कहना है कि यदि समाज में चोरी अधिक होती हो, चोरों की संख्या अधिक हो गई हो, तो चोरी करने के कार्य को ही जायज़ क़रार देकर झगड़ा तय कर लिया जाय। इस प्रकार बाह्यरूप से चोरों की संख्या अवश्य घट जायगी, लेकिन क्या वास्तव में वह बुराई दूर होगी— इससे क्या समाज का कल्याण होगा? हमें ऐसी दशा में उस स्थिति को ही दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए, जो लोगों की प्रवृत्ति को चोरी की ओर झुका रही है। मानसिक विकार दूर हो जाने के बाद कोई भी सुधार सहल हो जाता है।

मुरली०—यही तो मैं भी कहता हूँ। पति के अभाव में स्त्रियाँ व्यभिचार करने पर मजबूर होती हैं। पति मिल जाने से उनकी यह स्थिति बदल जायगी। फिर उन्हें व्यभिचार का ध्यान तक न आएगा।

रमा०—यहीं तो तुम ग़लती कर रहे हो। दूसरे पति के साथ उनका सम्बन्ध व्यभिचार का ही होगा।

मुरली०—देखो जी, मैं इस प्रकार के काल्पनिक असाध्य आदर्श को स्वीकार नहीं करता। उदाहरण के लिए चोरी ही क्यों पाप है? यदि यह पाप है तो मैं यह साबित कर सकता हूँ कि हम-तुम सभी चोर हैं। क्या अमीर लोग ग़रीबों के हक़ मारकर घर में बैठे जो मौज करते हैं, यह चोरी नहीं है? ग़रीब लोग जो चोरी करते हैं वह तो वास्तव

में चोरी नहीं है। उन्हें तो समाज चोरी करने के लिए बाध्य करता है। इसी प्रकार विधवाएँ भी समाज द्वारा इस बात के लिए मजबूर की जा रही हैं कि वे व्यभिचार करें। उनका व्यभिचार समाज की दृष्टि में भले ही पाप हो, किन्तु मेरी अन्तरात्मा इस बात को क़बूल नहीं करती है। तुम एक तोते को पिंजरे में बन्द करते हो, उसे वह बन्धन पसन्द नहीं। वह मुक्ति के लिए प्रयत्न करता है, पिंजड़े के छड़ों को चोंच से काटने का प्रयत्न करता है, इसमें उस तोते का क्या क़सूर ? क्या किसी स्वतन्त्र कीर को भी तुमने पिंजड़ा काटते देखा है ! अवश्य ही इस कार्य से कीर को ही कष्ट होता है, पिंजड़े का कुछ नुक़सान नहीं होता। किन्तु इससे क्या, अन्याय का प्रतिकार करना स्वाभाविक धर्म है, भले ही प्रतिकारी को इससे कष्ट उठाना पड़े।

रमा०—तुम्हारा कथन कई अंशों में ठीक मानता हूँ, पर यह तो सोचो कि यदि आज हमारे सामने ये आदर्श, जिन्हें तुम असाध्य कहकर तुच्छ समझ रहे हो, न होते तो इस जगत् की क्या दशा होती ? इन आदर्शों के होते हुए तो हम रात-दिन अनाचार में लिप्त रहते हैं, इनके न होने से तो घोर अनर्थ फैल जाता।

मुरली०—दुनिया भर के आदर्शवादी मर गए, अब तुम पैदा हुए हो। आज तक न जाने कितने आचार्य पैदा हुए और अपने आदर्शों की गठरी लिए हुए एक दिन

चल बसे, लेकिन दुनिया से चोरी-व्यभिचार न उठा। मनुष्य का स्वभाव नहीं बदला जा सकता। कामोत्तेजना मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है, यह रोका नहीं जा सकता। पुरुष लोग अपनी इस वासना को क्यों नहीं रोकते। वे तो साठ वर्ष की अवस्था तक शादी करें। केवल यही नहीं, व्यभिचार तक करने की उन्हें स्वाधीनता रहे, और सोलह वर्ष की एक विधवा के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य की व्यवस्था! क्या दुनिया भर का आदर्श और आचार स्त्रियों के लिए ही बना है?

रमानाथ ने वाद-विवाद अधिक बढ़ते देख संक्षेप में इसे समाप्त करने के अभिप्राय से कहा—अब तो सरला का प्रश्न साधारण नहीं रहा। केवल विधवा-विवाह की बात तो है नहीं, कलङ्किनी कहकर वह समाज से अलग कर दी गई है। अब विधवा-विवाह पर लेक्चर देना बन्द कर यह बताओ कि उसका उद्धार किस प्रकार किया जा सकता है।

मुरली०—क्या तुम्हारी समझ में भी सरला कलङ्किनी है?

रमा०—नहीं, हर्गिज़ नहीं।

मुरली०—तब समाज की राय को ताक पर रखकर साहसपूर्वक सरला को स्वीकार करो।

रमा०—देखो, मनुष्य समाज से अलग होकर नहीं रह सकता। मेरे सरला को स्वीकार कर लेने पर भी समाज में

विधवाओं की दशा में कोई अन्तर नहीं आएगा। यह प्रश्न व्यक्तिगत नहीं, सामाजिक है। समाज के द्वारा ही इसे हल करना होगा। जब तक समाज की राय नहीं बदलती, तब तक व्यक्तिगत कार्रवाई से कुछ काम न होगा।

समाज शब्द से मुरलीधर को कुछ चिढ़-सी थी। रमानाथ की बात सुनकर वह बहुत उत्तेजित होकर कहने लगा—देखो जी, समाज की आड़ में अपनी दिली कमज़ोरी को मत छिपाओ। अगर तुममें हिम्मत है, तो खुले तौर सरला को स्वीकार करो। समाज क्या करेगा? समाज ने आज तक कभी भी सुधारकों का स्वागत नहीं किया है। प्रत्येक सुधार पर समाज शोर-गुल मचाता है। लेकिन हिम्मत कर जब वे कुछ सुधार का काम कर डालते हैं, और जब उनकी संख्या बढ़ने लगती है, तब कुछ दिन तक विरोध करने के बाद लोग आप ही चुप हो जाते हैं। यही देखो न, होटलों में जाकर निषिद्ध भोजन करने वालों को, परदा-प्रथा के सिर पर पाद-प्रहार कर अपनी बीवियों को लेकर मोटरों पर सैर करने वालों को, विदेश-यात्रा करने वालों को तथा असवर्ण-विवाह करने वालों को क्या समाज फाँसी पर चढ़ा देता है? हिम्मत चाहिए, हिम्मत! अगर हिम्मत है तो आगे बढ़ो, नहीं तो आज से सरला की बात छोड़ो। किसी का काम किसी के बिना अटका नहीं रहता। तुम्हारे बिना सरला का काम भी चल जायगा।

मुरलीधर की उत्तेजना देखकर रमानाथ ने विवाद को बन्द कर देना ही उचित समझा। इस समय आवेश के कारण मुरलीधर रमानाथ की हालत को समझने में असमर्थ था। फलतः उससे इस समय रमानाथ अपने मन के मुताबिक़ कुछ सलाह पा सकेंगे, इसकी ज़रा भी सम्भावना न थी, इसलिए रमानाथ वहाँ से उठकर चल दिए!

के नाम लेने का भी अधिकार नहीं रहा। इस कलङ्कित मुख को लेकर वहाँ जाना तथा उस शुद्ध वातावरण को अपवित्र करना उसे उचित नहीं जान पड़ा। अपनी सखी पार्वती का भी उसे स्मरण हुआ, लेकिन वह किस प्रकार उसे सहायता दे सकती है, यह वह न सोच सकी।

फिर क्या करे? संन्यासिनी बनकर गङ्गा-तट पर निवास करे? किन्तु क्या वहाँ भी रामलाल सरीखे नर-पशु न होंगे? यह रूप और यौवन, जिसके कारण उसकी यहाँ दुर्गति हुई, वहाँ भी तो उसके साथ ही रहेगा। वहाँ कौन उसकी रक्षा करेगा? हाय भगवन्! तुमने रूप तो दिया, किन्तु उसकी रक्षा के लिए कोई आयुध प्रदान न किया!!

तब क्या किसी सद्‌गृहस्थ के यहाँ नौकरी करे? किन्तु इस परिचित स्थान में उस कलङ्किनी को कौन भलामानुस अपने घर में स्थान देगा? यदि किसी दूसरी जगह चली जाय तो फिर वही रक्षा का सवाल सामने आता है। कौन जाने, आश्रय मिला न मिला। यदि मिला भी तो इसमें कितना विलम्ब लगेगा।

भिक्षा से भी गुजर हो सकती है, किन्तु यह कैसे विश्वास कर लिया जाय कि वहाँ लोग उसके रूप की ओर आकर्षित न होंगे। इस प्रकार जिस ओर वह दृष्टि दौड़ाती, उसी ओर अन्त में इसी नतीजे पर पहुँचती—अपनी रक्षा का मार्ग उसे दिखाई न देता।

आश्रय ! आश्रय चाहिए। बिना आश्रय के अकेले रहने में कुशल नहीं है। किसी न किसी का सहारा पाना अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन यह सहारा वह कैसे प्राप्त करे, यह उसकी समझ में न आता था। थककर वह अपने इष्टदेव, अनाथों के नाथ भक्त-वत्सल शङ्कर भगवान् का नाम स्मरण करने लगी।

प्यासे को ही शीतल जल के मिठास का वास्तविक मूल्य अनुभव होता है। इसीलिए जब सरला के कान में आवाज़ पड़ी—'बेटी, इस एकान्त में बैठकर उदास भाव से क्या सोच रही हो ?' उस समय उसे बोध हुआ, मानो स्वयं जगदम्बा ने उसे सम्बोधन किया है। अब उसे आश्रय मिल गया। ऊपर आँख उठाकर सरला ने देखा, एक वृद्धा खड़ी है। उसकी आँखों से दया का समुद्र उमड़ रहा है। वस्त्राच्छादन से पवित्रता फूटी पड़ती है। हाथों में सुमिरनी धारण किए हुई वृद्धा हरिनाम की रट लगा रही है। मुख पर वृद्धावस्था की झुर्रियाँ पड़ गई हैं, किन्तु उँगलियों में यौवन का सा तेज और चञ्चलता भरी हुई है।

वृद्धा की भाव-भङ्गी देखकर सरला का मन श्रद्धा से भर गया। चरणों में मस्तक नवाकर उसने कहा—माँ, मैं दुःखिनी हूँ।

बुढ़िया—यहाँ क्यों बैठी हो बेटी ? इस प्रकार आबादी के बाहर सुनसान एकान्त में तुम सरीखी रूप-लावण्यमयी

युवती के लिए अकेले बैठना कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता।

सरला—तब कहाँ जाऊँ माँ? संसार में मेरा कोई नहीं है। मैं एकदम आश्रयहीन हूँ—पति, माता-पिता, सखी-सहेली, हित-कुटुम्ब एवं समाज—सभी ने मेरा परित्याग कर दिया है। मेरे न घर-द्वार है, न ठहरने के लिए कोई स्थान; ऐसी दशा में मैं कहाँ जाकर आश्रय लूँ?

बुढ़िया—बेटी, परमात्मा सबको आश्रय देते हैं। चल, उठ, तू मेरे साथ रहना। मेरे कोई नहीं है—मेरी गोद सूनी है। तुझे देखकर न जाने क्यों मेरा मन वात्सल्य भाव से भरा जा रहा है। मेरे यहाँ चलकर मेरी पुत्री बनकर मेरे घर की शोभा बढ़ाना।

कल रात से लेकर इस समय तक सरला की सभी दुर्गति हो गई। भाग्य के क्रूर चपेटों से उसका मन एवं मस्तिष्क क्षत-विक्षत हो रहा था, लेकिन सरला अभी तक उन्हें चुपचाप सहन करती आई थी। केवल एक बार ही उसके आँसू अपने दरवाज़े पर पहुँचकर गिरे थे। बचपन से ही उसे दुःख सहने की आदत-सी पड़ गई थी, लेकिन इस समय—इस दुःखातिरेक के समय माता का स्नेह पाकर वह अपने आँसुओं को रोक न सकी, अपने कलेजे को वह थाम न सकी—उसे ज़ोर से रोना आ गया। कुछ देर तक रो लेने के बाद उसका जी बहुत हलका मालूम हुआ!!

उसने सोचा—इस दया-मूर्त्ति वृद्धा को धोखा देना ठीक नहीं। इसी विचार से उसने कहा—माँ, तुम्हें मेरा इतिहास मालूम नहीं। यदि मालूम हो जाय तो कभी मुझे पुत्री कहकर सम्बोधन करना स्वीकार न करो। मैं तुमको धोखा देना नहीं चाहती माँ! मैं किसी भले घर में स्थान दिए जाने योग्य नहीं हूँ। तुम धैर्य से मेरी राम-कहानी सुन लो, फिर जैसा उचित समझना वैसा करना।

बुढ़िया—बेटी, यह तुम क्या कहती हो? तुम चाहे कैसी ही नीच, पतित, अधम क्यों न हो, पर मैं तुम्हें स्थान दूँगी। दूसरे का दुःख मुझसे देखा नहीं जाता। चलो मेरे साथ, विलम्ब करने से कुछ लाभ नहीं। भूख-प्यास से तुम्हारा मुख सूख गया है। घर चलकर फुरसत के समय तुम्हारी कहानी सुन लूँगी।

सरला ने मन ही मन परमात्मा को धन्यवाद दिया और वह बुढ़िया को मन ही मन भक्ति-भाव से प्रणाम कर उठी और उसके साथ चलने लगी!!

बिलासपुर से कटनी को जो गाड़ी जाती है, उसी लाइन में रामगढ़ से छः-सात स्टेशन के बाद गौरेला नाम का एक स्टेशन है। गौरेला से लगभग तीन मील की दूरी पर पेण्डरा नाम का एक क़स्बा है। एक समय यह एक ज़मींदारी थी, किन्तु आजकल कोर्ट ऑफ़ वार्डस के अधिकार में है, और एक मैनेजर उसका कर्त्ता-धर्त्ता है। यहाँ से लगभग अठारह मील की दूरी पर हिन्दुओं का अमर-कण्टक नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। यह स्थान रीवाँ-राज्य के अन्तर्गत है।

यह घने जङ्गल के बीच में स्थित है। वास्तव में अमर-कण्टक मेकल पर्वत की चोटी का नाम है। इसी स्थान से पवित्र-सलिला नर्मदा नदी निकली है। सोनभद्र और अरपा नदी भी यहीं से बही हैं। तीन-तीन नदियों के उद्गम-

स्थान होने से ही यह तीर्थ-स्थान बन गया है। यहाँ का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त मनोरम है। जल-प्रपात के समीप स्वभावतः ही आकर्षक होता है, फिर यहाँ का तो दृश्य जल-प्रपात के अतिरिक्त निकटवर्ती जङ्गल भी देखने ही योग्य है।

फूलों की बहार का यहाँ क्या कहना है। फूलों के जङ्गल लगे पड़े हैं। प्रसिद्ध गुलबकावली के फूल का होना भी यहीं बताया जाता है; किन्तु वास्तव में यह वही प्रसिद्ध गुलबकावली का फूल है, जिससे समस्त नेत्र-रोग दूर होते थे, बल्कि जिससे अन्धों को आँख मिलने तक की कहानियाँ मौजूद हैं अथवा कोई दूसरा—यह निश्चित-रूप से नहीं कहा जा सकता।

कुछ लोगों का कथन है कि यहीं पर उर्दू-साहित्य की प्रसिद्ध राज-कन्या गुलबकावली की मायाविनी राजधानी थी, जिसका आज लोप हो गया है। प्रसिद्ध महाराष्ट्र विद्वान् कीबे महाशय तो इसी को लङ्का सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने कई अखण्डनीय तर्क पेश करने की कोशिश की है, किन्तु अभी तक यह बात निश्चित-रूप से तय नहीं हो पाई है। कुछ भी हो, इतना निश्चित है कि यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान है; और यदि इस स्थान में खोज का काम हुआ तो सम्भवतः कुछ आश्चर्यजनक बातों का पता लग सकेगा। इन्हीं सब बातों

को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि इस स्थान को तीर्थ-स्थान माने जाने के यथेष्ट कारण हैं।

इस सुरम्य एकान्त जङ्गली स्थान में तपश्चर्या तथा आत्म-चिन्तन की सुविधा देखकर भिन्न-भिन्न पन्थ के साधु-सन्त सदैव ही यहाँ अड्डा जमाए रहते हैं। संसार के उत्ताप से उत्तापित हो, शान्ति-लाभ के लिए या साधु-वेष में माया-जाल बिछाकर पूड़ी-हलुवा उड़ाने तथा यात्री-कुलाङ्गनाओं का अधरामृत पान करने के लिए अथवा आत्म-लाभ करने के लिए ही लोग इस फलदायक स्थान की ओर आकृष्ट होते हैं, और अपना-अपना काम सधते देख, यहाँ रम जाते हैं।

कलकल निनाद करती हुई नर्मदा का प्रवाह तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है। तटवर्ती के एक मनोरम लता-कुञ्ज में जटा-जूटधारी एक साधु की गम्भीर मुद्रा ध्यान में निरत है। वन-लता-परिवेष्टित स्फटिक-शिला पर साधु की गम्भीर मुद्रा, सुगन्धि-सनी मन्द वायु, समीपवर्ती रम्य वनस्थली एवं सरिता का अनन्त कलरव मन पर एक अनिर्वचनीय प्रभाव डालते हैं।

शान्त भाव से साधु ने नेत्र खोले। वे सोचने लगे—इस शिला पर मेरे पूर्व न जाने कितनों ने बैठकर कितनी ही बातों की चिन्तना की होगी। इस पत्थर में न जाने कितने विचारों के चिह्न अङ्कित हैं, किन्तु इन्हें पढ़ने की शक्ति किसमें है? साधु का ध्यान नदी के कलरव की ओर आकर्षित

हुआ। वे फिर सोचने लगे—नदी का जल कभी यह नहीं सोचता कि वह कितने दिनों से इस प्रकार निनाद करते हुए आगे बढ़ रहा है। वह यह भी नहीं विचारता कि वह कहाँ से आया है और कहाँ जायगा; उसकी यात्रा कभी समाप्त होगी या नहीं ? क्या उसका कलकल निनाद या प्रवाह अनन्त है ? इन बातों की उसे चिन्ता नहीं है या यह भी हो सकता है कि उसमें चेतना ही न हो। तब क्या अज्ञान ही—चेतना-हीनता ही पूर्ण आनन्द है ? क्या इसी का नाम मुक्ति है ?

अभी तक साधु की मुद्रा शान्त थी। विचार-मग्नता का भाव उनके मुख पर झलक रहा था, किन्तु एकाएक उसमें परिवर्त्तन हुआ। मन को संयत करने के लिए वे उठकर टहलने लगे, किन्तु उनके मन की चञ्चलता कम न हुई। वे सोचने लगे—आज पाँच साल की कठिन तपस्या, कठोर आत्म-निग्रह तथा संयम के बाद भी मन स्थिर क्यों नहीं होता ? संसार की स्मृति, पीछे छूटी हुई बातों की याद रह-रहकर क्यों चित्त विचलित करने लगती है। जो कुछ पीछे छोड़कर चला आया, जिन स्वर्ण-प्रतिमाओं को हिंसक संसार में सदा के लिए विसर्जित कर आया, वे फिर क्यों मेरे पीछे पड़ी हुई हैं ? इन पाँच वर्षों में एक दिन के लिए भी उन बातों को नहीं भूल सका। संसार का मोह—संसार में फिर से रहने की इच्छा नष्ट क्यों नहीं हो जाती ?

रह-रह कर मन इन्हीं बातों की ओर क्यों आकर्षित हुआ करता है? तब क्या इस प्रकार संसार से अलग होकर, तथा संन्यासी बनकर रहना और आत्म-चिन्तन में लीन रह सकना असम्भव है—अस्वाभाविक है? आज पाँच वर्ष से लगातार इन्हीं प्रश्नों पर विचार कर रहा हूँ, लेकिन उन्हें हल नहीं कर सका। तब क्या फिर वापस होना पड़ेगा? फिर न जाने किस विचार से साधु काँप उठे! उनके रोंगटे खड़े हो गए! साधु ने अपने गुरु से मिलकर अन्तिम निश्चय करने का विचार किया और वे वहाँ से चल पड़े!!

वहाँ से उनके गुरु के आश्रम का मार्ग घने जङ्गलों से होकर पड़ता था। इस स्थान से लगभग छः-सात मील की दूरी पर उनके गुरु निवास करते थे।

घने जङ्गलों के बीच एक चौरस खुले स्थान में एक पर्ण-कुटी बनी हुई थी। उसी के सामने वृक्ष की घनी छाया में एक वृद्ध साधु प्रसन्न-चित्त बैठे हुए मुस्करा रहे थे। साधु के शरीर को देखकर उनकी अवस्था का अनुमान करना कठिन था, क्योंकि यद्यपि उनके बाल पक गए थे, तथापि उनका शरीर युवाओं की तरह हृष्ट-पुष्ट एवं सतेज दीखता था।

यही हमारे पूर्व-परिचित साधु के गुरु थे। उनके समीप पहुँचकर साधु ने गुरुदेव को प्रणाम किया। बड़े प्रेम से सिर पर हाथ फेरते हुए गुरु ने उन्हें आशीर्वाद दिया और आसन दिखाकर बैठने का आदेश किया।

साधु के आसन पर बैठ जाने पर गुरु ने हास्यभाव से कुशल-मङ्गल पूछकर उनके नियत समय के पूर्व यहाँ आने का कारण पूछा।

साधु—गुरुदेव, मन को शान्ति नहीं मिलती। आज पाँच वर्ष से मैं कठिन संयम तथा साधना द्वारा आपके बताए मार्ग पर चलता हुआ, शान्ति पाने का प्रयत्न कर रहा हूँ, लेकिन इन पाँच वर्षों में मुझे एक क्षण के लिए भी शान्ति नहीं मिली।

गुरु—शिष्य, मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था कि तुम्हारे लिए यह मार्ग नहीं है, तुम वापस जाकर संसार में मन लगाओ और कर्म-योग की साधना करो, लेकिन तुमने मेरी बात नहीं मानी और यहीं रहकर जीवन बिताने का निश्चय किया।

साधु—गुरुदेव, संसार से तो मैं एकदम त्रस्त हो गया हूँ। वहाँ रहकर किस कार्य की साधना में जीवन व्यतीत करूँ। वहाँ रहकर माया-जाल से बचना कठिन है।

गुरु—तुम पूछते हो, संसारी बनकर किस कार्य की साधना करूँ? क्या संसार में तुम्हारे लिए—पुण्यात्मा से पुण्यात्मा प्राणी के लिए—काफ़ी काम नहीं है? इन पाँच वर्षों से तुम असाध्य साधन में लगे हुए हो। सोचो तो, इतने समय में तुम्हें क्या लाभ हुआ। एक प्रकार से तुमने अपना इतना समय व्यर्थ नष्ट किया। यदि संसार में रह-

कर तुमने एक भी दुखिया का दुख दूर किया होता, एक भी अन्धकारपूर्ण हृदय में प्रकाश तथा टूटे हृदय में आशा का सञ्चार किया होता एवं एक भी मलिन मुख पर हँसी की क्षीणातिक्षीण रेखा लाई होती, तो अक्षय पुण्य के भागी हुए होते।

साधु—गुरुदेव, तब आप यहाँ क्यों हैं? आपने क्यों संसार छोड़ दिया? आप वहाँ चलकर अपने उपदेश से लोगों का उपकार क्यों नहीं करते?

गुरु—मैं यहाँ क्यों पड़ा हुआ हूँ, तुम्हें इस समय यह समझाना कठिन है। सबके लिए एक ही मार्ग नहीं है। तुम नित्य-प्रति देखते हो, कोई ईसाई है तो कोई यहूदी, कोई हिन्दू है तो कोई मुसलमान और कोई वकील है, तो कोई जज—संसार के सभी आदमी एक ही कार्य नहीं कर सकते। विभिन्नता ही संसार का प्रधान गुण है। हर समय, हर अवस्था और हर भाग में तुम्हें विभिन्नता ही दृष्टिगोचर होगी। विभिन्नता ही संसार है—एकता तो प्रलय का रूप है।

साधु—आपके कहने का तात्पर्य यही है न, कि मुझमें अभी इस जीवन में आने की योग्यता नहीं है, किन्तु विना किसी कार्य के प्रारम्भ किए, बिना अभ्यास किए, योग्यता कैसे आएगी?

गुरु—वकील बनने के लिए एक ख़ास परीक्षा पास

करनी पड़ती है। यह परीक्षा भी एकदम पास नहीं की जा सकती। कई परिस्थितियों से गुज़रकर तब आदमी इस परीक्षा में उम्मीदवार होने के योग्य होता है। बिना इन बातों को हासिल किए यदि कोई व्यक्ति यह दावा करे कि उसे वकालत करने की आज्ञा दे दी जाय, वकालत करते ही उसमें वकील बनने की योग्यता आ जायगी, तब क्या उसका कहना जायज़ होगा ?

साधु—नहीं, कभी भी नहीं; लेकिन वकालत से मेरी परिस्थिति में अन्तर है।

गुरु—मैं उसे ही तो समझा रहा हूँ। हिन्दू-धर्म 'वर्णाश्रम-धर्म' कहा जाता है। इसमें जीवन के चार विभाग किए गए हैं। ये जीवन की चार महान् परीक्षाएँ हैं। विद्याध्ययन तथा शरीर को पूर्ण विकसित करने के लिए ब्रह्मचर्याश्रम है; इन्द्रियों की तृप्ति के लिए, संसार से अनुभव एवं शिक्षा ग्रहण करने के लिए गृहस्थाश्रम है; सांसारिक झगड़ों से अलग होकर सांसारिक अनुभव पर एकान्त में मनन करने, इन्द्रिय-निग्रह करने और संसार से अलग होने के अभ्यास के लिए वाणप्रस्थाश्रम है तथा इसके बाद आत्म-चिन्तन एवं आत्म-लाभ के लिए संन्यास की व्यवस्था की गई है।

इसमें उलट-फेर होने से साधारण क्रम में बाधा आती है। इन बातों की व्यवस्था बिना पूर्ण विचार के नहीं निश्चित हुई है, और आज तक संसार में इससे अच्छी व्यवस्था

किसी ने नहीं की है। यदि प्रारम्भ से ही लोग संन्यासी बनकर जङ्गल में निवास करने लगें, तो लोक-संग्रह, सन्तानोत्पत्ति आदि का कार्य कौन करेगा ? फिर ऐसे संन्यासियों का मन शीघ्र विचलित हो सकता है, उनकी अतृप्त इन्द्रियाँ शीघ्र लालसा से पागल हो सकती हैं। सदैव गृहस्थ बने रहने से भी हानि है। आधी अवस्था बीत जाने पर भी यदि लोग सांसारिक बने रहें, तो अयोग्य सन्तान उत्पन्न होगी, व्यभिचार फैलेगा और नवीन सन्तति के मार्ग में रुकावट पेश होकर, उनके स्वाधीन विकास में बाधा आएगी।

साधु—क्या भीष्मपितामह, परशुराम आदि का उदाहरण अनुकरणीय नहीं है ?

गुरु—ये तो साधारण नियम के अपवाद मात्र हैं !

साधु—क्या कर्मयोग का मार्ग संन्यास से भी अधिक दुरूह नहीं है ? यहाँ, संसार से इतने दूर एकान्त में, मनुष्य को अपना मन एक ओर लगाने में सरलता होती है। वहाँ माया के प्रपञ्च में पड़कर लोग पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं।

गुरु—ठीक है। कर्मयोग संन्यास से भी कठिन है, किन्तु कठिन होते हुए भी वह स्वाभाविक है और इसलिए सरल एवं सहज है।

साधु—तब क्या लौट जाऊँ ? आपने भी मुझे आश्रय न दिया।

गुरु—बेटा, इस अतृप्त मन को लेकर इस जङ्गल में तुम मेरे सहारे भी नहीं रह सकते। मेरे पास जादू की छड़ी तो है नहीं, जिसके स्पर्श से तुम्हें संन्यासी बना दूँ। रमानाथ, जाकर सांसारिक बनो और लोक-सेवा में मन लगाओ! उस मार्ग-द्वारा भी तुम्हारा कल्याण ही होगा।

मानाथ वास्तविक अर्थ में संन्यासी बनकर एकान्त वास करने लगे थे, ऐसा बोध नहीं होता । संसार के भँवर से परास्त होकर, अपनी ज़िम्मेदारी को सँभाल न सकने के कारण ही वे संसार के कार्यक्षेत्र से भाग खड़े हुए थे ।

प्रायः सभी व्यक्तियों के जीवन में एक न एक ऐसा अवसर उपस्थित होता है । जब चारों ओर से चपेट खाकर लोग हताश हो जाते हैं, तब सामने अन्धकार छा जाता है—मार्ग दिखाई नहीं देता । अधिकांश लोग जीवन के इसी सन्धि-स्थल पर पहुँचकर पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं । ऐसे समय में जो धैर्य नहीं छोड़ते, उन्हीं की विजय होती है, वे ही अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचकर सुख-शान्ति का लाभ करते हैं । रमानाथ भी यहीं आकर पथ-भ्रष्ट हुए ;

भावुक मन को थोड़ी-सी बात से भी बड़ी ठेस लगती है। रमानाथ के मन में भी सरला को लेकर भारी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। वे सरला की दुर्दशा का अपने को ही अपरोक्ष ज़िम्मेदार समझने लगे।

इसके अलावा इस सम्बन्ध में उनका क्या कर्त्तव्य है, इसे भी तय न कर सकने के कारण उनका चित्त व्याकुल रहने लगा। उन्हें भूख-नींद सभी हराम हो गई। उनके मानस-चक्षु के सामने रात-दिन सरला की उदास मूर्त्ति वर्त्तमान रहकर उन्हें वेदना पहुँचाने लगी। अपनी आत्मा की यह धिक्कार उनके लिए असह्य हो उठी। उनके सामने केवल दो मार्ग थे—या तो वे सरला की चिन्ता छोड़ दें या उसे सहायता देने का साहस करें; लेकिन वे इसमें से एक भी कार्य न कर सके। फलतः उनकी मानसिक शान्ति नष्ट हो गई !

आख़िर अपने बहनोई को उन्होंने एक पत्र लिखा कि वे देशाटन को जाने वाले हैं, इसलिए शीघ्र ही आकर वे पार्वती को ले जायँ। पत्र पाते ही उनके बहनोई पहुँच गए और पार्वती भाई के लिए विलाप करती हुई उनके साथ चल दी।

पार्वती को विदाकर रमानाथ ने अपनी ज़मींदारी का दस साल के लिए बन्दोबस्त किया, रुपए-पैसे, काग़ज़-पत्तरों को ठिकाने लगा, घर में ताला बन्द कर, एक दिन

समस्त माया-ममता का परित्याग कर वे रामगढ़ से चल पड़े। उस दिन से रमानाथ का किसी को पता न लगा। पार्वती अपने बन्धु के लिए रो-रोकर दिन बिताने लगी।

रमानाथ कुछ दिन इधर-उधर भटककर अमरकण्टक में निवास करने लगे। आज उन्हें फिर दूसरा मार्ग ग्रहण करना पड़ रहा है, उन्हें फिर संसार में जाना होगा। जिस संसार से उन्हें वैराग्य हो चुका था, वही संसार आज उन्हें प्रबल रूप से आकर्षित कर रहा था, लेकिन उनका भीरु, अकर्मण्य हृदय डर रहा था, पैर काँप रहे थे और आगे चलने को उठते न थे।

उनका हृदय किसके लिए उछल रहा था, इसे समझने में उन्हें विलम्ब न हुआ। जिसके लिए रमानाथ का दिल पहलू बदल रहा था, उसका चित्र-पट उनके मानस-चक्षु के सामने, पाँच साल का समय गुज़र जाने पर भी, अत्यन्त स्पष्ट था। आज तक वे इसी मूर्ति को भूलने के लिए परिश्रम कर रहे थे। इसी को भूलने के लिए उन्होंने वनवास किया था, पर इससे मिलन की लालसा और भी भभक उठी। कैसी विरोधी बातें हैं!

इन्हीं विचारों में लीन रमानाथ चले जा रहे थे। वे अपने विचारों में इतने तल्लीन थे कि राह का उन्हें पता न चला कि वे कितनी दूर निकल आए। सामने नदी थी। नदी के समीप आकर उनका ध्यान भङ्ग हुआ। वर्षा के

कारण पहाड़ी नदी में पानी बढ़ आया था। रमानाथ को रुकना पड़ा। वे सोचने लगे—क्या नदी मुझे संसार में जाने से मना कर रही है ?

इसी समय अचानक उनकी दृष्टि किनारे की झाड़ी से अटकी हुई किसी वस्तु पर जा पड़ी। यह तो लाश-सी जान पड़ती है! वे अपनी चिन्ता भूलकर उस शव के समीप पहुँचे। किनारा ढालू था और काँटों के कारण वहाँ तक पहुँचना कठिन था। फिर भी जहाँ तक शीघ्रता से हो सका, वे शव के समीप पहुँच गए और उसे उठाकर किनारे ले आए।

किन्तु यह क्या! शव को देखते ही रमानाथ के शरीर से पसीना निकल पड़ा, उनके हाथ-पैर काँपने लगे। यथेष्ट परिवर्त्तन हो जाने पर भी भला क्या वे सरला को न पहचानते ? कुछ देर तक तो रमानाथ यह न सोच सके कि उन्हें क्या करना चाहिए, लेकिन शीघ्र ही उन्होंने मन को संयत किया। सबसे पहले उन्होंने यह जानने की कोशिश की कि इसमें जान है या नहीं। उन्होंने सरला के श्वास और नाड़ी की परीक्षा कर यह पता लगा लिया कि उसमें जीवन शेष है, प्रयत्न करने से उसके जीने की आशा की जा सकती है।

रमानाथ को उनके गुरु ने नाड़ी का अच्छा ज्ञान करा दिया था, और वनस्पतियों की भी पहचान करा दी थी।

रमानाथ ने सरला को पेट के बल लिटा दिया और फिर पैर पकड़कर चारों ओर ख़ूब घुमाया। परिणाम यह हुआ कि सरला के पेट से बहुत-सा पानी बाहर आ गया। दो-चार बार इसी क्रिया को दुहराने से सरला के पेट का क़रीब-क़रीब सब पानी निकल गया और श्वास की गति बहुत-कुछ ठीक हो गई। श्वास चलते देखकर रमानाथ को कुछ आशा हुई और तब उन्होंने सरला के गीले वस्त्र पर ध्यान दिया। वस्त्र बदलना अत्यन्त आवश्यक था। एक स्त्री का वस्त्र बदलने में रमानाथ को भारी सङ्कोच हुआ, किन्तु करते क्या, कोई उपाय न था। निदान आपद्धर्म के नियमानुसार रमानाथ ने सरला के गीले वस्त्र अलगकर उसे अपना गेरुआ वस्त्र धारण कराया। अब उन्होंने अपना एक कम्बल बिछाकर सरला को उसी पर पेट के बल लिटा दिया और उसके दोनों हाथों को आगे-पीछे घुमाना शुरू किया, जिससे कृत्रिम श्वास पाकर उसके श्वास की गति ठीक हो जाय। इस क्रिया से पन्द्रह-बीस मिनट में सरला की दशा स्वाभाविक स्थिति पर आ गई। अब रमानाथ ने उसकी नाड़ी पर हाथ रखकर देखा तो उसकी गति भी ठीक मिली। जब सरला के जीवन में किसी प्रकार का सन्देह न रह गया, तब उन्होंने उसे एक दूसरा कम्बल ओढ़ाकर आराम से लिटा दिया।

इधर से फ़ुरसत पाकर वे उठे और नज़दीक से ढूँढ़कर

कुछ सूखी लकड़ी तथा एक प्रकार की जङ्गली पत्ती ले आए। पत्तियों को एक पत्थर पर कूटकर लगभग डेढ़ तोला रस निकाला और सरला को पिला दिया और लकड़ियों को जलाकर उसके तमाम शरीर में गरमी पहुँचाई। अब वे सरला के होश में आने की राह देखने लगे।

दवा देने के लगभग एक घण्टे बाद सरला को कुछ-कुछ होश आया। उसने करवट बदलकर आँखें खोलीं और बड़े ग़ौर से रमानाथ की ओर देखने लगी। कुछ देर उनकी ओर घूरने के बाद उसने कहा—तुम्हीं डॉक्टर हो? क्या चाहते हो? रमानाथ इस प्रलाप का कुछ भी अर्थ न लगा सके। उन्होंने उसकी नब्ज़ पर हाथ रखकर देखा, गति ठीक थी, किन्तु सरला फिर बेहोश हो गई।

इन बातों से विदित हुआ कि सरला कम से कम उस दिन चलने-फिरने लायक़ न हो सकेगी। अब रमानाथ को सरला के किसी सुरक्षित स्थान में ले जाने और उसको दूध देने की आवश्यकता प्रतीत हुई, क्योंकि वे सरला को वहाँ अकेली छोड़कर कहीं जा न सकते थे। वह जङ्गली वनस्थली थी और शेर, भालू आदि जङ्गली जानवरों का भय था।

सरला को आग के समीप छोड़कर वे किसी सुरक्षित स्थान की खोज में निकले। वे बड़ी चिन्ता में थे कि उन्हें एक उपाय सूझ पड़ा। पास ही एक पीपल का पेड़ था, जिसकी दो शाखाएँ आपस में इतनी मिली हुई थीं कि उनके

बीच में एक हाथ से अधिक जगह न थी। रमानाथ वहीं से लौट पड़े। सरला को उठाकर वे वहीं ले गए। अपने कम्बल को दोनों डालों से बाँधकर झूला-सा बना दिया और उसी पर सरला को सुलाकर दूसरा कम्बल ओढ़ा दिया। गरमी पहुँचाने के लिए नीचे आग जला दी।

इस समय दिन के दो बज चुके थे। यहाँ से पेण्डरा दो मील से अधिक दूर न था। रमानाथ वहीं से इन्तज़ाम करने के इरादे से उधर ही चल पड़े। पेण्डरा जाकर उन्होंने एक गाड़ी किराए की और दूध भी ले लिया। शाम होने के पेश्तर ही वे घटना-स्थल पर पहुँच गए। सरला उस समय तक भी अचेत थी। सरला को लेकर वे पेण्डरा चले गए और सराय में डेरा डाला। रातभर सरला ख़ूब आराम से सोती रही। प्रातःकाल सूर्य की जीवनदायिनी किरणों के साथ ही उसे चेतना आई। उसके मस्तिष्क से पागलपन का विकार एकदम दूर हो चुका था। उसने बीती हुई बातों का स्मरण करना चाहा। बहुत देर तक सोचने के बाद, उसे धीरे-धीरे कल की घटना का स्मरण हुआ। उसने अनुमान से ही यह निश्चय किया कि इन्होंने मुझे डूबने से बचाया है।

बहुत देर तक वे दोनों चुप रहे। न तो सरला की हिम्मत पड़ती थी कि वह रमानाथ से कुछ कहे और न रमानाथ की ही हिम्मत होती थी कि वे सरला का कुशल-समाचार पूछें। आख़िर सरला ने ही हिम्मत कर रमानाथ

से कहा—आपने मुझे डूबते से बचाकर अच्छा नहीं किया। मेरी जीवन-रक्षा करने से आपको पुण्य तो अवश्य हुआ होगा, लेकिन इसके साथ ही जो पाप होगा, उसकी आप कल्पना तक नहीं कर सकते। जिसके आश्रय का स्थान न हो, भरण-पोषण का ज़रिया न हो, उसकी जीवन-रक्षा करने से क्या लाभ? बताइए, अब मैं कहाँ रहूँगी, कैसे रहूँगी? रमानाथ ने दबी ज़बान से उत्तर दिया—फ़िलहाल मेरे साथ रह सकती हो।

"फ़िलहाल के बाद किसके साथ रहूँगी?"

"मुझे सोचने का अवसर दो। तुम्हारा कुछ न कुछ प्रबन्ध अवश्य ही हो जायगा।"

"आपसे मेरा प्रबन्ध न हो सकेगा। मैं इस योग्य भी तो नहीं हूँ कि मेरा प्रबन्ध किया जाय। मेरा प्रबन्ध किसी भी भलेमानस से न हो सकेगा। आपके साथ रहकर क्यों व्यर्थ ही आपको भी बदनाम करूँ? आप अपना रास्ता लीजिए, मैं अपना।"

रमानाथ ने फिर अनुरोध करते हुए कहा—अभी तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है। तबीयत ठीक हो जाने पर जैसा उचित समझना, करना। कम से कम तब तक तो मेरे साथ ही रहो।

सरला को अपने विषय में कुछ निश्चय करने का अवसर न मिला था, इसलिए रमानाथ के इस प्रस्ताव पर वह भी राज़ी हो गई।

हाँ पर रामगढ़ की एक अत्यन्त आवश्यक संस्था का इतिहास बताए बिना आगे बढ़ना उचित नहीं जान पड़ता। इस संस्था का नामकरण-संस्कार कब हुआ, यह तो हमें मालूम नहीं; लेकिन कई भद्र लोगों के मुँह से हमें पता लगा कि यह 'नानी का अखाड़ा' नाम से विख्यात है और अधिकांश लोग इसे परमावश्यक और उपयोगी संस्था समझते हैं। इसीलिए जहाँ इस नगर में कई वाचनालय तथा सेवा-समितियाँ अर्थाभाव तथा सञ्चालकों की कमी के कारण टूट गईं, वहीं यह संस्था कई वर्षों से खूब चल रही है। इसकी मालकिन एक वृद्धा स्त्री है, जिसे लोग 'नानी' के नाम से पुकारते हैं। इसी के कारण उसकी संस्था का ऐसा नाम पड़ गया है।

वृद्धा का एक लम्बा-चौड़ा मकान है, जिसमें कई कमरे हैं। प्रत्येक कमरा साफ-सुथरा तथा साधारण तौर पर सजा हुआ है। प्रत्येक कमरे में एक खाट है, जिस पर साफ़ बिस्त

लगा रहता है, दो कुर्सी, एक टेबुल और एक लैम्प—यही इन कमरों की सजावट है। कुछ तसवीरें भी दीवारों पर लगी रहती हैं; किन्तु उनका वर्णन करना हमसे न हो सकेगा।

दिनभर इन कमरों में कोई नहीं रहता। यह मकान ही दिन को प्रायः उजाड़-सा मालूम होता है। शाम से चिराग़ जल जाने पर वृद्धा के यहाँ लोगों का आवागमन प्रारम्भ होता है और रातभर बड़ी चहल-पहल रहती है। यह एक प्रकार का नाइट-क्लब (Night Club) है।

वृद्धा युवती स्त्रियों को सदैव बड़े प्रेम से आश्रय देती है। दस-बारह युवतियाँ सदैव उसके आश्रम में रहती हैं। बहुत-सी ऐसी स्त्रियाँ भी हैं, जो रहती तो अपने घरों में हैं, किन्तु उनका सम्बन्ध वृद्धा से तथा इस संस्था से है। आवश्यकता के अवसर पर वृद्धा के ख़बर देते ही सुविधा देखकर वे यहाँ आ जाती हैं। जो युवतियाँ वृद्धा के आश्रम में निवास करती हैं, उनके खान-पान, भोजन-वस्त्र का यथेष्ट ध्यान रक्खा जाता है। विशेषकर वस्त्रालङ्कार तो उनके बड़े मनमोहक एवं उत्तेजक होते हैं। उन्हें देखकर तो यही बोध होता है कि वृद्धा के आश्रम में उनका जीवन बड़े सुख से कट रहा है।

सरला की मुलाक़ात भी इसी वृद्धा से हुई थी। उसने लाकर सरला को इसी वनिताश्रम के समीप एक दूसरे मकान में रक्खा। नए शिकार को, जब तक वह ख़ूब पालतू

न हो जाय, वृद्धा न तो इस आश्रम में लाती ही थी और न उसको इस मकान का भेद ही जाहिर होने देती थी। अपरिचित आगन्तुकों के लिए उसने एक दूसरे मकान की व्यवस्था की थी। इसी में सरला लाई गई। इस मकान में आजकल कोई नहीं था। वृद्धा ने सरला से यही जाहिर किया कि वह इसी मकान में रहती है।

अभी तक सरला के मुँह में एक बूँद जल भी न पड़ा था। रातभर के जागरण तथा एक के बाद एक आने वाली उत्तेजना के कारण उसकी बुरी हालत हो रही थी। जिस प्रकार राहगीर थके होने पर भी जब तक मार्ग तय नहीं कर लेता, तब तक उसे थकावट बोध नहीं होती, ठहरने के स्थान पर पहुँचकर ही उसे अचानक मालूम होता है कि आज वह बहुत थक गया है, उसी प्रकार सरला को भी अभी तक थकावट न मालूम हुई थी। यहाँ पहुँचने पर उसे बड़ी थकावट मालूम हुई। स्नानादि से निवृत्त होकर उसने भोजन बनाया। इस समय सन्ध्या हो चली थी।

यद्यपि यह सोने का समय न था। फिर भी सरला को अधिक देर तक बैठना कठिन जान पड़ा और वह सोने को चली गई, किन्तु उसे नींद न आई। अतीत-जीवन की स्मृतियाँ एक के बाद एक आ-आकर उसे कष्ट देने लगीं। कभी उसे अपना छोटा-सा बाग़ याद आता और कभी देवा-

लय; कभी रमानाथ तो कभी पार्वती; केवल मनुष्य ही नहीं,

घर की दीवार, मिट्टी, गाय-बैल—सभी का वियोग एक-एक करके उसे सताने लगा, सभी के लिए उसके प्राण रोने लगे ! जिस समय वह सोचती—अब इस जीवन में इनसे मुलाक़ात न होगी, उस समय भीतर से हूक उठती और वह अपने आँसुओं को रोकने में असमर्थ हो जाती ।

न्दर्य में बड़ी शक्ति होती है, तथा इसके ज़रिए नाना प्रकार के कार्य सम्पादित होते हैं, ऐसा विज्ञ लोगों का कहना है। लेकिन नई उमर पर सौन्दर्य का अच्छा असर होते इस ज़माने में बहुत कम देखा गया है। सौन्दर्य पर दृष्टि पड़ते ही नवयुवकों का मन मचल उठता है। उसे लेने, लेकर उपभोग करने तथा उसे अपने हाथों से रौंद डालने की पाशविक इच्छा से नवयुवकों का मन पागल हो उठता है। तब सभी नवयुवक पागल क्यों नहीं हो उठते, यह भी प्रश्न विचारणीय है। मन मचलता तो प्रायः सभी का है, लेकिन लोक-लाज, सङ्कोच, रोग, शारीरिक एवं मानसिक शिथिलता आदि के कारण अधिकांश नवयुवक इस पागलपन को दबाने में समर्थ होते हैं। पर जिसकी आँख का पानी एक बार गिर चुका है,

जो एक बार सौन्दर्योपभोग में सफल हो चुका है, उसके द्वारा समाज में प्रतिदिन नाना प्रकार के भीषण काण्ड हुआ करते हैं।

रामलाल इसी श्रेणी के मनुष्यों में से था। म्युनिसिपल-चुनाव आदि के समय देशी कपड़े पहनकर व्याख्यान भी दे दिया करता था। कभी सार्वजनिक कार्यों में भी बहुत दिलचस्पी लेने लगता था, लेकिन स्त्रियों के प्रति उसके ख्यालात अच्छे न थे। दिनभर वह चाहे किसी भी कार्य में क्यों न लगा रहे, शाम को आठ बजे के बाद वक़्त काटने के लिए उसको एक युवती का मिलना अत्यन्त आवश्यक था। रात को देर तक जगने की उसकी आदत-सी पड़ गई थी।

ख़ुदा के फ़ज़ल से उसकी धर्मपत्नी का देहान्त हो चुका था। विवाह का सवाल उठने पर वह उत्तर दिया करता था—अब मेरी उमर सत्ताईस-अट्ठाईस वर्ष की होगई, स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं रहता। मुझे यदि ऐसी स्त्री मिले, जो मेरे मरने के बाद अपना निर्वाह कर ले, तब शादी करूँगा। इसके अलावा भाई, मेरी आदत भी तो बेहद बिगड़ गई है। बाहर घूमने की आदत इतनी ज्यादा बढ़ गई है कि विवाह करना एक जञ्जाल ही समझो। उसमें केवल एक ही अच्छी आदत थी और वह थी उसकी स्पष्टवादिता।

इधर कुछ दिनों से रामलाल की दृष्टि सरला के सौन्दर्य
पर पड़ी थी। यद्यपि सरला दूर के रिश्ते में उसकी बहिन

होती थी, फिर भी वह अपनी पाशविक इच्छा को रोक न सका। उसने सरला के लिए पहले तो साधारण तौर पर प्रयत्न किया, किन्तु जब इस प्रकार उसे कामयाबी हासिल न हुई, तो उसने उस पर ज़बरदस्ती की, ये सब बातें पहले ही लिखी जा चुकी हैं।

सरला के घर से निकाल दिए जाने के बाद उसने 'नानी' को भेजकर सरला को रात्रि-निवास में बुलवा लिया, किन्तु यहाँ आने पर भी सरला के ऊपर क़ाबिज़ होना उसे सम्भव नहीं मालूम पड़ा। तब उसने एक दूसरा मार्ग ग्रहण किया, और इस काम के लिए अपने एक मित्र बाबू सूर्यकान्त तिवारी को वृद्धा की मदद के लिए नियुक्त किया। दो-चार दिनों में सरला स्वस्थ हो गई और जब 'नानी' पर उसका विश्वास जम गया, तब वह उससे खुलकर अपने दुःख-सुख की बातें करने लगी।

'नानी' ने भी अपनी कार्रवाई शुरू कर दी। बात-बात में वह सरला का ध्यान इस बात पर आकृष्ट करने लगी कि स्त्री के लिए विना पुरुष के जीवन बिताना कठिन है। स्त्री को अपनी यौवन-नैया बिना पुरुष-पतवार के सहारे भँवर के पार ले जाना असम्भव है। विधवा-विवाह आदि कई अस्पष्ट बातें वह सरला से कहने लगी, किन्तु सरला की समझ में उसकी अधिकांश बातें न आतीं और इसीलिए उनका वह उत्तर भी न दे सकती।

एक दिन उसने सरला से कहा—बेटी, तुम्हारे सम्बन्ध में यहाँ कई तरह की बातें फैल गई हैं। तुम जब तक इस स्थान का सर्वथा परित्याग न कर दो, तब तक इन दुखदाई बातों से तुम्हारा पिण्ड न छूटेगा। सदैव तुम्हें इन बातों को सुन-सुनकर कष्ट हुआ करेगा। तुम्हारे लिए बेहतर यही है कि तुम किसी सुदूर एकान्त स्थान में जाकर रहो।

सरला—मेरे लिए आश्रय का तो ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ जाकर मैं रहूँ। दया कर तुमने मुझे आश्रय दिया था। अब तुम जैसा कहो, मैं वैसा ही करने के लिए तैयार हूँ। तुम्हारी बात मैं कभी अमान्य नहीं कर सकती।

नानी—मेरे कहने का यह अर्थ नहीं था बेटी, कि मैं तुम्हें अपने पास से अलग कर रही हूँ। मैंने तुम्हारे विषय में ख़ूब अच्छी तरह सोचकर ही यह तय किया है। यहाँ से कुछ दूर पर पेण्डरा ज़मींदारी में मेरी कुछ खेती-बारी है। मैं वहीं तुम्हारे रहने का प्रबन्ध करती हूँ। मैं ख़ुद तुम्हारे साथ चलकर दो-चार महीने रहूँगी। जब तुम्हारा जी वहाँ लग जायगा, तब तुम वहीं रहकर काम देखना। यदि हो सका तो अमरकण्टक चलकर नर्मदा-स्नान भी करेंगे।

इतना हो जाने पर भी सरला को बिलासपुर से स्वाभाविक स्नेह था। वह इस स्थान को छोड़ना नहीं चाहती थी, किन्तु वृद्धा के दया-भार से वह इतनी दबी हुई थी कि उससे 'नाहीं' करते न बना। इसके अलावा उसने यह भी

सोचा कि यहाँ तो वह वृद्धा के लिए एकदम भार-स्वरूप ही है। वहाँ जाकर वह खेती-बारी का काम देखेगी और और बुढ़िया के कुछ काम आएगी। उसे इस प्रस्ताव में कोई ऐसी ख़राब बात भी न दिखाई दी, जिससे वह इन्कार करती। अस्तु, वह पेण्डरा जाने के लिए तैयार हो गई!

सरला और 'नानी' की यात्रा के लिए एक दिन निश्चित हुआ। यात्रा के लिए आवश्यक सामान लेकर उन लोगों ने प्रस्थान किया और स्टेशन पर पहुँचे। पेण्डरा जाने वाली गाड़ी रात के साढ़े सात बजे छूटती थी। लेकिन आफ़त कभी अकेली नहीं आती, ज्योंही ये लोग स्टेशन पर पहुँचे, उधर से पुलिस-जमादार का आगमन हुआ। जमादार साहब ने आते ही अधिकारपूर्ण दृष्टि से चारों ओर देखा। वहाँ सभी तीसरे दर्जे के यात्री पड़े हुए थे। किसी को डाँट, किसी को धक्का एवं किसी को गाली दे, अपने अधिकार की सूचना देते हुए तथा मूँछों को ऐंठते हुए जमादार साहब सरला के समीप पहुँचे। सरला को बड़े ग़ौर से देखा। अकेली युवती को देखकर जमादार साहब को कुछ शक भी हुआ और तबीयत भी बदली। उन्होंने बड़े रोब से पूछा— तुम कहाँ जाओगी? तुम्हारे साथ में कोई है या अकेली हो?

सरला ने कुछ उत्तर न दिया, पर वृद्धा ने कहा—हम लोग पेण्डरा जा रहे हैं। हमारे साथ कोई है या नहीं, इससे तुम्हें क्या मतलब?

जमादार—तुम अकेली औरतें कहाँ जा रही हो ? तुम पर हमें शक होता है। तुमको थाने में चलकर अपना पता लिखाना होगा। इसी बीच में बाबू सूर्यकान्त तिवारी टाँगे से उतरे। उनके बीच में पड़ जाने से इन लोगों को जमादार के चङ्गुल से छुटकारा मिला। गाड़ी आने का समय हो चुका था। बाबू साहब जाकर टिकिट ले आए और सरला तथा 'नानी' को ले जाकर आराम से एक ख़ाली जनाने डिब्बे में बिठा दिया।

इसी बीच में वृद्धा ने बाबू साहब का परिचय देते हुए कहा—वे मेरे भतीजे हैं, पेण्डरा में उन्हीं की ज़मींदारी में मेरी खेती-बारी होती है। आज वे भी अपनी ज़मींदारी का काम देखने के लिए पेण्डरा जा रहे हैं। डरने की कोई बात नहीं है। वे पास ही के एक डिब्बे में रहेंगे और हर स्टेशन पर आकर हमारी ख़बर लेते रहेंगे।

सौन्दर्य को लेकर चलना कितना आपत्तिपूर्ण है, यह सरला को भली-भाँति अनुभव होने लगा था। उधर से जो कोई भी निकल जाता, वह बिना सरला की ओर घूरे या कटाक्ष किए न रहता। सरला को यह सब देखकर खेद भी होता था और भय भी लगता था। वह एक कोने में दबकी हुई परमात्मा का नाम स्मरण कर रही थी!

स्टेशन-कर्मचारियों की दृष्टि भी सरला पर गड़ चुकी थी। वे भी अपनी ताक में थे। जब गाड़ी छूटने को एक

मिनिट रह गया, तब एक टिकिट-कलेक्टर ने आकर टिकिट देखा और यह कहकर कि टिकिट में ग़लती हो गई है, इस टिकिट को लेकर वे लोग इस गाड़ी से नहीं जा सकते, उन्हें गाड़ी से उतारना चाहा। लेकिन सूर्यकान्त बाबू वहीं मौजूद थे, उनके घुड़की देने से टिकिट-कलेक्टर को दुम दबाकर खिसक जाना पड़ा। सरला के जी में जी आया। दो-दो बार इस प्रकार अयाचित अनुग्रह पाकर वह बाबू साहब के दया-भार से दब गई और बाबू साहब को भलमन-साहत की मूर्ति समझने लगी। मन ही मन उसने बाबू साहब को अनेक धन्यवाद दिए और परमेश्वर से उनकी मङ्गल-कामना की, पर बाहर से वह चुप रही। उसे विदित न था कि स्टेशनों पर आजकल युवती स्त्री की सहायता करने वाले बहुत से भलेमानस मिलते हैं।

इसके बाद की यात्रा बिना विघ्न-बाधा के समाप्त हुई। लगभग साढ़े तीन घण्टे में ये लोग गौरेला पहुँचे। वहाँ इन्हें रातभर ठहरना पड़ा। पेण्डरा वहाँ से अधिक दूर न था, लेकिन जङ्गल के कारण रात को यात्री न चलते थे। सवेरे किराए की दो गाड़ियों पर बैठकर ये लोग पेण्डरा पहुँचे और बाबू साहब के मकान पर ही डेरा पड़ा।

पेण्डरा है तो बहुत छोटी-सी बस्ती, किन्तु व्यापार के कारण इसका महत्व बढ़ गया है। यहाँ लाख, लकड़ी, घी आदि का रोज़गार बहुत ज़ोरों पर होता है। आरोग्यवर्द्धक

स्थान होने के कारण यहाँ अक्सर कई प्रतिष्ठित लोग भी स्वास्थ्य-लाभ के लिए आया करते हैं। उनकी सुविधा के लिए कई बँगले भी बना दिए गए हैं। एक बात की यहाँ और भी सुविधा है। आसपास के धनी-नवयुवकों के पाप का यह लीला-क्षेत्र भी है। जिस कार्य की साधना वे रामगढ़ आदि परिचित स्थानों में रहकर नहीं कर सकते, उसे पेण्डरा में आकर वे बड़ी आसानी से कर डालते हैं।

रामलाल ने भी सरला को यहीं लाकर ठीक करने के लिए अपने मित्र तिवारी जी तथा 'नानी' को नियुक्त किया। रामगढ़ के स्टेशन पर होने वाली दो घटनाओं से तिवारी जी को अच्छी सहायता मिली और सरला पर उनकी धाक बैठ गई। सरला को अपने अनुकूल करने का उन्हें अच्छा मौक़ा मिला। एक सप्ताह तक सरला को किसी प्रकार की दिक़्क़त या छेड़छाड़ का सामना न करना पड़ा। तिवारी जी उससे बहुत ही सभ्यतापूर्वक पेश आते थे, और 'नानी' का व्यवहार भी किञ्चित संशय-सूचक न था।

वृद्धा अवसर देखकर अपने भतीजे बाबू सूर्यकान्त की भलमनसाहत, मिलनसारी, परोपकारिता, दयाशीलता आदि का ज़िक्र किया करती थी। उसने कई प्रकार के ऊँच-नीच समझाते हुए एक दिन सरला से कहा—तिवारी जी की भलमनसाहत का नमूना तुम रास्ते में ही देख चुकी हो। वे तुम्हारी तरफ़ आँख उठाकर देखते तक नहीं। सरला

ने कृतज्ञ भाव से इस बात को स्वीकार किया। वृद्धा कहने लगी—तुमको वे बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। बेचारे की पत्नी का दो वर्ष हुए देहान्त हो गया है। वे पढ़े-लिखे नए विचार के आदमी हैं। अभी चाहें तो दस विवाह कर लें, लेकिन वे ऐसा करना नहीं चाहते। उनका विचार किसी विधवा से विवाह करने का है। इसमें दोष ही क्या है बेटी?

सरला ने शङ्कित भाव से उत्तर दिया—मैं क्या जानूँ? और उनकी बात में मुझे दख़ल देने का अधिकार क्या है?

वृद्धा—विधवाओं को यों ही अकेले रहने और गुण्डों का शिकार बनाने की अपेक्षा तो विधवा-विवाह कर लेना कहा अच्छा है बेटी! तुम अपनी बात को लेकर देखो न! यदि मुझसे तुम्हारी मुलाक़ात न हो जाती, तो तुम्हारी क्या दशा होती? बेटी, और मेरा क्या ठिकाना! दो-चार साल की मेहमान हूँ। मेरे न रहने पर तुम्हारे लिए अपनी इज़्ज़त बचाना कितना कठिन हो जायगा, तुम इसका अनुमान नहीं कर सकतीं। बेटी, तुम बड़ी भोली हो, दुनिया का अभी तुम्हें ज़रा भी अनुभव नहीं।

सरला—माँ, यह तो मैं ख़ूब अच्छी तरह जानती हूँ कि अपनी रक्षा करना कठिन है; लेकिन करूँ क्या? उपाय तो कुछ नज़र नहीं आता।

वृद्धा—बेटी, तुम्हारी समझ में नहीं आता तो मुझसे सलाह लो। मैं क्या कभी तुम्हें बुरी सलाह दे सकती हूँ?

इन सब बातों को देखते-सुनते मेरे बाल पके हैं। मैंने दुनिया देखी है। इसीलिए तो लोग बूढ़ों की सलाह मानते हैं।

सरला ने कुछ उत्तर न दिया।

वृद्धा कहने लगी—हाँ बेटी, तो अगर तुम्हें एतराज़ न हो, तो मैं बाबू से बात चलाऊँ। उन्होंने अभी तक अपनी ज़बान से कुछ कहा तो नहीं है, लेकिन मैं आदमी पहचानती हूँ। वे तुम पर अनुरक्त हैं। अपनी तरफ़ से ही देर समझो। वे तो तैयार बैठे हैं। वे तुम्हारी बड़ी तारीफ़ करते रहते हैं।

सरला को चुप देखकर वृद्धा ने कहा—बेटी, ऐसा ख़याल न करना कि मैं तुम्हें धोखा दे रही हूँ, या तुम पर किसी प्रकार का ज़ोर-ज़ुल्म किया जायगा। ऐसी बात नहीं हो सकती।

सरला—तुमसे मेरी बुराई न होगी, इसका मुझे विश्वास है माँ! इसीलिए मैं तुम्हारे साथ हूँ भी।

वृद्धा—तुम तो पढ़ी-लिखी हो बेटी! इन बातों को अच्छी तरह समझ सकती हो। तुम्हें अपना भला-बुरा आप सोचना चाहिए। तुम्हारा इतना सङ्कोच, इतनी लज्जा ठीक नहीं। पढ़े-लिखे लोग झूठी लज्जा नहीं करते। उनका व्यवहार निर्भीक रहता है। तुम भी तिवारी जी से मिला-जुला करो। दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह पहचान लो, फिर जैसा जी में आए, करना; लेकिन इस विषय में सदैव विचार किया करो। अधिक समय खोना ठीक नहीं।
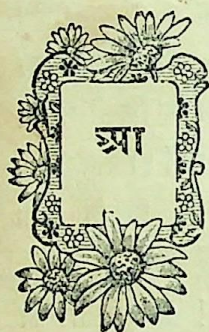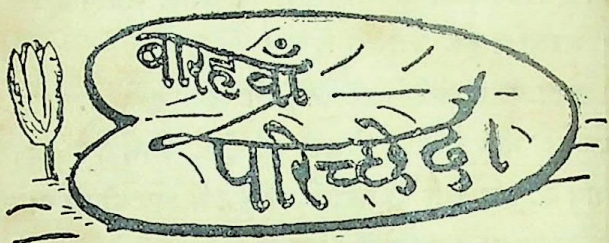
जकल रात को भोजन करने के बाद सरला का सिर घूमने लगता और उसे नींद लगने लगती। उसे बोध होता, जैसे किसी ने उसे नशा खिला दिया हो। रातभर वह बेसुध-सी रहती। सो जाने के बाद सबेरा होने तक फिर वह करवट तक न बदलती। रात की बातों का स्मरण करने पर उसे ऐसा जान पड़ता, मानो रात को उसने स्वप्न देखा हो। स्वप्न में तिवारी जी रोज़ उसके कमरे में आते। उसे यह भी जान पड़ता कि रातभर तिवारी जी उसी कमरे में बिताते हैं। जब-जब उसे कुछ होश-सा आता या नींद खुलने सी लगती, तब-तब वह तिवारी जी को अपने पास ही सोया हुआ पाती। लेकिन उस समय उसमें उठने, बोलने या हिलने-डुलने तक की शक्ति न रहती थी। वह उसी समय विचार करती कि वह

बिस्तर से उठ जाय और कमरे से भागे, लेकिन मारे शिथिलता के वह कुछ न करती। शीघ्र ही उसकी आँख फिर झपने लगती और वह फिर अचेत-सी हो जाती। सवेरे उठने पर उसे अपना शरीर भारी मालूम होता, कपड़े तितर-बितर तथा बिस्तर उलटा-पलटा रहता। दिनभर सुस्ती मालूम होती रहती। धीरे-धीरे उसकी समझ में बात आने लगी, लेकिन ठीक-ठीक वह कुछ निश्चय न कर सकती थी।

इस बात पर विचार करने से उसे लज्जा एवं घृणा हुई। लेकिन ठोकर खाते-खाते आदमी में जो एक प्रकार की शिथिलता आ जाती है, सरला के मन पर आजकल वही शिथिलता एवं उदासी छाई हुई थी। इस समय उसे शान्ति की बड़ी आवश्यकता थी, और वह उसे थोड़ा-बहुत दबकर भी प्राप्त करना चाहती थी। जब से उसने होश सँभाला, तब से आज तक उसे सुख या शान्ति का लेशमात्र भी अनुभव न हुआ था। दुख सहते-सहते उसका जी ऊब-सा गया था। इस समय वह दुख को ही आत्म-समर्पण कर विश्राम लेना चाहती थी। विरोध करने के लिए जिस उत्साह तथा मनोबल की आवश्यकता होती है, वह उसके पास नहीं था। इसीलिए तिवारी जी के उपर्युक्त व्यवहार को वह सह गई—विरोध करने की उसे हिम्मत न पड़ी।

जिस समय संसार के सभी लोगों ने उसे त्याग दिया था, उस समय इन्हीं लोगों के पास आकर उसे आश्रय

मिला, अतएव उसने सोचा—इन लोगों ने विधवा-विवाह का वादा किया ही है, तब इनके हाथ में मुझे आज नहीं तो कल आत्म-समर्पण करना ही होगा। यदि वह बात आज ही हो गई तो क्या हानि, इस बात पर विरोध खड़ा करना व्यर्थ है। ऐसा करने से सम्भव है, ये लोग रुष्ट हो जायँ और मेरा यह अवलम्ब भी छिन जाय। यदि अपनी पवित्रता का ख़याल करूँ, तो उसकी रक्षा मुझसे कभी न हो सकेगी। आज तक का मेरा जो अनुभव है, वह तो एकदम इसके विपरीत है। ऐरे-ग़ैरे समय-कुसमय मुझ पर अत्याचार किया करेंगे और मैं कुछ प्रतिकार न कर सकूँगी, ऐसी दशा में एक भलेमानस को आत्म-समर्पण कर उसके आश्रय में शान्ति से जीवन बिताना ही ठीक है।

यह निश्चय कर लेने पर सरला का मन बहुत-कुछ स्वस्थ हुआ। अब वह तिवारी जी से कुछ अधिक स्वतन्त्रता से मिलने तथा बातचीत करने लगी। तिवारी जी भी सरला की अनुकूलता पाकर जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाने लगे। 'नानी' की शिक्षा और फुसलाने का काम जारी रहा।

एक दिन रात को ज्योंही सरला जाकर अपने बिस्तर पर लेटी, तिवारी जी बिना किसी प्रकार की सूचना दिए ही कमरे के अन्दर आ गए। यद्यपि सरला का मन इस बात के लिए तैयार होगया था और एक प्रकार से उसने निश्चय कर

लिया था; तथापि वह यह भी जानती थी कि शीघ्र ही एक त

एक दिन यह बात होगी, फिर भी अपने शयनागार में उन्हें रात्रि की निस्तब्धता में पाकर वह घबड़ा गई! वह बिस्तर से उठना ही चाहती थी कि तिवारी जी ने उसे खींचकर अपने पास बैठा लिया। सरला को एक विचित्र उत्तेजना का अनुभव हुआ। उसको गुदगुदी-सी मालूम हुई और उसके हाथ-पैर शिथिल हो गए।

तिवारी जी ने संसार का ऊँच-नीच समझाते हुए उसके मन में यह बात पैठाने की कोशिश की कि स्त्री और पुरुष का मिलन प्राकृतिक बात है। बिना पुरुष के स्त्री का अकेली रहना एकदम अनुचित ही नहीं, अधर्म है। इसीलिए आज-कल जितने पढ़े-लिखे विद्वान् लोग हैं, वे विधवा-विवाह करने लग गए हैं। अच्छा समय देखकर विवाह की रस्म अदा कर दी जायगी। युवक-युवती का दिल मिल जाना ही वास्तविक विवाह है।

इसके बाद शराब आई, जिसे अपने हाथों से तिवारी जी ने सरला को जबरन् पिलाया और ख़ुद भी पिया। थोड़ी देर के बाद ही सरला का माथा घूमने लगा। फिर जो होना था सो हुआ!

तिवारी जी इस कार्य में अपने परम मित्र रामलाल के लिए ही अग्रसर हुए थे। ऐसे कामों में वे अक्सर उसकी सहायता किया करते थे, और पुरस्कार में रामलाल की जूठन, बिना गाँठ का पैसा ख़र्च किए ही, मिल जाया करत

थी। पेण्डरा पहुँचने तक तिवारी जी का विचार ठीक था, लेकिन सरला को अपने क़ब्ज़े में पाकर उनकी तबीयत बदल गई। सरला के रूप को देखकर उन्होंने मित्र को धोखा देने का ही निश्चय किया। वे सरला का अकेले उपभोग करना चाहते थे। ऐसे रत्न को पाकर उसमें हिस्सा-बाँट करना उन्होंने सरासर बेवक़ूफ़ी समझी।

उन्होंने यह सब किया तो ज़रूर, लेकिन उनका मतलब पूरी तौर से न सधा—सरला को लेकर वे सुखी न हो सके। जिस सरला को पाने के लिए अपने जन्म के साथी रामलाल को धोखा देकर विश्वासघात किया; जिसके रूप को देखकर वह पागल हो उठे; जिसके लिए उन्होंने इतनी रातें तारे गिनते हुए काटीं, उसे पाकर भी उनकी तृप्ति न हुई। सरला के रूप-यौवन के वे स्वामी थे, लेकिन उसके हृदय की थाह उन्हें न मिलती थी। इसका एक कारण था, जो तिवारी जी की समझ में न आता था।

सरला ने ऐसा तय तो ज़रूर कर लिया था, किन्तु उसे इस जीवन में उत्साह न आता था। प्रयत्न करने पर भी वह किसी प्रकार इसमें दिलचस्पी से भाग न ले सकती थी। इस प्रेम-क्रीड़ा में ज़रा भी आकर्षण न था, शुरू से आख़िर तक शिथिलता थी। प्रेम ही इस कार्य में उत्साह दिलाता है, किन्तु सरला का तिवारी जी पर प्रेम ज़रा भी

न था। प्रेम प्रयत्न से आने वाली चीज़ नहीं है। प्रेम-नाटक

में जब तक दोनों ओर से तन्मयता न आए, इसकी पूर्ति नहीं होती। व्यापारी दृष्टि से भी इस क्षेत्र में कुछ चहल-पहल आ जाती है, लेकिन यहाँ वह बात भी न थी।

ज्यों-ज्यों सरला इस क्षेत्र में आगे बढ़ने लगी, उसकी उदासीनता तथा शिथिलता भी बढ़ने लगी। उसका मन किसी काम में न लगता। ज्यों-ज्यों आगे बढ़कर वह अपने पीछे की ओर दृष्टिपात करती, त्यों-त्यों उसका हृदय दग्ध होने लगता। अपनी पूर्वावस्था की याद कर वह तलमला उठती। पीछे छूटे हुए स्थान पर पहुँचने के लिए उसका मन क्रन्दन करता, किन्तु पीछे लौटने का रास्ता बन्द था, पीछे फिरना असम्भव था। वह आगे जितना चाहे बढ़ सकती थी, किन्तु पीछे लौटने का कोई उपाय उसे सूझता न था। चौबीस घण्टे की इस हृदय-विदारक चिन्ता का परिणाम भयङ्कर हुआ। सरला के स्वभाव में परिवर्त्तन हुआ। वह पहले कभी चुप न बैठती थी, सदैव काम में लगी रहती थी, पर अब वह हरदम हाथ पर हाथ रखकर बैठी रहती और शून्य आकाश की ओर देखा करती। किसी के बुलाने पर शीघ्र उत्तर भी न देती।

पण्डित सूर्यकान्त तिवारी के लिए यही परिवर्त्तन दुखद बोध हुआ। उन्होंने नाना प्रकार से सरला का मनोरञ्जन करना चाहा, लेकिन उसके स्वभाव में परिवर्त्तन न हुआ

यदि सरला किसी प्रकार उनका अपमान करती, तथा क्रोध

करती, मान करती, मिलने-जुलने या बोलने से इन्कार करती, तो भी तिवारी जी को बक-झक करने का, सङ्घर्ष का मौक़ा मिलता। यदि सरला उनको अपना शरीर छूने न देती तो वह ज़ोर-ज़ुल्म से काम लेते। ऐसा तो वह कई बार कर चुके थे। इस प्रकार के अत्याचार में भी उन्हें स्फूर्ति मालूम होती थी। एक प्रकार का पाशविक आनन्द आता था।

किन्तु सरला न तो तिवारी जी के किसी काम का विरोध ही करती और न उसमें उत्साह से भाग ही लेती। विनती करने तथा पैर पड़ने पर भी उसके मुख पर हँसी की एक क्षीण रेखा तक दिखाई न देती। वह हँसती भी तो निर्जीव भाव-शून्य हँसी! सरला के मुख पर, उसकी आँखों में, उसके व्यवहार में जो भाव-शून्यता थी, वही तिवारी जी के लिए असहनीय थी। उसे लक्ष्य कर उनका सारा उत्साह, सारा जोश ठण्ढा पड़ जाता। उन्हें बोध होता—वे एक सजीव रमणी नहीं, एक पुतली के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं; जो बोलती नहीं, हँसती नहीं, जिसमें किसी प्रकार की गति नहीं है और न अवरोध करने की शक्ति ही है। उसके साथ जिस प्रकार जी चाहे, खेलो।

प्रेम-राज्य के लिए ऐसी अवस्था अत्यन्त दुखदाई होती है!
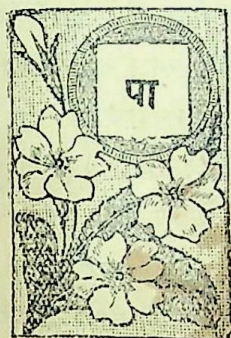
प का पथ बड़ा ढालू होता है। एक बार पैर फिसला कि फिर किसी प्रकार के प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती—आपसे आप मनुष्य नीचे फिसलता चला जाता है। ऊपर उठने के समय अपने बोझ को ठेलने के लिए ताक़त लगानी पड़ती है, किन्तु नीचे गिरते समय हमारा यही बोझ हमें नीचे की ओर धक्का देकर हमारा सहायक बन जाता है।

सरला किसी काम में ऐतराज़ तो करती न थी, तिवारी जी जब अनुरोध करते, वह चुपचाप शराब का प्याला उठा-कर चढ़ा जाती। उन्होंने रोज़ उसे शराब पिलाना प्रारम्भ कर दिया था। शराब पी लेने पर उसकी उदासीनता एवं शिथिलता किञ्चित कम हो जाती थी, और तिवारी जी से वह कुछ अधिक दिलचस्पी से बात करने लगती थी।

सरला को भी इस तरल पदार्थ के सेवन से लाभ ही

दिखाई दिया। रात-दिन की हृदय-दाहक चिन्ता से उसके प्राण आकुल हो उठे थे। शराब पी लेने पर उसका मस्तिष्क हलका हो जाता, चिन्ता दूर भाग जाती और कुछ देर के लिए उसे शान्ति मिलती। काम में मन लगता, कुछ उत्साह, स्फूर्ति एवं आनन्द का भी अनुभव होता; किन्तु नशा उतरते ही फिर वही दावानल प्रज्वलित होकर उसके हृदय को विदग्ध करने लगती—उसकी चिन्ता फिर लौट आती। इसलिए सरला शराब की मात्रा बढ़ाने लगी। पहले वह तिवारी जी के अनुरोध से प्याले को मुँह से लगाती थी, किन्तु अब उसने स्वयं इसका उपयोग शुरू कर दिया। चिन्ता से दूर रहने के लिए दिन-रात वह नशे में चूर रहने लगी।

इस अमोघ औषधि के लगातार उपयोग से सरला में जीवन के लक्षण फिर दिखाई देने लगे। उसकी वह भाव-शून्यता धीरे-धीरे उसके मुख पर से हटने लगी। उसके स्वभाव में, बोल-चाल में, रहन-सहन में परिवर्त्तन होने लगा। उसकी चारों ओर की सामग्री उसके इस परिवर्त्तन में प्रबल वेग से सहायता पहुँचाने लगी।

सबसे पहले उसका ध्यान अपने कपड़े-लत्ते, बनाव-सिंगार की ओर झुका। केवल सफ़ाई ही पर उसका ध्यान गया हो, सो बात नहीं है। उसके कपड़े-लत्ते भड़कीले तथा शृङ्गार उत्तेजक होने लगे। पहनने का ढङ्ग और कपड़ों का चुनाव आदि सभी दूसरी तरह के होने लगे। इसमें किसकी

पसन्दगी का अधिक हिस्सा था, यह बताना कठिन है। सम्भवतः उसका और तिवारी जी का—दोनों का बराबर हिस्सा रहता था।

अब वह सदैव हँसमुख रहती है। चाल में भी अन्तर आ गया है, और पहले जिस शराब की गन्ध से उसका मन मिचलने लगता था, तथा बाद में जिसे चिन्ता से मुक्ति पाने के लिए उसने ग्रहण किया था, उसी शराब को अब वह बड़े शौक़ से पीती है। केवल यही नहीं, अब वह शराब के बिना रह नहीं सकती, उसके न मिलने पर उसे बेचैनी मालूम होने लगती है।

यहाँ आने पर तिवारी जी के मित्रों की संख्या काफ़ी हो गई थी। रामगढ़ के उनके कई मित्र भी अक्सर आया-जाया करते थे। केवल रामलाल का आगमन कभी न हुआ था। तिवारी जी परदा-प्रथा के कट्टर विरोधी थे, इस-लिए उनके मित्रों को घर के भीतर आने-जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। ये सभी मित्र सरला को बिना अपवाद के भाभी कहा करते थे।

हमारे देश में भाभी से मज़ाक करने की प्रथा बहुत प्राचीन-काल से चली आई है। अब तो यह प्रथा शास्त्र-सम्मत तथा वेदानुकूल मानी जाने लगी है। इस प्रथा से कभी-कभी लोगों की बहुत-सी दिक़्क़तें हल हो जाती हैं,

और जहाँ पर किसी स्त्री से कोई स्पष्ट रिश्ता न हो, वहाँ

यह भाभी शब्द बड़ा ही सुविधाजनक होता है। अस्तु, तिवारी जी के मित्रों को भी यह 'भाभी' शब्द अत्यन्त सुविधाजनक बोध हुआ। कभी-कभी हँसी-मज़ाक़ भी होने लगा।

पहले जिस सरला को पुरुषों के सामने आने-जाने में सङ्कोच एवं लज्जा का अनुभव होता था, वह अब दिल खोलकर चुहल करने लगी। वह अब हँसी-मज़ाक़ में भाग लेती है, ताश खेलती है, अठिलाती है, हाव-भाव करती है और नशे में ग़ाफ़िल हो जाने पर बेशर्मी की हद तक पहुँच जाती है। ये ही बातें तिवारी जी चाहते भी थे, इन्हीं बातों की कमी के कारण उन्हें सरला की सुहबत में तृप्ति न मिलती थी।

इस प्रकार की नई परिस्थिति एवं नवीन जलवायु में सरला का जीवन सुख से बीतने लगा। उसे अब इस जीवन में कोई अस्वाभाविकता या अश्लीलता न मालूम होती। अपने जीवन तथा स्वभाव को उसने मोड़-मरोड़कर नवीन परिस्थिति के अनुकूल बना लिया था। निरानन्द विधवा-जीवन को अब वह भूल-सी गई थी।

वासना की नदी में पहली बाढ़ आई थी। मादकता लबालब भरी थी। किनारे तोड़ने की कोशिश हो रही थी। सामने का मार्ग दिखाई न देता था। ऐसी परिस्थिति में पहुँचकर आदमी आँख बन्द कर लेता है। आँख खोलकर मधुर स्वप्न भङ्ग करना उसे पसन्द नहीं होता।

चौदहवाँ परिच्छेद

प के रङ्ग-मञ्च पर ; काम के क्रीड़ा-स्थल पर; वासना की वेदी पर; यौवन की नाट्यशाला में आते तो स्त्री और पुरुष दोनों हैं; दोनों खेलते हैं ; दोनों अपना-अपना पार्ट अदा करते हैं ; दोनों का हिस्सा बराबर-बराबर रहता है ; परन्तु अच्छी तरह विचार करने पर पुरुषों का हिस्सा स्त्रियों की अपेक्षा बहुधा अधिक ही दिखाई पड़ता है ; क्योंकि इस रङ्ग-मञ्च पर आकर पुरुष ही स्त्री को आह्वान करता है। केवल बुलाता ही नहीं, नाना प्रकार के जाल बिछाकर, प्रलोभन दिखाकर कौशल से पुरुष स्त्री को घसीट लाता है। वह भी धोखे में आकर फँस जाती है। खेल प्रारम्भ होने पर स्त्री का मन जब खेल में रम जाता है, तब वह पुरुष की जी क बाज़ी को भूल-सी जाती है और क्रीड़ा में मस्त हो इसलि है। दोनों तल्लीन होकर अभिनय करने लगते हैं !

कुछ देर यह क्रम जारी रहता है, लेकिन खेल के अन्त में पुरुष साफ़ बच जाता है—एकदम बेदाग़ निकल जाता है। कोई भी चिह्न ऐसा नहीं रह जाता, जिसके सहारे उसकी चोरी पकड़ी जाय। ज़ञ्जीर स्त्री के पैरों में पड़ती है, पाप उसी का फूटता है, परदा-फ़ाश उसी का होता है, यवनिका उसी के सामने से उठती है और संसार के सामने वही अपराधी के रूप में पकड़ी जाती है।

उसे इस पाप में लिप्त करने वाला उसका साथी पुरुष उस समय किनारे से खिसककर, दर्शकों में मिलकर मस्तक ऊँचा किए खड़ा रहता है। कोई नहीं कह सकता कि यह भी इस लीला में शरीक़ था। वह इस समय विचारक बनकर बैठता है, और वही उस स्त्री को अपराधिनी ठहराता है।

प्रकृति का यह विधान है, मनुष्य के हाथ की यह बात ही नहीं है। अबला के साथ प्रकृति भी अन्याय करती है। प्रकृति विजातीय पुरुष को तो यों साफ़ छोड़ देती है, और अपनी सजातीय स्त्री को फँसा देती है। सजातीय के दोष से ही स्त्री-समाज को इस प्रकार लाञ्छन सहना पड़ता है। आपस की फूट का सदैव यही परिणाम होता है।

सरला के साथ भी प्रकृति का यही अव्यर्थ अस्त्र चला। उसकी भी चोरी पकड़ी गई—सरला गर्भवती होगई। पहले दो-एक मास तक तो उसने इस बात को गुप्त र

की कोशिश की, किन्तु यह बात कब तक छिपती। ए

पहल यह समाचार दाई को विदित हुआ। यह एक नई दाई थी, जो 'नानी' के चले जाने पर घर के काम-काज के लिए रख ली गई थी। सरला के ठीक रास्ते पर आ जाने के बाद 'नानी' को यहाँ रखने की कोई आवश्यकता न थी। वह रोज़गारी औरत थी, अधिक फ़ीस लेती थी और यहाँ रहने से उसके रोज़गार में नुक़सान होता था।

दाई ने यह .खुशख़बरी मालिक को जाकर दी। उसे इनाम मिलने की आशा थी, लेकिन मालिक को इस समाचार से रञ्ज ही हुआ। यह विघ्न उनके लिए स्वागत की वस्तु न थी। कई दिन तक वे इस समस्या पर विचार करते रहे। एक दिन उन्होंने सरला से इस विषय को छेड़कर कहा—सरला, तुमने यह क्या किया? सरला का मुँह लज्जा से लाल हो उठा। क्या इसमें उसी का दोष था? उत्तेजना के मारे वह बोल न सकी, चुप रही। तिवारी जी ने अपनी बदनामी, उसकी बदनामी आदि संसार की बातें समझाते हुए गर्भ नष्ट करने की सलाह दी।

सरला को विधवा-विवाह की आशा अब न रह गई थी। 'नानी' तथा तिवारी जी के चक्र को वह बख़ूबी समझ गई। आगे चलकर उसकी क्या दशा होगी, इसकी भी उसे आशङ्का होने लगी थी। 'नानी' के वात्सल्यभाव तथा तिवारी जी की भलमनसाहत का अर्थ अब उसे मालूम हो चुका था, इसलिए उसने तिवारी जी के प्रस्ताव का दृढ़ता से विरोध

किया। अब वह तिवारी जी के कृपा-भार से इतनी न दबी हुई थी कि उनकी उचित-अनुचित—सभी बातों को मान लेती। अब तो उसकी दशा उस भलेमानुस की सी थी, जो एक बार चोर साबित हो जाने पर खुल्लमखुल्ला चोरी करने लग जाता है। अब उसकी आँखों का पानी गिर चुका था।

जब सरला किसी प्रकार सहमत न हुई, तब पराग-लोलुप तिवारी जी गन्धहीन पुष्प की तरह सरला को छोड़कर एक दिन चुपके से खिसक गए। सरला को जब यह विदित हुआ, तब अपनी असहायावस्था की बात सोचकर वह काँप उठी। वह अपने भविष्य की चिन्ता छोड़ चुकी थी, आज वह चिन्ता उसके सामने एकाएक आ खड़ी हुई। सरला का सूर्यकान्त तिवारी पर कभी भी प्रेम नहीं रहा, किन्तु आज वह उन्हीं के लिए रोने लगी। उसे आज ज्ञात हुआ कि किसी वस्तु के अभाव में ही उसका मूल्य हमारी समझ में आता है।

क्ष्य-विहीन मनुष्य का जीवन भार हो उठता है। उसके जीने का तात्पर्य ही क्या ? वह किसलिए जीवन के भार को वहन करे ? ऐसी दशा में भी जब उसके ऊपर चारों ओर से अत्याचार होने लगे, तब उसके सामने आत्म-हत्या के सिवाय सुख तथा शन्तिलाभ का कोई उपाय नहीं रह जाता।

स्मृतिकारों ने आत्म-हत्या को पाप बताया है। सरकारी क़ानून के अनुसार भी यह एक भारी अपराध है। इन स्मृति-कारों तथा व्यवस्थापकों को यदि सरला की सी मानसिक स्थिति से गुज़रना पड़ता, तो शायद आत्मघाती के लिए नरक और कारावास के स्थान में स्वर्ग और पुरस्कार की व्यवस्था की गई होती।

सरला के सामने इस समय अन्धकार था। वह सर्वथा निराधार थी। पास में पैसा नहीं, कोई सहायक नहीं। तिवारी जी उसके लिए जो कुछ भी छोड़ गए थे, वह उसके लिए दो-एक मास से अधिक काल तक न चलता। उसे पता न चलता था कि वह क्या करे ? कहाँ आश्रय ले? किस प्रकार अपने भरण-पोषण का प्रबन्ध करे ?

इस परितृप्त संसार से मुक्ति पाने का एक ही सुलभ मार्ग था—मृत्यु ! किन्तु इस शब्द का उच्चारण जितना सरल है, मरना उतना सरल नहीं है। सरला जभी मृत्यु का विचार करती, गर्भस्थित बालक की सलोनी मूर्ति उसके सामने आ जाती और आत्म-हत्या से उसे रोकती। इसीलिए वह आत्मघात न कर सकी—जीती रही।

पर कुछ भी हो, संसार में रहकर इस हाड़-मांस के शरीर को पेट की चिन्ता करनी ही पड़ती है। समय पर भूख और प्यास सताती ही है। उस समय मनुष्य को थोड़ी देर के लिए अपने दुख को अलग कर, क्षुधा-निवारण का प्रबन्ध करना ही पड़ता है।

सरला को भी पेट की चिन्ता ने व्याकुल किया। भीख माँगकर भी उसका गुज़ारा न हो सकता था। भीख देने के लिए तो उसे बहुत लोग तैयार हो जाते थे, लेकिन सहज भाव से नहीं। अपना रूप बेचने पर उसके पेट की चिन्ता दूर हो सकती थी, पर अभी वह इस प्रकार ऐरे-ग़ैरे—सभी

के हाथों क्रय-विक्रय करने के लिए तैयार न थी, इसलिए भूख, प्यास, थकावट आदि को सहकर भी उसने नौकरी की तलाश शुरू की।

किन्तु एक अज्ञात युवती को कोई धर्मप्राण हिन्दू-गृहस्थ अपने घर में कैसे स्थान देता? नङ्गे-लुच्चे, छड़ीदे लोग शीघ्र ही उसे नौकरी पर रखने के लिए तैयार हो जाते, पर किसी ऐसे भले आदमी के यहाँ, जहाँ उसकी रक्षा हो सके, उसे स्थान न मिलता था।

बहुत खोज-ढूँढ़ के बाद उसे एक आदमी के यहाँ की नौकरी पसन्द आई। मालिक थे तो अकेले ही, लेकिन उनकी अवस्था लगभग ५० वर्ष की थी, इसीलिए सरला को उन पर विश्वास हो गया, किन्तु उमर इतनी ढल जाने पर भी मालिक की तबीयत से जवानी की उमङ्ग न गई थी। वह सरला को छेड़ने लगे और दो-चार दिनों के बाद ही एक दिन उसने सरला को पकड़ लिया। सरला का क्रोध भड़क उठा। वह उसे धक्का देकर वहाँ से चल दी।

लेकिन वह करती क्या? जीवन-निर्वाह के लिए उसे फिर काम तलाश करना पड़ा। बहुत परिश्रम के बाद नहर-विभाग के एक कर्मचारी के यहाँ उसे जगह मिल गई। यह कर्मचारी था तो विवाहित, किन्तु जिस प्रकार भौंरा एक फूल के रस से सन्तुष्ट नहीं रहता, उसी तरह यह भी तबीयतदार आदमी था। उसने भी सरला से अपना प्यार

जताना शुरू किया। सरला उससे घृणा करती और जहाँ तक सम्भव होता, बचकर रहती; किन्तु मालिक बड़ा धूर्त्त था। आज तक न जाने कितनी भोली-भाली युवतियों को उसने अपने जाल में फँसाया था। उसके हाथ से उबरना सरला के लिए कठिन था।

मालकिन के घर में रहने से ही सरला अब तक बच रही थी, किन्तु वह कब तक बच सकती थी? वह थी दासी, मालिक की आज्ञा मानना उसका फ़र्ज़ था। ऐसा न करने से वह किसी भी समय काम से अलग कर दी जाती। एक दिन उसने सरला को अपने एक मित्र के पास ख़त लेकर भेजा।

ख़त पढ़कर मित्र ने सरला को एक कमरे में बन्द कर दिया और बाहर से सिकड़ी लगा दी। इस समय सन्ध्या हो चली थी। लगभग आठ बजे रात तक सरला उसी कमरे में बन्द रही। इसी समय दरवाज़ा खोलकर दोनों मित्रों ने कमरे में प्रवेश किया। सरला ने भागने की कोशिश की, किन्तु वह पकड़ ली गई। उसने शोर-गुल भी करना चाहा, लेकिन जब उसे यह धमकी दी गई कि उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया जायगा, तब उसने शोर मचाना बन्द कर दिया। उसके साथ ऐसी कार्रवाई हो चुकी थी और वह जानती थी कि वैसा प्रयत्न व्यर्थ होगा। सरला ने बहुत

चिरौरी की, लेकिन सब व्यर्थ! मित्रों ने उसे न छोड़ा।

उस दिन एक बजे रात तक उसे उनकी सेवा में उपस्थित रहना पड़ा।

सरला का मनोबल अब कम हो चला था। उसके सामने केवल दो बातें थीं—मालिक की इच्छा पूरी करना या नौकरी से अलग होना। किन्तु फिर भी तो उसे नौकरी करनी ही पड़ेगी। आज तक तो उसे ऐसे ही नर-पिशाचों से काम पड़ा है, तब किस आधार पर वह यह विश्वास करे कि इस बार उसका मालिक कोई भलामानस मिलेगा। जब सभी जगह उसे इसी प्रकार छेड़खानी सहनी है, तब लगी नौकरी छोड़कर वह व्यर्थ क्यों कष्ट सहे ?

मालिक के साथ वह अब बिना किसी सङ्कोच के मिलने लगी। कई बार उसे रात को जाकर उसी मित्र के यहाँ रहना पड़ा, लेकिन बाद में मालिक घर में ही मौक़ा देखकर उससे मिलने लगा। एक दिन मालकिन ने उन दोनों को एक कमरे में बन्द देख लिया। मालकिन ने उसे ख़ूब ही पीटा। सरला दोषी थी, उसे चुपचाप सहन करना पड़ा। दूसरे दिन बिना वेतन चुकता किए ही वह बरख़ास्त कर दी गई।

सरला ने बहुत प्रयत्न किया, लेकिन उसे काम न मिला। लोग उसके रूप के भूखे थे, लेकिन अब उसके गर्भ का पाँचवाँ मास था, इसलिए उसे कोई काम पर रखने के लिए राज़ी न हुआ। सरला पहले से ही सुकुमार थी। उसे इस प्रकार के परिश्रम के काम करने की ज़रा भी आदत न थी।

अब तक वह किसी प्रकार रो-धोकर काम करती थी, लेकिन अब उससे काम न हो सकता था।

विधवा-जीवन में जिस क़द्र भूख-प्यास सहने की उसकी आदत थी, वह अब न रह गई। इधर उसे शराब, कबाब, सिगरेट और पान की भी आदत पड़ गई थी, जो अब तक किसी क़द्र पूरी होती जा रही थी; लेकिन अब वह सब तो बन्द हो ही गया, उसे भरपेट भोजन मिलना तक कठिन हो गया। परिश्रम, चिन्ता और उपवास आदि के कारण वह अन्त में खाट पर पड़ गई और उसे ज्वर भी आने लगा!

लोग कहा करते हैं, जब भगवान् ने शरीर दिया है, तब वह चारा भी अवश्य देंगे। सरला के पड़ोस में एक अनाथ बुढ़िया का मकान था। सरला की दशा पर उसे दया आगई। उसने सरला को अपने घर ले जाकर रक्खा और उसके पथ्य-पानी का समुचित प्रबन्ध कर दिया।

किसी को इस वृद्धा का नाम नहीं मालूम। लोग उसे बुधिया की माँ कहकर पुकारा करते थे। लोगों का कहना है कि बहुत दिन पहले बुढ़िया की दशा अच्छी थी। उसके पति तीन-चार गाँव के मालिक थे। घर में यथेष्ट जन-धन, गाय-गोरू, घी-दूध—सभी था; किन्तु विधाता की मर्ज़ी, आज उनमें से एक भी बुढ़िया के पास नहीं है। अब गाँव वालों की कृपा पर निर्भर रहकर उसका ख़र्च चलता है। फिर

भी बुढ़िया को किसी कमी का अनुभव नहीं करना पड़ा। गाँवों के हाथ से निकल जाने पर भी वह इस गाँव की मालकिन बनी हुई है। इस गाँव में उसका रोब किसी ज़मींदार से कम नहीं है। किसी की मजाल नहीं, जो उसका कहना टाल सके।

धनिकों का आदर धन से, धूर्तों का आदर धूर्त्तता से, और विद्वानों का आदर विद्या से होता है; किन्तु इन सभी का आधार भय या स्वार्थ है। यह आदर सच्चा नहीं, बनावटी होता है। किन्तु यदि किसी असमर्थ दीन व्यक्ति का आदर होता दीखे, तो उसे ही सच्चा आदर समझना चाहिए। उसके उपकार से दबकर, अपने भार को हलका करने के लिए, लोग जबरन् ऐसे व्यक्ति का आदर करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। बुधिया की माँ का आदर इसी अन्तिम श्रेणी का था।

बुढ़िया को ऊँच-नीच, धनी-ग़रीब—किसी का ख़्याल न था। जिस प्रकार सदावर्त बाँटने वाले अन्न देने में भेद-भाव छोड़ देते हैं, उसी प्रकार बुढ़िया लोगों को मदद पहुँचाने में एवं लोगों की सेवा करने में किसी प्रकार का भेद-भाव न रखती थी। उसकी सेवा सीमा-बन्धन को स्वीकार न करती—वह प्रकृति-देवी की विभूतियों की तरह प्रत्येक के लिए सुलभ थी।

गाँव के बीमार आदमियों की सेवा करना; गाँव के

बच्चों के लिए घूँटी, अञ्जन आदि तैयार करना; बालकों को अपने पास बैठाकर कहानी सुनाना, मीठा खिलाना, उनके फटे कपड़े सीकर ठीक कर देना; मैले कपड़े साफ़ कर देना—यही सब बुढ़िया के दैनिक काम थे। एक काम वह और करती थी, पति-पत्नी के झगड़े वह सदैव बड़ी सरलता से सुलझा दिया करती थी। इन्हीं सब कार्यों में वह इतनी लीन रहती कि उसे अपना दुख भूल-सा गया था। वह सदैव हँसमुख बनी रहती। प्राचीन वैभव की याद में रोते उसे किसी ने न देखा था।

गाँव के प्रत्येक व्यक्ति की ख़बर उसे रहती थी। गाँव में ही नहीं, आसपास के अन्य गाँवों की भी प्रायः सभी आवश्यक तथा महत्वपूर्ण घटनाओं का समाचार उसे सबसे पहले मिल जाता। अस्तु, सरला की भी सभी बातों का उसे पता था। जब सरला थककर खाट पर पड़ गई, तब बुढिया ने उसकी सहायता करने का निश्चय किया। जिसको समाज ने, भद्र पुरुषों ने, युवकों ने—सभी ने त्याग दिया था, उसे इस दीन, निरक्षर, ग्रामीण बुढ़िया ने आश्रय दिया।

यहाँ आकर सरला को एक नवीन अनुभव हुआ। बाल्यावस्था में ही माता-पिता की मृत्यु हो जाने से सरला मातृ-स्नेह किसे कहते हैं, यह न जान सकी थी। चाचा के यहाँ भी एकान्त ही उसका सहचर था। वहाँ से निकलने के बाद

आज तक उसे लम्पटों का ही सहवास करना पड़ा। जीवन में प्रथम बार उसे माता के स्नेह का स्वाद मिला।

बाल-बच्चों की मृत्यु हो जाने के बाद बुढ़िया का मातृभाव सङ्कुचित सीमा के परे होकर समस्त ग्राम को आवेष्टित करने लगा था। इसी व्यापक मातृत्व की सुखद छाया से सरला पनपने लगी !!
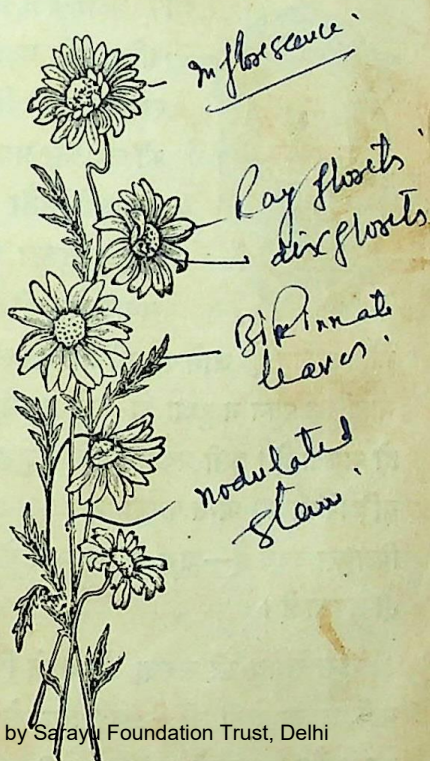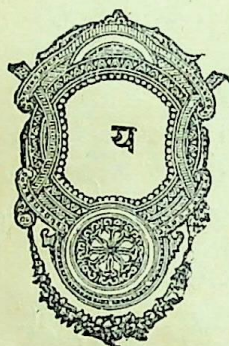
द्यपि घटना-क्रम में पड़कर सरला को पतित होना पड़ा था, किन्तु उसका स्वभाव अभी विगड़ा नहीं था। अब भी वह उस प्रकार के कार्यों को बुरा समझती और उनसे घृणा करती थी। अनुकूल स्थिति पाकर उसमें सुधार होने की बहुत सम्भावना थी। भौतिक पतन हो जाने पर भी यदि किसी का मन शुद्ध हो—मानसिक पतन न हुआ हो—तो उसमें बहुत शीघ्र परिवर्त्तन हो सकता है। इसी प्रकार भौतिक शुद्धता के होते हुए भी यदि किसी का अन्तःकरण ठीक न हो तो उसकी शुद्धता विलकुल व्यर्थ है—ज़रा से प्रलोभन के द्वारा ही उसका पतन हो सकता है।

इस समय भी सरला को अपने पिछले जीवन पर गर्व नहीं, लज्जा होती थी। उस जीवन से पिण्ड छुड़ाने के लिए

वह सदैव प्रयत्नशील रहा करती थी। बुढ़िया के यहाँ

आकर उसने यही निश्चय किया कि अब वह सदैव उसी की सेवा एवं संरक्षता में रहकर दिन काटेगी।

बुढ़िया को भी सरला को अपने पास रख लेने में कोई आपत्ति न थी। यदि सरला वहाँ न भी रहना चाहे तो प्रसव-काल तक तो बुढ़िया कभी भी उसे अपने यहाँ से जाने न देती। वह इस बात को अच्छी तरह जानती थी कि सरला-सरीखी कोमलाङ्गी ऐसी अवस्था में काम नहीं कर सकती। काम करने से उसे बहुत हानि होगी।

अपने यहाँ वह सरला को बड़े प्रयत्न से रखती थी। सरला से वह कभी कोई काम न लेती थी। सरला के ज़िद करने पर वह उसे दो-चार हलके काम दे देती थी, लेकिन अधिक परिश्रम के काम करने से वह सदैव उसे रोका करती थी। यहाँ रहकर सरला को कभी यह अनुभव न हुआ कि यह एक पराया घर है, अपना नहीं।

सरला किसी के ऊपर भार बनकर रहना न चाहती थी, इसके अलावा उससे यह भी छिपा न था कि बुढ़िया घर की कोई धनी औरत नहीं है, लोगों की दया पर ही उसका ख़र्च-बर्च चलता है। इसीलिए वह सदैव उसके काम में मदद देने का प्रयत्न किया करती थी, पर बुढ़िया के स्नेह-पूरित अनुरोध के सामने उसे सिर झुकाना ही पड़ा।

यहाँ आकर सरला अपने पिछले इतिहास को भूल जाना चाहती थी। संसार का उसे जो कड़ुवा अनुभव हुआ

था, उसे विस्मरण कर वह अब जीवन में कुछ मिठास का स्वाद लेना चाहती थी; किन्तु विधाता की क्या इच्छा थी, इसे कौन जाने ?

यथासमय सरला ने कन्या प्रसव किया। इस अवसर पर भी बुढ़िया ने उसकी ख़ूब मन लगाकर सेवा की। यथाशक्ति पथ्य-पानी का भी प्रबन्ध करने में उसने कमी न की। इस अज्ञात वंशज बालिका को गोद में लेने से उसने इन्कार न किया और न इसमें उसे कुछ लज्जा या सङ्कोच ही मालूम हुआ। नवजात शिशु सरला के पाप का स्मारक था और रह-रहकर वह सरला को उसके गत जीवन की पतितावस्था की याद दिलाता था।

सन्तान के प्रति स्नेह होना अत्यन्त स्वाभाविक बात है। किन्तु सन्तान के जन्म-रोगी होने, असमर्थ होने या लाञ्छित होने पर जब उसके प्रति दया का भाव भी उमड़ पड़ता है, तब हमारा यह स्नेह और भी बढ़ जाता है। सरला के साथ भी यही बात हुई। यह पाप की सन्तान है, यह सोचकर सरला का जी उमड़ आता था और वह बालिका को छाती से चिपटा लेती थी। वह निर्बोध शिशु के निष्कलङ्क मुख की ओर देखकर सोचती—"इसमें पाप के कोई लक्षण नहीं हैं, तब इसे संसार क्यों कलङ्कित समझता है ? माना कि यह कलङ्कित है, किन्तु इसमें इसका क्या दोष ?

दोष यदि किसी का है, तो वह मेरा ; किन्तु मेरा ही इसमें

क्या दोष ? मैंने ही कौन-सा अपराध किया है ? उन लोगों ने ही तो जाल बिछाकर मुझे इस तरह लाचार किया कि मैं किसी भी प्रकार उससे न निकल सकी। क्या कभी मैंने अपनी इच्छा से भी वैसा कार्य किया है ?

"किन्तु आश्चर्य तो इसी बात का है कि उन लोगों को, मुझे पतित करने वालों को, संसार कलङ्की नहीं समझता। वे अभी भी समाज में प्रतिष्ठित व्यक्ति समझे जाते हैं। बड़े-बड़े लोग आज भी उन्हें झुककर प्रणाम करते हैं।

"तब क्या इस संसार से न्याय एकदम उठ गया ? सब जगह अन्याय एवं अविचार का ही साम्राज्य है ? क्या परमात्मा के स्थान पर विश्व-सञ्चालन का कार्य अब किसी शैतान के हाथ में आ गया है ?

"यदि नहीं, तो क्या कारण है कि असल अपराधी को कोई दण्ड नहीं मिलता; दण्डित एवं लाञ्छित होता है यह निर्दोष शिशु, जो अभी यह भी नहीं जानता कि पाप और पुण्य क्या है।

"इसका कोई दोष नहीं, लेकिन समाज इसे लाञ्छित करेगा—अपने से अलग रक्खेगा। परिणाम क्या होगा ? सीधा मार्ग न मिलने के कारण यह कुपथ में पैर देगा। लेकिन इस प्रकार कुपथ में चलने के लिए इसे कौन मजबूर कर रहा है ?

"अभी तक मैं कई लोगों के साथ रही, सभी ने मेरे

साथ—असहाय अनाश्रित के साथ घोर अनुचित व्यवहार किया, लेकिन उनकी ओर किसी भलेमानस ने उँगली भी न उठाई, किसी ने उनकी बदनामी तक न की।

"यह वृद्धा मुझपर कृपा करके मेरे साथ माता का सा सच्चा व्यवहार करती है, और मुझे अपने आश्रय में रक्खे हुए है। इस पुण्यशीला वृद्धा को लोग मेरे कारण व्यर्थ ही बदनाम कर रहे हैं, लोग मेरे ही कारण उसे कुटनी तक कहने लग गए हैं।

"इन सबका क्या अर्थ? यही न कि समाज हमें सीधी राह चलने नहीं देना चाहता। समाज में अधिकांश संख्या भी लम्पट और दाम्भिकों की है। ये लोग सीधी राह पर चलने वालों को बदनाम कर, उन्हें तङ्ग कर कुमार्ग पर लाना चाहते हैं।

"पद-पद पर अपमान असह्य हो रहा है। मैं पाप से बचकर शान्ति से रहना चाहती हूँ, लेकिन समाज मुझे त्यागकर भी शान्ति से अलग रहने देना नहीं चाहता। जो आश्रय लूँगी, वही छीनकर मुझे कुपथ पर चलने के लिए मजबूर करेगा।

"समाज को मालूम है कि आश्रय छिन जाने से मुझ पर अत्याचार होगा, लोगों को मुझ पर आक्रमण करने का मौक़ा मिलेगा, जिससे पाप बढ़ेगा; फिर भी वह आश्रयहीन कर मुझे छोड़ देता है। तब इसका तात्पर्य तो यही हुआ

न ! कि वही मुझे पाप के पथ पर ले जा रहा है। इसी अविचार के कारण आजकल देश में इतना कष्ट, प्लेग, हैज़ा और दुष्काल फैला हुआ है।"
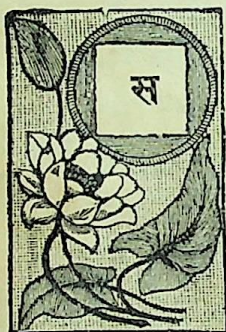
रला की बालिका आज कई दिनों से बीमार है। वृद्धा किसी दूसरे गाँव गई हुई है, इसलिए सरला और भी घबड़ा रही है। उसे मरीज़ों की, विशेषकर बालकों की सेवा-सुश्रूषा का ज्ञान बहुत कम था। रात के आठ बजते-बजते बालिका को ख़ूब ज़ोर का ज्वर हो आया। देह पर हाथ नहीं रक्खा जाता, रह-रहकर बालिका कहर उठती है। ऐसा बोध होता, मानो उसके कहीं दर्द है और इसी के कारण वह बेचैन हो रही है। बीमारी की पहचान न कर सकने के कारण सरला को और भी घबड़ाहट मालूम होने लगी। बालिका ज्योंही कष्ट से कराहती है, उसके दिल पर एक चोट-सी लगती है। उसका कलेजा ऐंठ रहा है। वृद्धा यदि यहाँ

मौजूद रहती, तो सरला को कुछ ढाढ़स रहता। दूसरे दिन भी बालिका का ज्वर न उतरा। देह लहकती रही, कहरना जारी रहा और बेचैनी भी कम न हुई।

सरला ने अब डॉक्टर के यहाँ जाने का निश्चय किया। बालिका को अच्छी तरह कपड़े से ढँककर लेटा दिया और दरवाज़ा बन्द कर वह डॉक्टर के यहाँ जाने के लिए चली। घर से वह निकल पड़ी, लेकिन डाक्टर के यहाँ जाने में उसके पैर थरथराने लगे। डॉक्टर साहब बड़े रसिक व्यक्ति थे। उमर ढल जाने पर भी आपका दिल बहुत तरो-ताज़ा था। सरला के अनिन्द्य सौन्दर्य पर आपकी दृष्टि पड़ चुकी थी, और आप उसके पास अपनी उम्मीदवारी की दरख़्वास्त भी कई बार पेश कर चुके थे।

पर सन्तान-प्रेम में बावली सरला डरते-डरते डॉक्टर के यहाँ पहुँची। उस समय डॉक्टर साहब अपनी बाहरी बैठक के कमरे में एक आराम-कुर्सी पर पड़े हुए बड़े ध्यान से अख़बार में बलात्कार के एक मामले का वर्णन पढ़ रहे थे। उपन्यास का आनन्द आ रहा था, तबीयत भड़की हुई थी, इतने में ही सरला ने कमरे में प्रवेश किया। डॉक्टर साहब ने समझा, सरला अभिसार करने आई है, उनकी दरख़्वास्त मन्जूर हो गई। इस कल्पना से वे उछल पड़े। उन्होंने झपटकर सरला का हाथ पकड़ लिया।

सरला का ध्यान इस समय इन बातों के प्रतिकार की

ओर न जा सका। उसने डॉक्टर साहब से बिनती करते हुए दवा माँगी। डॉक्टर साहब भी मौक़ा ठीक न देखकर रोगी को देखने के लिए चल पड़े। वहाँ जाकर परीक्षा करने पर डॉक्टर को निमोनिया के लक्षण दिखाई पड़े। डॉक्टर साहब की गम्भीरता देखकर सरला सहम उठी। बीमार का हाल सुनने के लिए उसने दीन-भाव से उनकी ओर देखा।

डॉक्टर ने कहा—बीमारी कठिन है, लेकिन डरने की ऐसी कोई बात अभी नहीं है। ठीक दवा होने से आराम हो जायगा, लेकिन दवा में बहुत ख़र्च होगा।

सरला—कितना ख़र्च पड़ेगा ?

डॉक्टर—दवा में बीस रुपए के क़रीब ख़र्च होंगे। मेरी फ़ीस अलग देनी होगी। रोगी को रोज़ एक बार देखना होगा।

सरला हताश हो गई। इतना रुपया वह कहाँ से जुटाएगी, बुढ़िया थी नहीं। उसने डॉक्टर के पैर पकड़कर दीनता से कहा—इतने रुपए तो मैं जुटा नहीं सकती। लेकिन आप दवा दीजिए, मैं आपके यहाँ मज़दूरी कर, आपकी जूठन उठाकर यह क़र्ज़ अदा करूँगी। डॉक्टर साहब, मेरी बच्ची को बचा दीजिए, मैं जन्मभर आपकी ग़ुलामी करूँगी।

डॉक्टर—सो नहीं होगा, मैं ऐसा बेवक़ूफ़ नहीं हूँ। तुम मुझे चकमा दे रही हो। या तो नक़द रुपए दो या ××मेरी बात मञ्ज़ूर कर, मेरी ख़्वाहिश पूरी करो।

अभी तक सरला डॉक्टर के पैर पकड़े हुए थी, पर घृणा से वह पैर छोड़कर अलग खड़ी हो गई। कुछ देर चुप रहने के बाद उसने दृढ़ता से कहा—आप जाइए, मेरी बच्ची की दवा परमात्मा के हाथ में है। अगर उसकी ज़िन्दगी है, तो वह बिना दवा के अच्छी हो जायगी। मेरी लाज उसी दीनानाथ के हाथ में है; वह सुने तो ठीक है, नहीं तो मरने दीजिए। लेकिन आप-ऐसे दानवों के हाथ में अब अपने को नहीं सौंप सकती।

डॉक्टर—सोच लो, बिना दवा के रोग का हटना कठिन है। रोग मामूली नहीं है। पीछे पछताना पड़ेगा। परमात्मा केवल कल्पना की वस्तु है। वह किसी की दवा नहीं करता। कम से कम आज तक तो ऐसी बात नहीं सुनी गई। सोचकर मुझे ख़बर देना। इस समय मैं जाता हूँ। लेकिन अधिक देर करने से बीमारी बिगड़ जायगी।

इतना कहकर डॉक्टर साहब तो घर चले गए, इधर सरला अपने भाग्य पर रोती रही। रातभर नींद नहीं आई। सबेरे बच्चे का ज्वर कुछ कम हुआ, लेकिन उतरा नहीं। दोपहर से ज्वर फिर बढ़ने लगा। आज और दिनों की अपेक्षा ज्वर का रोष अधिक जान पड़ा और बेचैनी भी बढ़ती हुई मालूम पड़ी। सरला रातभर सोई नहीं। डॉक्टर की बातों पर ही विचार करती रही—रोग कठिन है, परमात्मा किसी की मदद नहीं करता। ये ही दो बातें उसके

मस्तिष्क को गरम करती रहीं। आज दिनभर भी वह बच्ची को गोद में लिए बैठी रही। न खाना खाया, न आराम किया।

रात हुई। भूख से सरला शिथिल हो रही थी, नींद से उसकी आँखें झप रही थीं, किन्तु उसे नींद न आती थी। बच्ची को लिटाकर वह खाट के किनारे दीवार से अड़कर बैठी रही। उसकी आँखें झपतीं, लेकिन बच्ची के कराहने की आवाज़ सुनकर वह चौंक पड़ती। उसे छूकर देखती, लेकिना क्या कष्ट है, यह न जान पड़ता।

सवेरा हुआ, लेकिन ज्वर का रोष आज कम न हुआ। बच्ची का कराहना, छटपटाना और भी बढ़ गया। सन्ध्या होते-होते उसके शरीर से ख़ूब पसीना आने लगा। शरीर गरम रहने पर भी हाथ-पैर ठण्ढे मालूम पड़ने लगे। आँखें भयानक दिखाई देने लगीं। वैद्य-विद्या से एकदम अपरिचित होने पर भी सरला समझ गई कि रोगी के लक्षण अच्छे नहीं हैं। उसे निश्चय हो गया कि उसकी बच्ची अब न बचेगी। अभी तक सरला अपनी बातों पर दृढ़ थी। वह परमात्मा का नाम स्मरण कर रही थी, लेकिन अब उसका धैर्य छूट गया। सन्तान को मृत्यु के मुख में देखकर माता के धैर्य का बाँध टूट गया। उसकी विचार-शक्ति जाती रही, दृष्टि चौंधिया गई। उसे केवल एक बात याद थी—उसकी बच्ची मर रही है!

वह फिर डॉक्टर के पास जाने के लिए तैयार हुई। रास्ते में वह सोचती जाती थी—शायद उस राक्षस को दया आ जाय। यहाँ कोई दूसरा डॉक्टर भी तो नहीं है। जिस समय सरला डॉक्टर के कमरे में पहुँची। वह आराम-कुर्सी पर पड़ा हुआ सिगरेट पी रहा था। आज उसने सरला का स्वागत नहीं किया।

सरला ने उसके पैर पकड़कर अधीर भाव से कहा—डॉक्टर साहब, मेरी बच्ची मर रही है, उसे बचाइए। ग़रीब दुखिया पर दया कीजिए। परमात्मा आपका भला करेगा। डॉक्टर बाबू आप भी बाल-बच्चे वाले हैं। इसके आगे वह कुछ न कह सकी, उसका गला भर आया।

डॉक्टर—दवा तो मैं दूँगा ही, उसके लिए मैंने नहीं कब किया। ग़रीब होने की जो बात तुम कह रही हो, सो मैं तुमसे धन तो माँगता नहीं हूँ। मैं जो चीज़ माँगता हूँ, उसके लिए तुम्हारा ग़रीबी का बहाना फ़ज़ूल है। उसमें तो तुम-सरीखी धनी मुझे पेण्डरा भर में कोई नहीं दीखती। तुम मुझसे तो काम लेना चाहती हो, पर उसके बदले में तुम्हारे पास जो चीज़ लबालब भरी पड़ी है, वह मुझे न देकर बहाने-बाज़ी करती हो। सोचो, मेरी इच्छा पूरी कर देने से तुम्हारी क्या हानि होगी ?

सरला चुप रही, उसका सिर बड़ी ज़ोर से घूम रहा था, उसके कानों में बच्ची के कराहने का शब्द सुनाई देता

था और आँखों के सामने मृत्यु-यन्त्रणा से सन्तापित उसका मुख था। डॉक्टर ने सोचा—यह राज़ी है। उससे अधिक सब्र न हो सका। उसने उसी समय अपनी इच्छा-पूर्ति की।

एक ओर माता की प्राण-प्रिय सन्तान मृत्यु-मुख में जा रही थी, दूसरी ओर हिन्दू-समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति उसकी विक्षिप्तावस्था में पड़ी हुई माता से अपनी पाशविक वासना की पूर्ति कर रहा था..............!

लगभग बीस मिनट के बाद डॉक्टर रोगी को देखने के लिए चला। लेकिन वहाँ पहुँचकर उसे रोगी नहीं, रोगी का शव मिला। उस समय उस शिशु के मुख पर रोग की पीड़ा न थी, बेचैनी न थी—थी निश्चल शान्ति !!

डॉक्टर के मुँह से भी आह निकल पड़ी। उसे ऐसी लज्जा बोध हुई कि वह वहाँ ठहर न सका। वह सरला को सान्त्वना देना चाहता था, किन्तु ऐसी लज्जा बोध हुई कि उसके मुँह से शब्द न निकले और वह भाग खड़ा हुआ।

सरला रोई नहीं, चिल्लाई नहीं, वह प्रस्तर-मूर्ति की तरह जहाँ की तहाँ खड़ी रही। कुछ देर के बाद उसने बच्ची को गोद में उठाकर उसका मुख चूमा। उसकी विचार-शक्ति एकदम जाती रही। जिस प्रकार वह प्रतिदिन उसको घुमा-कर और गाना गाकर सुलाया करती थी, उसी प्रकार आज भी घुमाने लगी। कभी गाती, कभी रोती, कभी हँसती।

अब वह बच्ची को गोद में लिए हुए घर से बाहर

निकली। एक रास्ते को पकड़कर वह चलने लगी। सामने उसे नदी मिली, लेकिन वह रुकी नहीं—बढ़ती ही गई। घुटने भर पानी, कमर तक पानी, गले तक पानी—उसका पैर ज़मीन छोड़कर ऊपर उठ गया, बच्ची उसकी गोद से अलग हो गई। वह चिल्ला उठी, लेकिन आवाज़ पानी में ही विलीन हो गई। बच्ची के लिए छटपटाई, लेकिन उसके हाथ-पैर ख़ुद बेकाम हो गए, जकड़ से गए !!

थोड़ी देर में सब शान्त हो गया। नदी का प्रवाह पूर्व-वत् कलकल करता हुआ आगे बढ़ रहा था, आकाश में ज्योत्स्ना हँस रही थी, ज़रा भी रुकावट नहीं; थोड़ा भी फीकापन नहीं; उसी भाव, उसी तन्मयता से प्रकृति का कार्य चल रहा था !!

अठारहवाँ परिच्छेद

रामगढ़ मध्यप्रान्त का राजनीतिक नगर कहा जाता है। इसका बहुत-कुछ श्रेय बाबू कुमुदबिहारी वर्मा को है। वर्मा साहब इस प्रान्त के प्रमुख नेता समझे जाते हैं, और बिलासपुर आपका निवास-स्थान है। इसीलिए इस नगर को यह गौरव और नाम प्राप्त हुआ है। सारे प्रान्त में आपके राजनीतिक कौशल और नेतृत्व की धाक बैठी हुई है और आप दरअसल राजनीतिक दाँव-पेंच की कला में बड़े निपुण हैं।

आप एक नामी वकील हैं, किन्तु आपको वकालत के लिए समय नहीं मिलता। आपका सारा समय सार्वजनिक कार्यों में ख़र्च होता है। आपको यथेष्ट पैत्रिक सम्पत्ति मिली है, उसी से आपका काम ख़ूब अच्छी तरह चल जाता है; पेट के लिए विशेष चिन्ता की आवश्यकता नहीं पड़ती।

यहाँ के दूसरे प्रसिद्ध नेता हैं पण्डित मनोहरलाल ज़मींदार। आप विदेश से ऊँची शिक्षा प्राप्त कर आए हैं,

लेकिन जिन विषयों में आप उपाधि लेकर आए हैं, उनके अलावा अन्य कई विषयों के आप ज्ञाता हैं। आप साहित्य, राजनीति, अर्थशास्त्र तथा इतिहास के पण्डित हैं।

आपको भी द्रव्योपार्जन की आवश्यकता नहीं रहती। ज़मींदारी से ही आपको यथेष्ट आय हो जाती है। आपका भी सारा समय सार्वजनिक कार्यों में ही व्यय होता है। आपको ललित कलाओं से भी प्रेम है, सङ्गीत पर तो आपका ख़ासा दख़ल है। इनके अलावा और कई नेता हैं, जिनमें यहाँ पर सिर्फ़ मुरलीधर का ज़िक्र ही आवश्यक है। अन्य लोगों का परिचय यथासमय मिल जायगा।

मुरलीधर ने अधिक शिक्षा प्राप्त न की थी। उनके पास किसी भी विश्वविद्यालय की उपाधि न थी, इसलिए वे किसी विषय के विद्वान् हो सकते हैं, इसे मानने के लिए हम तैयार नहीं हैं। किन्तु विद्वान् न होते हुए भी वे सदैव सार्व-जनिक कामों में अपना सिर घुसा देते थे, यही उनका भारी दोष था।

मुरलीधर बड़े चरित्रवान् व्यक्ति थे, लेकिन इससे क्या? नेता बनने के लिए तो आवश्यकता होती है बड़े दिमाग़ की! इसके अलावा वे उग्र विचार के थे। यह एक दूसरा भारी दोष था, जो उन्हें नेतृत्व के लिए अयोग्य ठहराता था। मुरलीधर उपर्युक्त दोनों महासम्मानित नेताओं के कट्टर विरोधी थे, किन्तु उनके सामने इन बेचारे की

कुछ न चलती थी। बार-बार धक्के खाकर वे हताश-से हो उठे थे और उनका उत्साह मन्द पड़ गया था, तथा उन्हें आज अर्थाभाव के कारण भारी कष्ट एवं चिन्ता का सामना करना पड़ रहा था।

अचानक रमानाथ के आ जाने से सार्वजनिक कार्य-कर्त्ताओं की संख्या में वृद्धि हो गई और मुरलीधर का दल फिर उत्साह से काम करने लगा। रमानाथ अमरकण्टक से ही एक पत्र निकालने का विचार करके चले थे। यहाँ आकर उन्होंने मुरलीधर से सलाह की और शीघ्र उसकी व्यवस्था में लग गए। रमानाथ के पास यद्यपि धन की कमी न थी, फिर भी वह इतना न था कि उससे एक हिन्दी-पत्र का सञ्चालन हो सके। इस आर्थिक कठिनाई को हल करने के लिए रमानाथ ने एक नई युक्ति निकाली।

उन्होंने अपने पत्र के कई साझीदार बनाए। उनमें तीन-चार लेखक, दो चित्रकार और एक समालोचक रक्खे गए। रमानाथ उस पत्र के सम्पादक नियुक्त हुए। तय यह हुआ कि हिस्सेदारों को किसी प्रकार का वेतन, भत्ता या पुरस्कार न दिया जायगा। ये लोग अपना-अपना नियत काम फ़ुरसत के समय किया करें। पत्र से साल के अन्त में जो लाभ हो, वह आपस में बराबर-बराबर बाँट लिया जाय। इसमें केवल रमानाथ को ही कुछ अधिक समय ख़र्च करना

पड़ता था।

इस प्रकार रमानाथ का 'समाज' पत्र बहुत थोड़े मूलधन से सहकारिता के सहारे निकलने लगा।

रमानाथ केवल सामाजिक क्षेत्र में काम करना चाहते थे। धार्मिक तथा राजनीतिक झगड़ों से उन्हें दूर ही रहना पसन्द था, लेकिन शीघ्र ही उन्हें मालूम हुआ कि उनका ऐसा निश्चय उनकी अनुभवहीनता का परिणाम था।

प्रत्येक सामाजिक प्रथा के कुछ दिन प्रचलित रहने पर लोग उसे धर्म के साथ जोड़ लेते हैं। उसके विरुद्ध आचरण करना अधर्म समझा जाता है। फलतः जब कोई भी समाज-सुधारक किसी सामाजिक प्रथा के विरुद्ध खड़ा होता है, तब उसे लोग प्रचलित धर्म का विरोधी समझ लेते हैं और उस सुधारक को धार्मिक वाद-विवाद में मजबूरन् खिंच जाना पड़ता है। इसी प्रकार राज्य का भी समाज से गहरा सम्बन्ध रहता है, और बहुधा समाज-सुधारक को राज्य-शक्ति का सामना करने के लिए राजनीतिक जाल में घुसना पड़ता है।

रमानाथ को यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से किसी धार्मिक सङ्घ या राज्य-शक्ति का सामना नहीं करना पड़ा, फिर भी वे इन झगड़ों से अलग न रह सके।

वे अपने पत्र में निस्पृह भाव से सामाजिक प्रश्नों पर विचार करने लगे। उनकी यह टीका-टिप्पणी कुछ प्रमुख नगर-निवासियों को अरुचिकर हुई। इन्होंने देखा, रमानाथ

के इस प्रकार की टीका-टिप्पिणी से उन्हें कई प्रकार की असुविधाएँ होंगी।

कई राजनीतिज्ञ रमानाथ के विरोधी हो उठे। बाबू कुमुद-बिहारी वर्मा की सदैव यह इच्छा रहा करती थी कि इस नगर में कोई ऐसा व्यक्ति आगे न बढ़ने पाए, जो उनकी मुट्ठी में न हो। उनकी सदैव यही इच्छा रही कि प्रत्येक काम उनकी संरक्षकता तथा नेतृत्व में हो। यदि कोई व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से आगे बढ़ता तो पहले तो वे उसे अपना चेला बनाने की कोशिश करते और इस प्रयत्न में असफल होने पर उस व्यक्ति को पीस डालने का आयोजन करते।

रमानाथ भी जब वर्मा जी के नेतृत्व को अस्वीकार कर पत्र-सम्पादन करने लगे, तब वर्मा जी ने उनका घोर विरोध प्रारम्भ किया। वर्मा जी की सारे शहर में धाक थी। प्रमुख रईस, ज़मींदार, सेठ-साहूकार—सभी प्रतिष्ठित नगर-निवासी उनके भक्त तथा अनुयायी थे। अस्तु, उनके विरोधियों की संख्या काफ़ी हो गई।

फलतः रमानाथ को ग्रन्थियाँ सुलझाते-सुलझाते इन राजनीतिज्ञों, धर्मगुरुओं, समाजपतियों का विरोध करना पड़ा। धीरे-धीरे राजनीतिक एवं धार्मिक टीका-टिप्पिणी लिखने का अवसर भी आने लगा।

यह तो हुई बाहरी अड़चन की बात। किन्तु उन्हें कुछ आन्तरिक कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा। उनका

पत्र हिन्दी में निकलता था। अङ्गरेज़ी शिक्षित-समाज हिन्दी के पत्र-पत्रिकाओं को छूता तक नहीं, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति अङ्गरेज़ी से हो जाया करती है। उसका कहना है कि हिन्दी में प्रायः सभी साहित्य अन्य भाषाओं का अशुद्ध अनुवाद या सेकेण्ड-हैण्ड चीज़ें रहती हैं, और यह कथन कई अंशों में ठीक भी है।

परिणाम-स्वरूप हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं के पढ़ने वाले लोग बहुत साधारण कोटि के होते हैं। अब यदि पत्र उच्च-कोटि का निकाला जाय, तो उसके पाठकों की समझ के बाहर की चीज़ हो जाती है, और उस पत्र की ग्राहक-संख्या गिरने लगती है। इसके विपरीत निम्न-श्रेणी का पत्र निकाला जाय, तो उससे साहित्य का स्टैन्डर्ड ख़राब होता है और निकालने वाले व्यक्ति को उससे सन्तोष नहीं होता। नतीजा यह हो रहा है कि योग्य व्यक्ति के लिए हिन्दी में सम्पादन-कार्य करना बहुत कठिन हो जाता है। इन्हीं दिक़्क़तों के बीच में रमानाथ का पत्र सम्पादित होने लगा।

जिस समय की बात हम लिख रहे हैं, उस समय देश के प्रमुख नेता भी अङ्गरेज़ी सरकार से सहयोग करने में सङ्कोच न करते थे। दो-चार कड़वी बात कह देने वाले को ही लोग उस समय गरम दल का अनुयायी समझते थे।

सरकार की ओर से शान्ति-उत्सव मनाने की तैयारी हो रही थी। किस प्रकार उत्सव मनाया जाय, उसका कार्य-क्रम क्या रहे—इस पर विचार करने के लिए प्रायः सभी प्रतिष्ठित नगर-निवासी बुलाए गए थे। बाबू कुमुदविहारी वर्मा, मुन्शी सरफ़राज़ हुसेन, अहमदख़ाँ साहब ताल्लुक़ेदार, पण्डित घनश्यामदास, बाबू रामलाल दुबे, मुरलीधर तथा रमानाथ आदि सज्जन उपस्थित थे।

प्रार्थना, आतिशबाज़ी, मदारी के खेल आदि अन्य बातों

के तय हो जाने पर मुन्शी सरफ़राज़ हुसेन साहब ने यह तजवीज़ पेश की कि इस जल्से में गाने का होना निहायत ज़रूरी है, इसलिए किसी मशहूर तवायफ़ को बुलाया जाय। बहुत दूर-दूर से तमाशबीन आएँगे। आख़िर वे लोग सरकार बहादुर का क्या नाम लेंगे?

पण्डित दीनानाथ वकील ने इस प्रस्ताव पर बोलते हुए कहा—यद्यपि व्यक्तिगत रूप से मैं वेश्या बुलाए जाने का विरोधी हूँ, लेकिन यह जलसा किसी व्यक्ति या दल-विशेष की तरफ़ से तो हो नहीं रहा है, इसमें तो ऐसी ही बातें होनी चाहिए, जिसमें अधिकांश लोगों को आनन्द आए।

वर्मा जी का राय ज़ाहिर करना बहुत ज़रूरी बात थी, किन्तु वे चुप ही रहे। उन्हें यह बख़ूबी मालूम था कि अधिकांश लोग इस प्रस्ताव का समर्थन करेंगे, और वेश्या भी आएगी अवश्य ही, तब प्रकट-रूप से इस प्रस्ताव का समर्थन कर 'समाज' की टीका-टिप्पिणी का कारण बनना व्यर्थ है।

मुरलीधर इस अवसर पर चुप न रह सके। उन्होंने प्रस्ताव का तीव्र विरोध करते हुए कहा—इस प्रकार चन्दे से वसूल किए गए जनता के धन को लुटाना किसी भी दशा में उचित नहीं कहा जा सकता। इसके अलावा एक सार्वजनिक कार्य में इस प्रकार वेश्या की इज़्ज़त कर, इस कलुषित प्रथा का खुले तौर से अनुमोदन करना अनुचित है।

इससे तो कहीं बेहतर होगा कि इसी द्रव्य से कङ्गालों को भोजन करा दिया जाय।

रमानाथ ने संक्षेप में मुरलीधर का समर्थन किया। बाबू रामलाल दुबे ने मुरलीधर का विरोध करते हुए कहा—"हम लोगों को अवसर के अनुकूल काम करने की आदत डालनी चाहिए। यह हमारी जातीय कमज़ोरी है कि हम ऐसा नहीं कर सकते। हमारी इसी कमज़ोरी के कारण, युद्ध में दया दिखाने के कारण हमारा देश हमसे छिन गया। खाने के वक़् रोना और रोने के वक़् गाना कभी उचित नहीं कहा जा सकता। हम लोग .खुशी मनाने जा रहे हैं, तब उसका कार्य-क्रम भी ऐसा ही हो, जिसमें लोगों को मज़ा आए। मैं उपस्थित सज्जनों से ही पूछता हूँ कि उनमें कितने ऐसे हैं, जिन्हें कङ्गालों को भोजन कराने में मज़ा आएगा? यह भी .खुशी मनाने का कोई तरीक़ा है? ग़रीबों के लिए अगर मुरलीधर जी के मन में इस क़दर दया का समुद्र उमड़ आया है, तो यह बड़े सौभाग्य की बात है; किन्तु यह काम किसी दूसरे समय के लिए रख छोड़िए। फ़ुरसत मिलने पर उन लोगों के लिए चन्दा कीजिए, उन्हें आराम पहुँचाइए। इस ख़ुशी के काम में मनहूसी की क्या ज़रूरत?"

यहीं पर सभा में उपस्थित एक सज्जन ने 'समाज' के उस अंश को पढ़ सुनाया, जिसमें इस विषय पर कुछ लिखा गया था। 'समाज' ने लिखा था:—

"ख़बर है कि सन्धि-समारोह के अवसर पर अधिकारी-वर्ग अभ्यागतों के मनोरञ्जनार्थ एक वेश्या को भी बुलाने वाले हैं। विश्वस्त-सूत्र से यह भी पता चला है कि स्थानीय नेताओं ने भी इस प्रस्ताव का मौन होकर समर्थन किया है।

"अधिकारियों से तो कुछ कहना ही व्यर्थ है, किन्तु स्थानीय नेताओं के इस व्यवहार पर हमें आश्चर्य-चकित होना पड़ा है। सार्वजनिक धन को एक ऐसे कार्य में लगाना, जो नैतिक दृष्टि से पतित समझा जाता हो, अनुचित है।

"यह बात एक प्रकार से निर्विवाद है कि वेश्याओं से समाज का कल्याण नहीं होता। समाज-शरीर के मल की, दूषित विचारों की ये जीती-जागती प्रतिमाएँ हैं। ये शारीरिक या भौतिक दृष्टि से अस्वास्थ्यकर, आर्थिक दृष्टि से अनुत्पादक, कुटुम्ब की दृष्टि से कलह एवं अशान्ति का कारण तथा नैतिक दृष्टि से हमारे घोर पतन की सीढ़ियाँ हैं।

"दूसरी विचारणीय बात यह है कि ये वेश्याएँ आती कहाँ से हैं। हम सद्गृहस्थ कहलाने वालों के घरों की सती-सावित्री लक्ष्मियों से ही इनकी रिक्रूटिङ्ग (भर्त्ती) होती है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष-रूप से ये हमारी पुत्री, भगिनी या माता ही हैं। इस दूषित वेश्या-समाज को प्रश्रय देकर हम घरों की देवियों पर ही अत्याचार कर रहे हैं, और अपने घरों से निकालकर इस पतित समाज में आ बैठने के लिए पक्की सड़क तैयार कर रहे हैं।

"इस सन्धि-समारोह में नेताओं द्वारा वेश्या बुलाए जाने का यह तात्पर्य होता है कि वे इस समाज को कल्याणकारी एवं आवश्यक अवश्य क़रार देते हैं।

"समाज के आगे चलने वालों पर याने नेताओं पर साधारण लोगों की अपेक्षा अधिक ज़िम्मेदारी रहती है। इनका उदाहरण देखकर ही पीछे चलने वाले लोग अपना मार्ग निश्चित करते हैं। इनके द्वारा खुल्लमखुल्ला इस प्रकार वेश्या की इज़्ज़त करने का देश के स्त्री-पुरुषों पर कैसा असर पड़ेगा, यह प्रत्येक व्यक्ति अनुमान कर सकता है। छोटे कार्यों का परिणाम भी कभी-कभी भयङ्कर हुआ करता है।

"अन्त में हमारा अनुरोध है तथा विश्वास भी है कि ये नेतागण गम्भीर विचार के बाद ही अपनी राय देंगे।"

अन्त में मुन्शी सरफ़राज़ हुसेन ने प्रस्तावक की हैसियत से आक्षेपों का उत्तर देते हुए कहा—"कम उमर वाले भावुक होते हैं, किन्तु हर जगह भावुकता को लेकर बैठे रहने से काम नहीं चलता। राज्य-कार्य चलाना खेल नहीं है। कई प्रकार से कई तरह के लोगों को ख़ुश करना पड़ता है। मुझे उम्मीद है कि 'समाज' के अपरिपक्व विचारों पर आप लोग ख़्याल न करेंगे।"

मत लेने पर वेश्या बुलाने की ही बात पक्की रही और अधिकांश लोगों ने इसी बात के लिए अपनी राय दी।

त्येक व्यक्ति को विश्राम की आवश्यकता होती है। कुली, कृषक, बाबू, वकील, जज—सभी दिनभर के काम के बाद सन्ध्या-समय विश्राम करते हैं। केवल मनुष्य ही नहीं, पशु एवं उद्भिज पदार्थ तक सन्ध्या से विश्राम करने लग जाते हैं। यह प्राकृतिक व्यवस्था है। स्वाभाविक तौर पर ही सबको विश्राम की आवश्यकता पड़ती है।

यह तो हुई दैनिक बात। जीवन में भी एक ऐसी अवस्था आती है, जब मनुष्य संसार की सारी झञ्झटों से अलग होकर विश्राम की चिन्ता में लीन होता है। जीवन का भी सन्ध्या-काल आता है। मनुष्य-जीवन की तीसरी अवस्था भी यही विश्राम का समय है—सन्ध्या काल है। यह यौवन के उतार और वृद्धावस्था के आगमन का सन्धि-काल होता है।

प्रारम्भ से ही मनुष्य अपने सारे सरञ्जाम इस प्रकार

फैलाता है, जिससे आगे चलकर जीवन के सन्ध्या-काल में उसे विश्राम करने का अवसर मिल सके। किन्तु जीवन के इस सन्ध्या-काल में भी जिसे विश्राम का अवसर नहीं मिलता; इस समय भी जब घर आने पर बिछी हुई शय्या नहीं मिलती; क्लान्त अवस्था में घर आकर भी जब वह देखता है कि जीवन-निर्वाह के लिए उसे फिर से दूकान लगानी पड़ेगी, विश्राम के स्थान में फिर से परिश्रम करना होगा, तब उसके दुख का क्या ठिकाना है? दूर से आए हुए, थके-माँदे यात्री को घोर जङ्गल में जब अन्धकार हो जाने पर भी किसी गाँव की रोशनी दिखाई नहीं देती, तब उसे जिस व्याकुलता का अनुभव होता है; पकी खेती पर पाला पड़ जाने से किसान को जो कष्ट होता है, वही व्याकुलता, वही कष्ट इस जीवन-यात्री को भी बोध होता है।

वेश्या-जीवन में भी यही अनुभव मिलता है। युवावस्था बीत जाने पर—इन्द्रियों की मादकता उतर जाने पर—बाल-बच्चों में मिलकर जब गृहस्थ शान्ति से काल-यापन करने का आयोजन करता है अथवा परमात्मा के भजन-भाव में समय बिताता है, उस समय वेश्या देखती है कि उसे फिर से नई रीति से दूकान सजानी होगी।

रूप की बाढ़ उतर जाने पर, रूप के ग्राहकों की कमी हो जाने पर शान्ति से जीवन बिताना उसे मुयस्सर नहीं होता। सारे जीवन की कमाई—उसके रूप की दूकान इस समय

तक लुट गई रहती है। जहाँ बैठकर पहले वह विद्युतालोक में चमचमाती हुई चीज़ें लालायित ग्राहकों के हाथों मन-माने मोल पर बेचती थी, पर फिर भी ग्राहकों की भीड़ लगी रहती थी, वहीं अब वह मिट्टी का अधेले वाला चिराग़ लेकर बैठती और भूले-भटके तीसरे दर्जे के ग्राहकों के हाथ सेकेण्ड-हैण्ड, पुराने-भद्दे, रूखे सामान मोल-तोल करने के बाद कठिनता से बेच पाती है!

लेकिन इस प्रकार की दूकान से किसी का काम चल सकता है? उसका रङ्ग भी थोड़े दिनों में उतर जाता है। तब दूसरों को लाकर दूकानदारी चलाती है। अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए व्यभिचार का व्यापार गरम करती है। नाना प्रकार के छल-कपट द्वारा किसी प्रकार जीविका चलाती है।

जब सरला पेण्डरा से बिलासपुर आने के लिए रमानाथ के साथ चली, तब अचानक स्त्रियों वाले डिब्बे में उसकी मुलाक़ात भी इसी अन्तिम श्रेणी की एक वृद्धा वेश्या से हो गई। इस बेचारी का यौवन भी कपटी यार की तरह उसे छोड़कर, बहुत दिन हुए, चला गया था। वह अपनी दूकान सजाने के लिए किसी नए शिकार की खोज में एक मेले में जा रही थी।

गभग एक सप्ताह रमानाथ के साथ रहने के बाद जब सरला चङ्गी हो गई, तब रमानाथ ने उससे अपने साथ चलकर बिलासपुर में रहने का प्रस्ताव किया।

सरला ने सोचा, वह तो पतित हो ही चुकी, एक उच्च-चरित्र वाले युवक को अपने साथ ले डूबने से क्या लाभ ? इसलिए उसने फिर वही बात कही, जिसे उसने डूब मरने से बचाए जाने पर रमानाथ से कही थी। वह बोली—मेरी जीवन-रक्षा कर आपने पुण्य का कार्य नहीं किया है। आपके इस कार्य का परिणाम कैसा होगा, इसकी आप कल्पना तक नहीं कर सकते। आप मुझे बिलासपुर ले चलने के लिए तैयार तो हैं, लेकिन मैं किसके साथ रहूँगी ?

रमानाथ—फ़िलहाल मेरे साथ ही रहना।

सरला—फ़िलहाल के बाद क्या प्रबन्ध होगा ? आप

यह प्रस्ताव क्षणिक दया-भाव से तथा सभ्यता के लिहाज़ से ही कर रहे हैं, लेकिन मेरा प्रश्न क्षणिक नहीं है। मुझे तो जो कुछ भी हो, यावज्जीवन के लिए प्रबन्ध करना है।

रमानाथ—मुझे सोचने का अवसर दो, मैं तुम्हारे लिए कुछ न कुछ स्थायी प्रबन्ध कर दूँगा।

सरला—आप कुछ न कर सकेंगे। समाज की लाञ्छना लेकर मुझे अपने साथ रक्खे, यह आपसे और सम्भवतः किसी भी महामना व्यक्ति से न हो सकेगा। मुझे भी यह बात स्वीकार नहीं। ऐसी हालत में एक दिन के लिए भी मैं आपके साथ बिलासपुर चलकर रहना नहीं चाहती। क्योंकि एक क्षण के लिए भी आपके साथ मुझे देखते ही लोग आपकी बदनामी करने लग जायँगे।

ऐसी दशा में दो-चार दिन के बाद ही आपके लिए मैं भार बन जाऊँगी। आपको मुझे अलग करना पड़ेगा, और आपकी बदनामी भी न छूटेगी। ऐसी दशा में आप बिना सोचे-विचारे जो प्रस्ताव कर रहे हैं, उसके अनुसार कार्य करना अनुचित है। इस जीवन में आपका मार्ग अलग है, मेरा अलग। आप अपनी राह लें, मैं अपनी राह ठीक करूँ। दोनों साथ मिलकर चल नहीं सकते।

किन्तु सरला के स्पष्ट उत्तर दे देने पर भी रमानाथ उससे अनुरोध करते ही रहे, और एक दिन उन्होंने उसे लेकर बिलासपुर की यात्रा कर दी। गौरेला स्टेशन पर पहुँचकर

उन्होंने दो टिकट ख़रीदे और सरला को एक ज़नाने डिब्बे में बैठा आए, आप दूसरे डिब्बे में बैठे।

रामगढ़ के आसपास कई रजवाड़े हैं। इन्हीं में से एक का नाम भोरमगढ़ है। यहाँ हर साल भादों के महीने में गणेशोत्सव मनाया जाता है। इसी उपलक्ष में यहाँ दस दिन तक मेला लगता है। मेले में अन्य वस्तुओं की तरह रूप की दुकानें भी लगती हैं—रूप का बाज़ार भी गरम हो उठता है। मेले में जाकर किसी वाराङ्गना का सहवास भी न हुआ तो लाभ ही क्या ?

इस मेले में वेश्याओं के लिए ख़ास प्रबन्ध रहता था। वे राजा साहब की ओर से निमन्त्रित की जाती थीं। जितनी वेश्याएँ आती थीं, सबको योग्यतानुसार कुछ न कुछ इनाम दिया जाता था। इस प्रकार डबल मुनाफ़े के लोभ से वेश्याओं की ख़ासी भीड़ हो जाती थी। जुआ भी ख़ूब ज़ोरों से होता था और उससे राज्य को जो लाभ होता था, वह इनाम के रूप में वेश्याओं में बाँट दिया जाता था।

जिस गाड़ी से सरला रवाना हुई, उसी गाड़ी से एक वृद्धा वेश्या भी यात्रा कर रही थी। दोनों एक ही डिब्बे में बैठीं। वेश्याओं को विभिन्न चरित्र के मनुष्यों से मिलने का अवसर मिलता है, फलतः वे मानव-चरित्र की अच्छी ज्ञाता हो जाती हैं। यदि उन्हें मनुष्य को पहचानने की शक्ति और

तत्पर बुद्धि उनमें न हो तो उनका रोज़गार ही न चले।

वृद्धा वेश्या एक अनुभवी स्त्री थी, और इसी फ़न में उसने बाल पकाए थे। आध घण्टे के अन्दर ही अन्दर उसने सरला का रङ्ग-ढङ्ग ताड़ लिया और अपनी वाक्-चातुरी से दो-तीन स्टेशन आते-आते ही सरला से काफ़ी मेल-जोल पैदा कर लिया। बात-बात में सरला ने उससे अपनी राम-कहानी बताकर अपने निराश्रय होने की बात भी कही।

सब बातें सुनकर वृद्धा वेश्या ने कहा—तुम मेरे साथ चलकर एक माह रहो। तुम्हें किसी के आश्रय की आवश्यकता ही न रहेगी। तुम ख़ुद दूसरों को आश्रय देने के योग्य हो जाओगी। वही पुरुष, जो आज तुम्हारा अपमान करते हैं, उस समय तुम्हारे तलवे सुहलावेंगे। सरला उसके साथ जाने को तैयार हो गई। मेले में जाकर सरला ने देखा—बड़े-बड़े सेठ, साहूकार, राजे, पण्डित, पुजारी, साधु, मुल्ला, क़ाज़ी, वेश्या के पद-रज के लिए लालायित हैं—उसकी एक नज़र पर अपना सर्वस्व लुटा देने को तैयार हैं। वेश्या के नज़दीक असाम्य-भाव भी मिट जाता है। एक ही महफ़िल में पण्डित, मुल्ला, क़साई—सब कोई बाई जी का प्रसाद ग्रहण करते हैं।

यहाँ सभी एक तुला पर रक्खे जाते हैं। जो अधिक द्रव्य ख़र्च करे, वही विजयी है, उच्च है; वही रसिक-शिरोमणि, महा-पण्डित है। यों तो आजकल संसार में सर्वत्र वेश्याओं की प्रधानता है, किन्तु 'सर्वे गुणाः काञ्चन-माश्रयन्ते' का सिद्धान्त यहीं सबसे अधिक लागू होता है।

इस समय सरला के सामने दो प्रश्न थे—एक तो यह कि वह किसी के घर में दासी बनकर अपमानित होने का प्रबन्ध करे, जहाँ मनचले लोग हमेशा उसे सताएँगे और छिपे-छिपे उसके साथ सम्भोग कर अपनी काम-लिप्सा की तृप्ति करेंगे। दूसरा यह कि वह भी वेश्या-वृत्ति स्वीकार कर, समुचित-रूप से यौवन-रूप बेचने का प्रबन्ध करे, जहाँ उसे ख्याति और धन मिलेगा, तथा वे ही पुरुष, जो उसे आज तक अपमानित करते आए हैं, उसके सामने सिर झुकाए खड़े रहेंगे।

इस पेशे के लिए तैयार होने में उसे लगभग छः मास लग गए। सरला को दो बातों की शिक्षा लेनी थी—गाने की तथा वेश्योचित व्यवहार एवं शील की। गाना सीखने में उसे अधिक समय न लगा। आजकल वेश्याओं के लिए सङ्गीत में दक्षता प्राप्त करने की अधिक आवश्यकता नहीं रहती। उन्हें रूप-यौवन और बातचीत में तमीज़ चाहिए। उनके अतिथियों में ९९ फ़ीसदी लोगों को गाने से रुचि नहीं रहती ; यदि रही भी तो उनकी समझ के अनुसार सङ्गीत ग़ज़ल, दादरा, क़व्वाली और ठुमरी में ही परिमित रहती है।

सरला का स्वर कोमल था, गले में लोच थी, बुद्धि तीव्र थी, साधारण गाना वह बहुत जल्द सीख गई। पढ़ी-लिखी होने के कारण तमीज़ सीखने में उसे देर न लगी। उसमें एक प्रकार की झिझक थी, जिसके कारण वह बातचीत

करने में घबड़ाती थी; किन्तु दो-चार दिन लोगों के साथ उठने-बैठने से ही वह झिझक दूर हो गई।

कुछ दिन बाद ही सरला ने उस घोर पापमय जीवन को शुरू किया, जिसे हज़ारों स्त्रियों, कुल-बधुओं ने स्वीकार किया है और जिसे पुरुष-जाति पसन्द करती है। समाज और सरकार ने भी इसको पापमय जीवन की मन्ज़ूरी दे रक्खी है। विवाहादि पुण्य-संस्कारों तथा सरकारी दरबार, नुमाइश आदि के अवसरों पर इस पाप-प्रतिमा की काफ़ी क़दर होती है।

रातभर का जागरण, दिनभर का शयन—यही इस जीवन का अस्वाभाविक निरन्तर कार्य-क्रम है। तीन या चार बजे शाम को किसी तरह खुमारी दूर कर मलिन और अपवित्र बिस्तर से उठकर शृङ्गार करना, इसके बाद झरोखे के समीप बैठकर उत्सुकता से झाँकना और ग्राहकों की राह देखना; फिर रसिकों का आगमन—सङ्गीत, नृत्य, ठट्ठा, मज़ाक़ का होना, बस उनकी यही दिनचर्या है। उदास रहने पर भी हँसी, पीड़ित रहने पर भी सम्भोग; सो भी लड़के, ज़ईफ़, ब्याहे-अनब्याहे, दुकानदार, रईस, मज़दूर, बाबू, मुसलमान, पारसी, अङ्गरेज़, हिन्दू, बौद्ध, रोगी, नीरोग, मोटे, पतले, कोमल, कर्कश—सभी श्रेणी और चरित्र के लोगों से सम्भोग !! कैसी नारकीय लीला है !!!

बाईसवाँ परिच्छेद

नव-मस्तिष्क में विरोधी विचारों का बाहुल्य देखकर कभी-कभी चकित होना पड़ता है! जन्मभर वेश्या की ग़ुलामी करने वाला व्यक्ति भी वेश्याओं को नीच कहकर उनसे घृणा प्रकट करता है, किन्तु उनके पास जाने से अपने को रोक नहीं सकता।

स्वयं इस पाप-पङ्क में गले तक धँसे रहने पर भी वह अपनी स्त्री को सती-साध्वी बनाए रखने का आकांक्षी रहता है। वह इस बात की कल्पना तक नहीं कर सकता कि उसकी पत्नी, भगिनी या पुत्री भी परिस्थिति में पड़कर वेश्या हो सकती है। इस विचार को वह सहन नहीं कर सकता।

वह जानता है कि वेश्याओं पर विश्वास करना उचित नहीं; लेकिन जिस वेश्या से उसका परिचय है, उस पर अविश्वास करने का कोई कारण उसे दिखाई नहीं देता! अस्तु, वेश्याओं का समाज के अन्दर कोई अस्तित्व न होने

पर भी उनका यथेष्ट आदर-सम्मान होता है, इसमें सन्देह नहीं।

अधिकांश नगरों में उनके रहने के लिए सबसे अच्छी जगह चुनी जाती है। अक्सर वे चौक या सदर के आस-पास ही रहती हैं। और है भी यह प्रबन्ध उचित ही। यह भी एक प्रकार की दूकान है, इसलिए जहाँ अन्य वस्तुओं की प्रधान दूकानें रहती हैं, वहीं इसका रहना भी ठीक है।

बाहर से आए हुए लोगों को चौक या सदर में अवश्य ही आना पड़ता है। हिन्दुस्तानी अतिथि-सेवा के बड़े प्रेमी हैं, शायद इसीलिए नगर के अतिथि की ख़ातिरदारी तथा सुविधा का ख़याल करके ही वेश्याओं के इस प्रकार चौक के समीप रहने की व्यवस्था की गई हो!

पुण्य-सलिला भागीरथी के तटस्थ तीर्थराज प्रयाग में जहाँ एक ओर यात्रियों के लिए पुण्य-लाभ एवं स्वर्ग-प्राप्ति की सुविधा है, वहीं दूसरी ओर सांसारिक आनन्दोपभोग एवं भौतिक कल्याण का भी यथेष्ट सुपास है! दूर से आए हुए क्लान्त पथिकों के लिए चौक से मिले हुए बहादुरगञ्ज में वेश्याओं की दूकानें काफ़ी संख्या में लगी हुई हैं।

तीन-चार सप्ताह से सरला ने भी इसी परम पावन, भौतिक सन्तापहारी, चितरञ्जक मुहल्ले के एक कोठे पर खुले-तौर से बैठकर मुक्त हाथों से रूप-यौवन लुटाना प्रारम्भ कर दिया है। दाता की दानशीलता एवं महानता से गद्गद

होकर भक्तों की भीड़ पतिङ्गों की तरह उस ओर आकर्षित होने लगी है !

शङ्कर भगवान् की पूजा में रत, शुभ्रवसना उपासिका विधवा सरला तथा इस बहादुरगञ्ज शिखर-विहारिणी उपास्य देवी सरलाबाई में यथेष्ट अन्तर है। बाईजी की सज-धज ही निराली है। जहाँ हमारी पूर्व-परिचिता तपस्विनी सरला को देखकर अस्वस्थ मन में भी पवित्र भावों का उदय होता था, वहाँ इस बाई को देखकर जितेन्द्रियों का मन भी एक बार डिग जाता है, और बरबस उनकी आँखें ऊपर उठकर कुछ देर के लिए अटक जाती हैं—हटती नहीं।

आजकल उसके वस्त्राभूषण ख़ूब चुने हुए और उत्तेजक होते हैं। अब वह इन्हें लज्जा-निवारण के हेतु नहीं, वरन् किसी दूसरे हेतु से ही पहनती है। वस्त्रों को वह अपने अङ्गों पर इस तरह सजाती है कि गले और वक्षस्थल के बीच का यथेष्ट भाग खुला रहता है, जिससे स्पष्ट-नग्नता भी न ज़ाहिर हो और लोगों की दृष्टि गले से चलकर वक्षस्थल के चढ़ाव-उतार पर अटककर कुछ खोजने लगे। उसकी चोली या चोलका इतना चुश्त रहता है, जिससे वक्षस्थल का चढ़ाव-उतार बाहर से साफ़ दिखाई दे। उस पर साड़ी भी इतनी पतली रहती है कि भीतर का भाग स्पष्ट तो नहीं, किन्तु इस प्रकार झलक जाय कि दर्शक के मन में देखने की उत्कण्ठा बरबस उत्पन्न हो !

तेल, पाउडर, सुगन्धि आदि का भी वह उपयोग करती है। उससे पाँच हाथ की दूरी पर बैठने वाले भी ख़ुशबू से तर हो जाते हैं। इन सब उत्तेजक पदार्थों के मिश्रण से उसके अपरूप सौन्दर्य में लोगों को उन्मत्त बना देने की शक्ति आगई है। जिस समय वह कटाक्ष करती हुई, भाव-भङ्गी दिखाती हुई, कोई चुहचुहाती हुई ग़ज़ल गाने लगती है, उस समय वहाँ बैठे हुए लोग अपना अस्तित्व तक भूल जाते हैं, तब धर्म या जाति का ध्यान कैसे रहे ?

सरला ने यद्यपि यह पेशा स्वीकार कर लिया था, किन्तु उसकी प्रकृति को यह सह्य न था, या यों कहिए कि उसे अभी इन बातों की आदत न पड़ी थी। रोज़ रात को जागने के कारण उसकी तबीयत सुस्त रहा करती, सिर में दर्द रहता और खाना अच्छी तरह हज़म न होता था।

अन्य दिनों की अपेक्षा आज उसे अधिक सुस्ती मालूम होती थी। बिस्तर से उठने का जी न चाहता था, लेकिन जब शाम हो गई और पाँच बज गए, तब उसे बिस्तर छोड़ना ही पड़ा। उसने सोचा—स्नान कर लेने से शायद ख़ुमारी कुछ दूर हो जाय। उसने स्नान-गृह में जाकर ख़ूब स्नान किया, लेकिन तबीयत स्वस्थ न हुई।

जिस प्रकार अङ्गरेज़ी तौर-तरीक़े के क़ायल लोग बिना बाहर जाने के कपड़े पहने अपने द्वार पर आए हुए आदमी से भी नहीं मिलते, उसी प्रकार रण्डियाँ भी बिना बनाव-

सिंगार किए अपने ग्राहकों के सामने नहीं आतीं। सरला ने भी स्नान से लौटकर अपनी 'ऑफ़िस वाली' पोशाक चढ़ाई और यद्यपि उसका जी बैठने को न चाहता था, सोने की इच्छा थी, तथापि वह आकर अपने अतिथि-कक्षा में बैठ रही।

लगभग सात बजे शाम को चिराग़-बत्ती जलने पर कुछ लोगों के सीढ़ी पर से ऊपर चढ़ने की आहट मिली। सरला उनके स्वागत के लिए उठने का विचार कर रही थी कि एक महाशय ने झुककर सरला को फ़र्शी सलाम किया। सरला झेंप गई। जिस प्रकार युद्ध में रत दो जातियाँ भी कुछ न कुछ नियम मानकर युद्ध करती हैं, उसी प्रकार समाज-बन्धन को तोड़ डालने पर भी रण्डियों को कई नियम मान-कर चलना पड़ता है। ग्राहक के आने पर उठकर उसकी ताज़ीम करना उनका पहला फ़र्ज़ समझा जाता है। इस प्रकार चुप रह जाने का अर्थ था कि वह अपने फ़न में कच्ची है, इसीलिए सरला को कुण्ठित होना पड़ा।

आने वाले रईसों की संख्या तीन थी। सबके अगुआ थे मुन्शी ललितकिशोर वर्मा। आप जाति के कायस्थ थे और महन्त रामदास तालुक़ेदार के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। क़द मझोला, बदन दोहरा, रङ्ग साँवला, चेहरा कुछ लम्बा था। आपकी रसिकता आपके चेहरे से ही झलकती थी। पोशाक एकदम साहबी—हैट-बूट आदि।

दूसरे व्यक्ति थे मुन्शी जवाहरलाल श्रीवास्तव। आप खादी के बड़े प्रेमी थे, अपने गाँव का बुना कपड़ा ही पहना करते थे। आपकी पोशाक सिर्फ़ कुरते और टोपी ही होती थी, पैर में मखमली जूता रहता था। क़द आपका ज़रा बेडौल था, लम्बाई छः फीट, मुटाई या घेरा ८९ इञ्च, आँखें ज़रूरत से ज्यादा बड़ी और छोटी-छोटी मूँछें थीं।

तीसरे व्यक्ति थे मिस्टर क़ासिमभाई। इनकी ऊँचाई साधारण, बदन दुहरा और कसरती, मूँछों की नोक ऊपर चढ़ी हुई, और आँखें लाल थीं। चेहरे से कड़ियलपन ज़ाहिर होता था। वे लम्बा कोट, ढीला पाजामा और तुर्की टोपी पहने हुए थे। ये दोनों व्यक्ति मुन्शी ललितकिशोर के मुसाहिब थे। उन्हीं के ज़रिए इन लोगों की परवरिश होती थी।

साधारण शिष्टाचार की बात हो जाने पर आगन्तुकों ने एक चिट पर उम्मीदवार लिखकर सरला के सामने पेशकर दिया। अत्यन्त रसिक, शीलयुक्त, सभ्य तथा दुमानिया भाषा में इन लोगों ने अपनी आकांक्षा ज़ाहिर की। वेश्याओं के यहाँ जाने वाले अक्सर इतनी सौम्यता नहीं दिखाते।

सरला ने उसे ग़ौर से देखा, आगन्तुकों की सौम्य रसिकता पर वह ख़ुश हो गई। इस दूकान में बही-खाते और क़लम-दावात आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती; क्योंकि यहाँ का सौदा नक़द होता है, बल्कि पेशगी के रूप में ही पूरी क़ीमत वसूल कर ली जाती है। सरला ने दासी से

क़लम-दावात मँगवाई और उसी चिट के नीचे 'राम करें कहुँ नैन न उरझैं।' लिखकर आगन्तुकों को दे दिया। यही उनका जवाब था।

क़ासिमभाई ने इसी सुहबत में दिन बिताया था, लेकिन आज एक वेश्या के मुँह से उपदेश सुनकर वे चकराए। उन्होंने कहा—बाई जी, हम आपके पास कुरान-शरीफ़ की आयतें सुनने नहीं आए हैं। 'दाता से वह सूम भला जो तुरतई देय जवाब।' आप हम लोगों को इस तरह कब तक बैठा रक्खेंगी? सरकार का नाम सुनकर हम लोग बड़ी दूर से आए हैं।

मुन्शी जवाहरलाल बेसब्र हो रहे थे। उन्होंने कहा—और नहीं तो तब तक दो-एक गाने ही हो जायँ।

मुन्शी ललितकिशोर अभी तक मूँछों पर ताव दे रहे थे, यह बात सुनकर उनकी रसिकता जाग्रत हो गई, उन्होंने कहा—तब तक गाना ही हो, याने उसके बाद आप और कुछ भी चाहते हैं। जनाब, आप और क्या चहते हैं, वह भी तो सुनें?

सरला मुस्कराई, वह कुछ कहना ही चाहती थी कि क़ासिमभाई कह उठे—बहुत देर के बाद बिजली चमकी, अब बारिश होने ही वाली है। हाँ बाई जी, होने दीजिए, अब देर किस बात की?

सरला ने हारमोनियम लेकर गाना शुरू किया:—

सँभालो तेग़ अदा को ज़रा सुनो तो सही।
किसी की आ न गई हो कज़ा, सुनो तो सही॥
न पामाल करो, मल के हाथ में मेंहदी।
किसी का ख़ून करेगी हिना, सुनो तो सही॥

इस गाने में ही सरला को दस रुपए मिले। असामी अच्छा देखकर सरला ने दूसरा गाना शुरू किया :—

शिकवे अन्दाज़ जिधर दीदए जाँ होंगे।
नीम बिस्मिल कई होंगे, कई बेजाँ होंगे॥
तू कहाँ जायगी, कुछ अपना ठिकाना कर ले।
हम तो कल ख़्वाब-अदम में शबे हिजराँ होंगे॥
उम्र सारी तो कटी, इश्क़-बुतों में 'मोमिन'।
आख़िरी वक्त़ है, क्या ख़ाक मुसलमाँ होंगे!!

गाना सुनकर तीनों आदमियों की तबीयत बाग़-बाग़ हो गई। मारे वाहवाही के सरला भी फूल गई।

बात यह थी, जल्से में तवायफ़ बुलाने की बात तय हो जाने पर, इसके इन्तज़ाम का भार मुन्शी सरफ़राज़ हुसेन पर पड़ा। उन्होंने ही मुन्शी ललितकिशोर को इलाहाबाद भेजा था, और ये लोग सरला को निमन्त्रित करने के लिए आए थे। एक दलाल के ज़रिए इन्हें सरला का पता चला। गाना सुनकर तथा सरला को देखकर फिर इन लोगों की तबीयत दूसरी जगह जाने की न हुई और सरला से ही इन लोगों ने बातचीत पक्की कर ली।

मारोह के लिए शनीचरी बाज़ार के मैदान पर एक अर्द्धचन्द्राकार मण्डप तैयार किया गया था। दर्शकों के लिए इस तरीक़े से स्थान बनाया गया था, जिसमें श्रेणी-विभाग के अनुसार बैठने का प्रबन्ध था। एक सुन्दर रङ्ग-मञ्च भी उठाया गया था, जिस पर कुछ इने-गिने महा-सम्मानित लोगों के बैठने और सरलाबाई के गाने का प्रबन्ध किया गया था। मेसर्स बिलीमोरिया एण्ड कम्पनी ने अपनी ओर से बिना मूल्य लिए बिजली की रोशनी का प्रबन्ध कर दिया था। पण्डाल चारों ओर से इस प्रकार घेर दिया गया था कि जिससे बाहर खड़े हुए लोग तमाशा देख सकें, और भीतर घुसकर भीड़ या हल्ला न मचा सकें।

पण्डाल में सुन्दर पौधों के गमले नियत दूरी पर रक्खे हुए थे। खम्भों पर रङ्गीन काग़ज़ चिपका दिए गए थे और बीच-बीच में काग़ज़ तथा हरी पत्तियों के तोरण

बाँधे गए थे। मण्डप का मुख्य प्रवेश-द्वार बड़ी मनोमोहक रीति से सजाया गया था। सारा मण्डप विद्युत-दीपालोक से जगमगा रहा था। इस चकाचौंध पैदा करने वाले आलोक में रङ्गमञ्च पर बैठी हुई सरला सुन्दरी की निराली छटा देखकर ऐसे बहुत कम संयमी-ज्ञानी रहे होंगे, जिनका मन मुग्ध न हुआ हो और जिनकी आँखें बरबस उठकर रङ्गमञ्च पर न अटक गई हों।

मण्डप में वे ही लोग प्रवेश कर सकते थे, जिनको निमन्त्रण-पत्र मिला था। हाँ, प्रबन्धकर्त्ताओं के मित्र, मुसाहिब, आश्रित आदि के लिए, जैसाकि अक्सर हुआ करता है, आने-जाने की रुकावट न थी। इसलिए जहाँ शीतलासहाय सरीखे उत्साही देशभक्त नवयुवकों को मण्डप में जाने की इजाज़त न मिली, वहीं सरधा कुरमी, कोल्हू ताँगा वाला, रमइया तम्बोली, डींगा बीड़ी वाले सरीखे लुच्चे-लफङ्गों को भीतर चले जाने की बड़ी सुविधा थी।

शीतलासहाय पर बाबू कुमुदविहारी वर्मा बड़े रुष्ट थे, इसलिए उत्साही युवक को वे बड़ी उपेक्षा की दृष्टि से देखते और जहाँ तक हो सकता, उसे अपमानित करने की कोशिश किया करते थे। 'समाज' के रिपोर्टर को वर्मा जी ने अपमानित करने की ग़रज़ से उपर्युक्त स्थान न मिलने दिया।

बाजे, आतिशबाज़ी, खेल-तमाशे हो जाने के बाद सरला बाई का गाना आरम्भ हुआ।

साँझ भई घर आयो न कन्हैया ॥
ग्वाल सखा सब घर कहँ लौटे,
ठाढ़ी सोचति यशुमति मैया ॥ १ ॥
मोर-मुकुट मकराकृत कुण्डल,
काँधे कमरिया अधर बँसुरिया ॥ २ ॥

दीपालोक में सरला का वह अपरूप सौन्दर्य, रमणी-कण्ठ का मधुर अलाप, सन्ध्या का समय, श्याम-कल्याण, लोग मन्त्र-मुग्ध से हो उठे। राजा, रईस, व्यापारी, पण्डित, मुल्ला, पुजारी, युवक, वृद्ध, सरला को समाज-च्युत करने वाले समाजपति—सभी इस बन्धनहीना स्वतन्त्र रमणी की शब्द-झङ्कार एवं स्वर-लहरी से धन्य हो गए !!

समारोह के बाद सरला की बड़ी शोहरत हो गई। यहाँ उसका बहुत आदर-सत्कार हुआ। इसीलिए उसे यहाँ ठहर भी जाना पड़ा।

रामगढ़ में आगतों के ठहरने के लिए दो स्थान हैं, एक तो म्युनिसिपैलिटी की सराय और दूसरी पण्डित पचकौड़ी का-प्रसाद की छोटी-सी धर्मशाला। वेश्याएँ प्रायः सराय में दिय ठहरतीं थीं, किन्तु सरला को इस प्रकार साधारण स्थल सवे ठहरना उचित न जँचा। वह किराए के एक अच्छे-से। में ठहराई गई।

यत दूरी

सरला को दिनभर फ़ुरसत न मिलती। चिपका दिए दिनभर भीड़-सी लगी रहती। एक तो यों पत्तियों के तो

में क़द्रदाँ लोगों की कमी न थी, फिर यहाँ तो सरलाबाई पर कई राजे-महाराजों तक की दृष्टि गड़ चुकी थी। सरला ने अपनी फ़ीस इतनी ऊँची कर दी थी कि साधारण लोगों को उससे मिलना कठिन था, फिर भी उसके यहाँ अतिथियों की कमी न रही।

वेश्या-भक्तों की संख्या यों तो रामगढ़ में सैकड़ों पर पहुँचेगी, लेकिन उनमें दस-बारह लोग इस फ़न में काफ़ी ख्याति पैदा कर चुके हैं।

सबसे अग्रगण्य मुन्शी सरफ़राज़ हुसेन हैं। यहाँ जितनी वेश्याएँ आती हैं, उनके लिए यह दस्तूर-सा हो गया है कि वे पहले जाकर मुन्शी जी को सलाम करें। उनकी कृपा से योग्यतानुसार सबको कुछ न कुछ आमदनी हो जाती। पहले मुन्शी जी रामगढ़ के नामी रईसों में थे और साथ ही कई गाँवों के ज़मींदार थे, लेकिन इसी फ़न में उनकी सब जायदाद बिक गई। आजकल मुन्शी जी वर्मा जी की कृपा से म्युनिसिपल बग़ीचे तथा जुए की आमदनी से गुज़र-बसर करते हैं, लेकिन नगर में उनका अब भी वही रोब है, और सभी लोग उन्हें मानते हैं।

दूसरा नम्बर था बाबू रामलाल दुबे का। पहले आपका बड़ा भारी रोज़गार था, लेकिन आपके ही शब्दों में ही उनका अधिकांश रुपया सारङ्गी-बैङ्क में चला गया और दिवाला निकल गया। अब आपके पास दस-पाँच हज़ार

रुपए ही बचे हैं। आप फिर कोई रोज़गार शुरू करने के विचार में हैं। सारङ्गी-बैङ्क से आपका सम्बन्ध टूटा नहीं है। आप बड़े शाह-खर्च समझे जाते हैं, लेकिन उनकी यह शाहख़र्ची केवल वेश्याओं के सामने ही रहती थी, उनके दूर होते ही आपके नाम से दूकानदार बिल लिए रोया करते थे।

तीसरा दर्जा था उन्हीं मुन्शी ललितकिशोर, जवाहर-लाल तथा क़ासिमभाई का, जिनका ज़िक्र पहले ही आ चुका है।

स्थानीय वकील पण्डित कामताप्रसाद भी वेश्या-भक्तों में थे, लेकिन उनकी यह ख़सलत कुछ निराली थी, साधारण कोटि की नहीं। वेश्या-भक्ति को वे विश्वप्रेम का एक अङ्ग मानते थे। वे रूप के पूजक थे और वेश्याओं के द्वारा उनकी साधना सफलता प्राप्त करती थी। अस्तु, वेश्याओं को वे बड़ी श्रद्धा से देखते थे, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मूर्तिपूजक मन्दिर को देखता है।

भस्म-अङ्ग शोभित वृद्ध पण्डित दीनदयालु शर्मा, जिनका ज़िक्र पहले एक बार हो चुका है, यद्यपि वेश्या-भक्त नहीं कहे जा सकते, फिर भी वे अपने लालच को रोक न सकने के कारण सरला के पास सायं-प्रातः जाकर अर्घ्यदान कर आते थे। इनके अलावा और भी कई साधारण लोग थे, लेकिन वे इतने ख्याति-प्राप्त नहीं हैं कि उन्हें इतिहास में स्थान देकर उनका आदर बढ़ाया जाय।

इन लोगों के साथ इनके पार्श्व-रक्षक मोची, क़साई, ताँगेवाले आदि कई लोग पहुँचते थे। साधारण जगहों में बड़े साहब के चपरासियों की तरह जिस प्रकार ये लोग अपना दस्तूर अदा करा लिया करते थे, उस तरह यहाँ इनकी न चल सकी। ये लोग दरवाज़े के अन्दर पैर तक न रख पाते थे। दरवाज़े के बाहर ही खड़े रहकर अपने नयनों को तृप्त कर लिया करते थे।

सरला उस कोटि की वेश्या न थी, जो बिना बुलाए मुन्शी सरफ़राज़ हुसेन के यहाँ सलाम करने जाती। मुन्शी जी इस प्रथा के टूट जाने से बड़े कुपित हुए और तबीयत रहते हुए भी सरला के यहाँ जाने से परहेज़ रखते।

जिस प्रकार वेश्याओं का पेशा व्यभिचार है, उसी प्रकार उपर्युक्त रईसों का नित्य-प्रति यही काम था। उन्हें भी पेशेवाला व्यभिचारी कह सकते हैं, यद्यपि साहित्य में ऐसे पुरुषों के लिए किसी संज्ञा की सृष्टि नहीं हुई है। इन लोगों का गुट्ट रोज़ रात को आठ-नौ बजे के लगभग निकलता और दो-तीन बजे रात को वापस आता।

सरला के आ जाने पर रामगढ़ के बाबुओं का जमघट प्रतिदिन उसी के यहाँ होने लगा। ये लोग सब मिलाकर दस-बारह आदमी थे, जो दो दलों में विभाजित थे। एक के सरदार थे बाबू रामलाल दुबे, दूसरे के थे मुन्शी ललित-किशोर वर्मा। प्रत्येक ओर से इस बात की कोशिश होने

लगी कि सरला उसी की अनुगामिनी बन जाय और दूसरे दल की अपेक्षा उसी की अधिक क़दर होने लगे।

एक रोज़ गाना हो रहा था। सभी लोग उपस्थित थे। इसके अलावा उस दिन दो पञ्जाबी एजेण्ट भी आ पहुँचे थे। चोर-चोर मौसेरे भाई—इन अजनबियों की पैठ भी इस महफ़िल में सरलता से हो गई और देखते-देखते वे लोग इस समाज में घुल-मिल गए।

शायद और दिनों की अपेक्षा आज शराब का ज़ोर अधिक था और इसीलिए आज सरला को फाँसने के लिए दाना फेंकने में अन्य दिनों की अपेक्षा लोग अधिक सरगर्मी दिखा रहे थे। धीरे-धीरे लोग उत्तेजित होने लगे और आपस में तनातनी बढ़ने लगी। दो-एक ने, जिनके होश-हवास ज़रा दुरुस्त थे, इस गड़बड़ी को देखकर सभा बरख़ास्त कर दी। और लोग तो उठकर चलने की तैयारी करने लगे, किन्तु दोनों पञ्जाबी एजेण्ट वहीं डटे रहे।

मुन्शी ललितकिशोर को यह बात बुरी लगी। अपना जूता पहनते वक़्त उन्होंने जूते को इस तरह उठाया कि देखने वालों को बोध हुआ, वे पञ्जाबी एजेण्टों को जूता बता रहे हैं। पञ्जाबी एजेन्ट इस मज़ाक़ से तिलमिला उठे। उनमें से एक व्यक्ति फ़ुर्ती से झपटा, मानो वह मुन्शी जी को मारने के लिए दौड़ रहा हो, लेकिन उनके पास आकर वह खड़ा हो गया।

मुन्शी जवाहरलाल का निर्बल शरीर इस उत्तेजना को सहन न कर सका और उनका मख़मली जूता अचानक एजेण्ट के सिर पर जा चिपका। फिर क्या था? मज़ाक़ महाभारत के रूप में परिणत हो गया। एजेन्ट ने मुन्शी जवाहरलाल को एक धक्के में ज़मीन दिखलाई। हल्ला मचा। जो लोग कुछ दूर चले गए थे, वे भी लौट पड़े। सब लोग मिलकर पञ्जाबियों को पीटने लगे। एजेन्ट भी कम न थे, दोनों ओर से लात-घूँसे और जूते चले। बेचारे दोनों एजेन्ट यद्यपि बली थे, पर संख्या के सामने उन्हें दबना पड़ा। वे लोग बुरी तरह पिटे।

सब लोग तो घर चले गए, लेकिन ठाकुर अनूपसिंह और करीमख़ाँ आधे रास्ते से खिसककर फिर बाई जी की सेवा में उपस्थित हो गए। सरला भोजन के लिए उठ रही थी, लेकिन रुक गई।

इधर दोनों एजेन्टों को अपनी हार बहुत अखरी। कुछ देर तक आपस में सलाह करने के बाद दोनों ने शराबख़ाने का रास्ता पकड़ा। यद्यपि रात बहुत अधिक बीत गई थी और क़ानूनन् शराब की बिक्री उस समय न हो सकती थी, किन्तु लाला पूरनमल की दूकान में किसी भी समय शराब मिल सकती थी। वे आबकारी-विभाग के अफ़सरों को सदैव ख़ुश रखते थे और मज़े में अपना रोज़गार चलाते थे। उनका एक नौकर रात को भी दूकान पर ही सोता था और

ज़रूरत वालों को पीछे के रास्ते से निकालकर शराब दे देता था। केवल बाहर का दरवाज़ा नियमानुसार रात को नौ बजे बन्द हो जाता।

वहीं जाकर दोनों एजेण्टों ने ख़ूब शराब चढ़ाई। डेरे पर वापस आकर दिमाग़ में गरमी लाने के लिए कसरत की और लँगोट चढ़ा तथा हाथ में एक छुरा ले, सरला के डेरे पर पहुँच गए। सरला के डेरे पर अभी तक ठाकुर अनूपसिंह और करीमख़ाँ बैठे हुए थे। दरवाज़े पर पहुँचकर दोनों को पञ्जाबियों ने ललकारा। भीमकाय राक्षसों का रूप देख-कर ठाकुर साहब तथा ख़ाँ साहब के देवता कूच कर गए। वे भागने का रास्ता खोजने लगे। पञ्जाबियों ने गाली बकना और ललकारना जारी रक्खा।

ठाकुर साहब तो कमरे की खिड़की से कूदकर पुलिस-स्टेशन के अहाते में दाख़िल हो गए, लेकिन बेचारे करीम-ख़ाँ की बड़ी दुर्गति हुई। उनका स्थूल शरीर खिड़की से निकल जाने के क़ाबिल न था। कोई उपाय न देखकर सामने के ही मार्ग से उन्होंने भागने का निश्चय किया; लेकिन वे पकड़ लिए गए। उन पर ख़ूब लात-जूते पड़े। एजेन्ट नशे में झूम रहे थे, उनके होश-हवास दुरुस्त न थे इसलिए मार खाते-खाते एक बार मौक़ा देखकर ख़ाँ साहब भाग निकले। बाहर निकलते ही उनकी मुलाक़ात ठाकुर साहब से हुई। वे अपने मित्र, मौलाना साहब, सिटी इन्स्पेक्टर

तथा दो सिपाहियों को लेकर घटनास्थल की ओर आ रहे थे।

इधर पञ्जाबी सरला की ओर बढ़े। वह पहले से ही इस गोलमाल को देखकर काँप रही थी। उनमें से एक ने सरला को धक्का देकर गिरा दिया। इतने ही में मौलाना साहब दल-बल सहित पहुँच गए। सिपाहियों को देखकर पञ्जाबियों का नशा उतरने लगा। वे सरला को छोड़कर अलग खड़े होगए और ठाकुर साहब के हाथ-पैर जोड़ने लगे। सरला के यहाँ कभी न आने का वादा लेकर ठाकुर साहब ने उन्हें छोड़ दिया। किसी तरह क़ानूनी कार्रवाई करने से दोस्तों की बदनामी होती, इसलिए मौलाना साहब चुप रह गए।

यद्यपि क़ानूनी कार्रवाई न हुई, पर लोग इस घटना से कुछ भयभीत होगए। इसके अलावा आपस में वैमनस्य के और भी कई कारण उपस्थित हो गए। बाबू रामलाल दुबे के किसी एक साथी ने मुन्शी जी के मार खाने की बात बाहर आकर कह दी। सवेरा होते-होते तमाम लोगों में यह बात फैल गई। मुन्शी-दल इस विश्वासघात से बहुत कुपित हुआ।

प्रत्येक समाज में नियम रहते हैं। वेश्या-भक्त-समाज में भी कई प्रकार के नियम प्रचलित हैं। इनका एक नियम यह भी है कि वेश्या के यहाँ की किसी भी घटना, बेइज़्ज़ती या बेहूदगी का ज़िक्र बाहर आकर न किया जाय।

बाबू रामलाल के दल ने इस नियम का भङ्ग किया, इसलिए मुन्शी-कम्पनी ने यह निश्चय किया कि हम लोगों की तौहीन तो हो ही चुकी, अब रामलाल-दल के प्रत्येक व्यक्ति को सरे-महफ़िल जूते से पीटा जाय, बिना जूते खाया हुआ एक भी व्यक्ति इस दल में न रहने पाए। देखें, तब कौन किसका मज़ाक़ उड़ाता है? जब सभी की नाक कट जायगी, तब कौन उँगली उठाएगा?

दूसरे दिन मुन्शी जी की तरफ़ से एक आदमी सरला के पास भेजा गया, और मनमानी फ़ीस देकर इस बात पर उसे राज़ी कर लिया कि पन्द्रह दिन तक वह आकर ठाकुर अनूपसिंह के यहाँ ही रहे और शाम को वहीं उसका मुजरा भी हो। तदनुसार सरला पन्द्रह दिन के लिए आकर ठाकुर साहब के यहाँ रहने के लिए राज़ी हो गई। शायद वह वैसा करने के लिए राज़ी न होती, किन्तु पञ्जाबियों का डर उसे बुरी तरह सता रहा था।

शाम को मुजरा शुरू हुआ। सभी लोग उपस्थित हुए। यद्यपि रामलाल दुबे को मुन्शी-दल की यह विजय अखरी, लेकिन वह अपने लालच को रोक न सके—वह भी आकर शामिल हो गए।

मुन्शी-दल तो यही चाहता था। शीघ्र ही किसी बात का बहाना निकालकर बदलू कहार ने दुबे जी से झगड़ा शुरू कर दिया और उनको दो जूते जमा दिए। दोनों दलों में

कहा-सुनी हुई, लेकिन दुबे-दल के आदमी बहुत कम थे, इसलिए अधिक झगड़ा बढ़ाने या मारपीट करने की उनकी हिम्मत न पड़ी।

इस गड़बड़ी में आज फिर गाना बन्द कर दिया गया और दो-तीन दिन तक गाना बन्द रहा, लेकिन इससे ठाकुर साहब को बड़ा लाभ हुआ। उन्हें सरला बाई के एकान्त सहवास और सेवा-शुश्रूषा का अच्छा अवसर मिला।

ठाकुर साहब की पत्नी सुशीला देवी बड़ी सीधी-सादी स्त्री थीं और पति को देवता मानती थीं; किन्तु विवाह के साल-दो साल बाद ही उन्हें अपनी इस धारणा को क़ायम रखना कठिन जान पड़ने लगा। ठाकुर साहब के अत्याचार और उदासीनता से वे ऊब गईं। उन्हें अपना निरानन्द ज़ीवन भार जान पड़ने लगा।

पतिदेवता इस वैवाहिक जीवन के बीच, यदि दो-चार भी सप्ताह उनके साथ देवोचित व्यवहार न सही, मनुष्योचित व्यवहार भी किए होते तो भी वे अपने को भाग्यशाली समझकर इसी सुखमय स्मृति के सहारे अपने को धन्य मानतीं, किन्तु ठाकुर साहब ने तो देवी जी के श्वसुर-गृह-प्रवेश के चौथे दिन से ही उनकी उपेक्षा प्रारम्भ कर दी थी। चौथे दिन से ही ठाकुर साहब की रातें बाहर बीतने लगीं। दिन को भी वे प्रायः बाहर ही रहा करते; भोजनादि के लिए आते भी तो उससे फ़ारिग़ होकर एक घुड़सवार की तरह द्रुत-गति से ग़ायब हो जाते।

प्रेम की बातें तो अलग रहीं, गृहस्थी के सम्बन्ध में भी पति-पत्नी में बहुत कम बातें होतीं। साल में केवल दो-एक दिन ही—वह भी जब पतिदेव बीमार पड़ जाते, देवी जी को पतिदेव से वार्तालाप करने या उनकी सेवा करने का सौभाग्य मिलता था; किन्तु इन दिनों इस सेवा के बदले पुरस्कार-स्वरूप लात-घूँसे भी यथेष्ट मिल जाया करते थे।

यदि ऐसी दशा में सुशीला का दिल पतिदेव की ओर से विरक्त हो गया, तो आश्चर्य की क्या बात? फिर भी वे मन मारकर ज़बरदस्ती अपने को घर-गृहस्थी के कामों में लगाए रहती थीं।

किन्तु सरलाबाई के आ जाने के समय से घर में विकट दशा उपस्थित हुई। सरलाबाई तथा उसके प्रेमियों की जब दासी की तरह आवभगत करनी पड़ी, और सरला के सामने ही जब पतिदेवता के हाथों, साधारण असावधानी, शिथिलता आदि अक्षम्य अपराधों के लिए लात-घूँसे खाने पड़े, तब उनका धैर्य छूट गया।

दो-चार दिन यह अत्याचार सहने के बाद एक दिन शाम को उन्होंने अफ़ीम का एक बड़ा-सा गोला मुँह में रक्खा और चुपचाप जाकर अपने कमरे में लेट रहीं। किन्तु ठाकुर साहब उन्हें अधिक देर तक कैसे सोने देते। शीघ्र ही उनकी सेवा की आवश्यकता पड़ी। दो-चार बार पुकारने पर भी जब देवी जी ने उत्तर न दिया, तब सरलाबाई को

छोड़कर ठाकुर साहब प्रबल वेग से देवी जी की असावधानी का दण्ड देने के लिए प्रधावित हुए।

देवी जी के कमरे में पहुँचते ही उन्होंने पाद-प्रहार किया, लेकिन देवी जी पर इसका कुछ भी असर न पड़ा। ठाकुर साहब बुरी तरह से उत्तेजित हो उठे। उन्होंने गरजकर कहा—देखूँ, इस तरह चुपचाप यह कितनी मार सह सकती है !

किन्तु जब कई लातों के पड़ने पर भी वह न हिली, तब तो ठाकुर साहब बहुत चकराए। कपड़ा सरकाकर देखा तो उसकी चेष्टा बहुत ही ख़राब मालूम पड़ी, चेहरा बिलकुल ही विकृत हो रहा था। बाबू साहब की अक़्ल बेकाम होगई। डॉक्टर को सूचना देने की हिम्मत न होती थी, लेकिन लाचार होकर उन्होंने एक प्राइवेट प्रैकटिश्नर को सूचना दी। मौलाना साहब को भी ख़त लिखकर बुलवा लिया।

डॉक्टर साहब बड़े भले आदमी थे, मौलाना साहब भी बड़े शरीफ़ थे। डॉक्टर साहब के परिश्रम से सुशीला देवी चङ्गी हो गईं और मौलाना साहब के कारण मामला भी दब गया, लेकिन मौलाना साहब ने ठाकुर साहब की कड़ी भर्त्सना की और सरला को वहाँ से अलग किया।
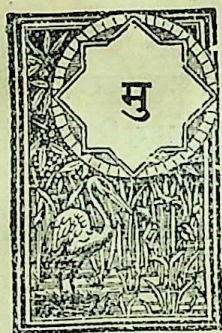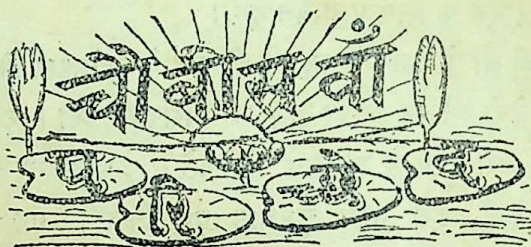
रलीधर को बहुत ऊँची शिक्षा न मिली थी, किन्तु उनके विचार परिमार्जित थे तथा कर्त्तव्य-ज्ञान ऊँचा था। नगर के नेता उनको उपेक्षा की दृष्टि से देखते और जनता भी उन्हें विशेष आदर का पात्र न समझती, लेकिन उन्हें इन बातों की चिन्ता न थी। वे अपनी धुन के पक्के थे। किसी न किसी परमार्थ के काम में लगे रहना वे अपना फ़र्ज़ समझते थे। निश्चेष्ट होकर बैठना उनके लिए पाप था। राजनीतिक आन्दोलन शिथिल पड़ गया, इसकी बिना चिन्ता किए ही वे झट किसी दूसरे लोक-हितकर काम में लग जाते। किसी ग़रीब व्यक्ति के लिए कपड़े बनवाकर शीत से उसकी रक्षा करने तथा होमरूल-फ़ण्ड के लिए धन एकत्र करने को वे क़रीब-क़रीब बराबर ही समझते थे। लोक-निन्दा या स्तुति

की भी वे विशेष चिन्ता न करते थे। चाहे कोई भला कहे या बुरा, जिस काम को वे हितकर समझते, उससे वे कभी न हटते। सदैव राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक—सभी कामों में वे समान उत्साह से भाग लेते थे। उनके विचार गरम या उग्र थे। धीरे-धीरे काम करना उन्हें स्वीकार न था। सुस्ती से काम करना उन्होंने सीखा ही न था। जो काम आज शुरू किया गया, उसे वे कल ही ख़तम कर डालना चाहते थे। लोग उन्हें सनकी समझते और उनकी बात पर ज़रा भी ध्यान न देते, किन्तु उनके बिना लोगों का काम भी न चलता; मौक़ा पड़ने पर लोग उन्हीं के सामने सहायता के लिए हाथ फैलाते। कठिन परिश्रम के समय, दोपहर की धूप में दौड़ने के लिए उनकी उपेक्षा करने वाले नेता भी उनकी याद करते थे।

मुरलीधर ने सरला को केवल एक दिन क्षणभर के लिए देखा था, लेकिन सरला का नाम उनके सामने कई बार आया था; इसलिए वह उसे भूल न सके थे। सन्धि-समारोह में उसे देखते ही उन्होंने पहचान लिया। उसे वेश्या के रूप में देखकर उन्हें मर्मान्तक कष्ट हुआ। उन्होंने वहीं निश्चय किया कि वे सरला से मिलकर उसे उस पाप-पङ्क से निकालने का प्रयत्न करेंगे।

उन्होंने इस सम्बन्ध में रमानाथ से सलाह करना ही उचित समझा और दूसरे ही दिन रमानाथ से मिले। रमा-

नाथ ने कई कारण बतलाते हुए सरला के पास जाना अस्वीकार किया, लेकिन मुरलीधर जाकर उससे अवश्य मिले। इस बात पर उन्होंने भी ज़ोर दिया और अपनी ओर से अनुरोध भी किया। सरला के पतन पर रमानाथ को भारी पश्चात्ताप हुआ, और वे जहाँ तक सम्भव हो, मदद देकर सरला का उद्धार करना चाहते थे।

मुरलीधर प्रायः प्रत्येक विचार को कार्य-रूप में लाने में अधिक बिलम्ब न करते थे; किन्तु सरला से मिलने के विचार को वे इस प्रकार शीघ्र कार्य में परिणत न कर सके। आज तक वे किसी भी वेश्या के यहाँ कभी गए न थे, इस-लिए सरला के पास जाने में उन्हें एक प्रकार की झिझक-सी मालूम होती थी। अपनी इस निर्बलता को उन्होंने बड़ी दिक़्क़त से दूर किया और हिम्मत कर एक दिन वे उसके यहाँ पहुँच ही गए।

दोपहर का समय था, सरला भोजन कर सोने जा रही थी। मुरलीधर को देखकर चौंक पड़ी। उन्हें वह अच्छी तरह जानती थी। झिझककर उसने पूछा—महाशय, आप इस अयोग्य स्थान में कैसे आ पड़े? बैठिए।

पास की एक कुर्सी पर बैठते हुए मुरलीधर ने कहा—आपसे मुलाक़ात करने की ग़रज़ से ही आया हूँ।

सरला—मुझसे मुलाक़ात करने की आपको कौन-सी

आवश्यकता पड़ गई, जिससे आप ऐसे अशुद्ध वातावरण में आने के लिए बाध्य हुए ? क्या यहाँ की वायु आपको शीघ्र पतित न कर देगी ?

मुरली—नहीं सरला, तुम्हारा ख़याल ग़लत है। अपवित्र वातावरण से, वेश्याओं से जो व्यक्ति घृणा करता है, जो उनके समीप जाने से अपनी मान-हानि समझता है, वह वास्तव में धार्मिक या पवित्र नहीं, बल्कि दाम्भिक है। वेश्याओं से घृणा नहीं करनी चाहिए, उनकी दशा दयनीय है; किन्तु तुमने यह क्या किया ? क्या जीवन-निर्वाह का तुम्हें और कोई मार्ग न मिला ? तुमने हिन्दुओं का सिर नीचा कर दिया—हिन्दू-महिलाओं के प्राचीन महत् आदर्श पर चौका लगा दिया !

सरला—श्रीमान्, आपकी हिन्दू-जाति ने ही मेरे साथ कौन-सा अच्छा सुलूक किया है, जो मैं उसका ख़याल रक्खूँ ? हिन्दू-जाति निर्दयी है—अन्यायी है। वह न्याय नहीं करती, न्याय की हत्या करती है। बीती बातों की याद न दिलाइए महाशय ! मैं पूछती हूँ, मैंने क्या अपराध किया था, जिसके लिए आपके पवित्र हिन्दू-समाज ने मुझे दण्डित किया ? यदि कोई व्यक्ति किसी को एक थप्पड़ लगा दे, तो क्या इसके लिए आप मार खाने वाले को ही दण्ड देंगे ? आपके हिन्दू-समाज का यही तो न्याय है। आपका समाज पुरुष-स्त्री के बीच इसी प्रकार का न्याय करता है। पुरुष कई विवाह कर

सकता है ; नहीं, वह स्वेच्छापूर्वक व्यभिचार भी कर सकता है ; विवाहिता स्त्री पर मनमाना अत्याचार तक कर सकता है। उसके लिए न कोई नियम है न दण्ड ! इसके विपरीत पुरुष के अपराध के लिए दण्ड भोगना पड़ता है स्त्री को। वाह रे न्याय ! ऐसे अन्यायी का सिर नीचा करना तो मैं अपना फ़र्ज़ समझती हूँ।

मुरली—सरला, तुम्हारा कथन सर्वथा ठीक है। हिन्दू-समाज की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, वह सठिया गया है। इस सङ्गठन के सारे कल-पुर्ज़े जङ्ग खाकर अकड़ गए हैं, निर्जीव हो गए हैं। जीवन का प्रधान लक्षण गति है। हमारे समाज में गति नहीं रह गई है। इसमें सुधार होना असम्भव है। जब तक इस यन्त्र को तोड़-मोड़कर इसके कल-पुर्ज़ों को गलाकर नए शरीर की रचना न की जायगी, तब तक यह जाति नहीं उठेगी। प्रतिक्रिया के फल-स्वरूप सड़-गलकर कुछ दिनों में विलीन हो जायगी। किन्तु सड़-गल जाने पर भी जिस प्रकार मनुष्य अपने शरीर को नोचकर कुत्तों को नहीं खिला सकता, उसी तरह हमें भी अपने इस डूबते हुए समाज को धक्के देकर अतल-तल में पहुँचाने का प्रयत्न न कर, उसके जीर्णोद्धार का प्रबन्ध करना चाहिए। तुम हिन्दू-समाज से रुष्ट हो, और यह है भी स्वाभाविक; किन्तु किसी पर नाराज़गी जताने के लिए कोई अपनी नाक नहीं काट डालता।

दुश्मन की एक आँख फोड़ने के लिए अपनी दोनों आँखें

खो देने की नीति ठीक नहीं। तुम अपनी समझ में हिन्दू-जाति से बदला ले रही हो, किन्तु इसकी साधना में तुम्हें क्या देना पड़ा है, इसका तुम्हें ध्यान नहीं है। तुम खुद कितने नीचे गिर गई हो, इसका तुम्हें पता नहीं है। तुमसे मिलना या बात करना भी कोई भलामानस स्वीकार न करेगा।

सरला ने उत्तेजित भाव से उत्तर दिया—ऐसे भले आदमी तो मुझे आप और रमानाथ दो ही नज़र आते हैं। मेरे यहाँ तो रोज़ ही सेठ, राजे, रईस, पण्डित और मुझे समाज से बाहर करने वाले समाज-पति पण्डित दीनदयालु आदि भले आदमी आते हैं और मेरी चरण-रज लेकर अपने को कृतार्थ करते हैं। ठाकुरद्वारों तक में मेरा प्रवेश है। गणेशोत्सव, जन्माष्टमी, रामलीला आदि धार्मिक अनुष्ठान एवं उत्सवों तक में मेरी बुलाहट होती है, और मन्दिरों में जिस समय मैं गाना शुरू करती हूँ, उस समय पुजारियों एवं भक्तों की मुद्रा देखकर तो यही बोध होता है कि स्वयं ठाकुर जी मुझे देखकर कृतार्थ हो गए तथा मन्दिर भी मेरे आगमन से धन्य हो गया। आपके नगर में आए मुझे अधिक दिन नहीं हुए, लेकिन मेरे यहाँ प्रतिष्ठित नगर निवासियों की भीड़ लगी रहती है। मेरी एक मुस्कान और एक कटाक्ष के लिए लोग आतुर रहते हैं। तब आपकी इस बात का, कि मेरे पास आने में लोग अपनी तौहीन समझते हैं,

क्या मूल्य है ? आप सरीखे दो-चार भलेमानसों की ओर देखूँ या दुनिया की ओर। आपके सम्मानित नेतागण तक तो छिपे-छिपे मेरी उम्मीदवारी करते हैं।

मुरलीधर निरुत्तर से हो गए। सरला फिर कहने लगी—महाशय, आप समझते होंगे कि मैं भोग-विलास की लालसा से इस पाप-कार्य में लिप्त हुई हूँ, किन्तु बात ऐसी नहीं है। मैं इतनी नादान नहीं हूँ, लेकिन करती क्या ? मैं विवश थी। समाज और पुरुष-जाति की पाशविक काम-लालसा ने जबरन् मुझे इस दशा पर पहुँचाया है। इसके सिवाय मेरे सामने कोई मार्ग न था, किसी व्यक्ति के तीन तरफ़ आग लगाकर चौथी तरफ़ खाई खोद दीजिए और उस खाई के मुँह पर घास-फूस बिछाकर फूलों की सुन्दर शय्या लगा दीजिए, प्राण जाने के भय से यदि वह व्यक्ति इस फूल-शय्या पर जाकर खाई में गिर पड़े, तो इसमें उसका क्या दोष ? हिन्दू-विधवाओं की भी ठीक यही दशा होती है। धैर्य से मेरी कहानी सुनिए—"आततायियों ने मुझ पर अत्याचार किया, इसमें मेरा क्या दोष ? लेकिन आपके समाज ने मुझे ही दण्डित करके निकाल दिया। घर से निकलने पर भी मैं सदैव व्यभिचार के प्रति घृणा करती रही। मैंने परिश्रम से जीवन-निर्वाह करना चाहा, लेकिन दुष्टों ने मेरा पीछा न छोड़ा। आप ही सरीखे भोले-भाले दीखने वाले मूँछ-दाढ़ीयुक्त जन्तुओं ने नाना प्रकार के

प्रलोभन, छल-कपट द्वारा जाल बिछाकर, यन्त्रणा देकर मुझे अनुचित सम्भोग-चेष्टा में रत किया। मुझे अच्छी तरह याद है, मैंने स्वप्न में भी कभी किसी पुरुष से कोई अनुचित प्रस्ताव नहीं किया। भूखों मरी, नदी में डूबकर आत्म-हत्या करने का प्रयत्न किया, लेकिन मुझे छुटकारा न मिला।

"मैंने विचार कर देखा, जब किसी प्रकार पुरुषों के चङ्गुल से बचकर नहीं रह सकती, तब लाचार होकर मैंने यह पेशा अख्तियार किया। छिपे-छिपे अपनी इज़्ज़त बेचने और पुरुषों की दासी बने रहने की अपेक्षा मैंने यही बेहतर समझा कि खुले-तौर पर अपने रूप-यौवन का रोज़गार करूँ—दासी बनकर नहीं, रानी बनकर। आप ही बताइए, मैंने क्या अनुचित किया? और मैं कर ही क्या सकती थी? आज भी मैं इस गर्हित वेश्या-जीवन का त्याग करने के लिए तैयार हूँ, लेकिन इसे छोड़कर मैं क्या काम करूँ? आप-सरीखे कोई देश-भक्त या समाज-सेवक मुझे प्रकाश्य रूप से अपनी स्त्री कहकर स्वीकार करने के लिए तैयार है क्या?"

मुरलीधर ने दबी ज़बान से कहा—इतना साहस तो बहुत कम लोगों में होगा।

सरला ने सरोष उत्तर दिया—क्यों, इसीलिए न कि मैं कई लोगों की सम्भोग-सामग्री रह चुकी हूँ, किन्तु क्या व्यभिचारी पुरुषों की शादी नहीं होती? उनके लिए आपके समाज में ऐसा नियम क्यों नहीं है कि किसी भी व्यभिचारी

पुरुष की शादी किसी स्त्री से न हो, और यदि कोई स्त्री ऐसे पुरुष से शादी कर ले, तो वे दोनों जाति-च्युत कर दिए जायँ। जब मुझसे शादी करने के लिए कोई तैयार नहीं है, तब आप ही बताइए, मेरे लिए शान्ति से जीवन बिताने का क्या उपाय है, जहाँ मुझे भलेमानस गुण्डों की छेड़खानी न सहनी पड़े ?

मुरलीधर—तुम्हें यहाँ क्या शान्ति मिलती है सरला ? शान्ति सन्तोष से मिलती है। किन्तु मैं तो तुम्हारी प्रत्येक बात में देखता हूँ—अशान्ति, ईर्ष्या, द्वेष आदि का विकट चीत्कार।

सरला—महाशय, आप जो बात कह रहे हैं, उसे दार्शनिक दृष्टि से सन्तोष भी कह सकते हैं, किन्तु क्या इसे कायरता नहीं कह सकते ? किसी की लात खाकर चुप रह जाने वाले भिक्षुक को आप दार्शनिक सन्तोषी कहेंगे या स्वाभिमान-शून्य कायर ?

मुरली—सरला, बात उड़ाने की कोशिश मत करो। यह ठीक है कि तुम्हारे भिक्षुक को कायर कहना चाहिए, लेकिन ऐरे-ग़ैरे सभी को आत्म-समर्पण करने वाली तुम्हारी वेश्या को क्या स्वाभिमानिनी कहेंगे ?

सरला—वेश्या को स्वाभिमानिनी नहीं कह सकते, लेकिन दासी-रूप में छिपे-छिपे अपनी इज़्ज़त बेचने वाली से वेश्या को अधिक सन्तोष तथा स्वाभिमान करने की जगह है। लेकिन इस बहस से लाभ क्या ? आप मेरे लिए क्या तय करना चाहते हैं, यह तो बताइए ?

मुरली—अगर तुममें सद्बुद्धि आ जाय, तो जीवन-निर्वाह के लिए केवल एक यही पेशा नहीं है। ऐसे और कितने धन्धे हैं, जो तुम घर बैठे कर सकती हो।

सरला—आख़िर एकाध का नाम भी तो सुनूँ?

मुरली—तुम्हारे लिए मैं किसी विधवाश्रम से लिखा-पढ़ी करता हूँ। तुम वहीं जाकर रहो।

सरला—महाशय, क्षमा कीजिए। इन विधवाश्रमों की लीला मैं जानती हूँ। पहली बात तो यह है कि ये लोग मेरा इतिहास सुनकर मुझे अपने यहाँ रखने के लिए तैयार ही न होंगे। यदि हो भी गए तो वहाँ के सञ्चालकों की दृष्टि मुझपर ज़रूर गड़ेगी। ऐसी दो-चार संस्थाओं के सञ्चालकों से मेरी जान-पहचान है। भोली-भाली विधवाओं के साथ छिपे-छिपे यहाँ भारी अत्याचार होते हैं। अधिकतर उनसे रखेली का काम लिया जाता है।

मुरली—तब तो इस छोटे से नगर में तुम्हारे लिए किसी तरह का प्रबन्ध करना कठिन है। फिर भी मुझे कुछ समय दो, मैं तुम्हारे विषय में सोचूँगा और दो-एक लोगों से सलाह करूँगा।

सरला—मिहरबानी है।

मुरलीधर चले गए।

ण्डित बिहारीलाल को पाठक भूले न होंगे। सरला के प्रति वे सर्वथा उदासीन न थे, किन्तु जब सरला को समाज-च्युत करने का प्रस्ताव उनके सामने आया, तब इस आशङ्का से कि कहीं सरला के प्रति सहानुभूति दिखलाने से वे भी जाति से अलग न कर दिए जायँ, वे सरला को घर से निकाल वाहर करने के लिए तैयार हो गए।

समाज से अलग होने पर पं० बिहारीलाल की विशेष हानि न थी। सरला को लेकर वे आनन्द से जीवन व्यतीत कर सकते थे। न तो उन्हें ही कोई सन्तान थी और न सरला को। तब वे किसलिए समाज से डरते; किन्तु उनके सिर पर विवाह करने की धुन सवार थी। भावी पत्नी-सुख की आशा में सरला के प्रति उनका जो स्नेह एवं कर्त्तव्य था, उसे वह भूल गए।

किन्तु सरला के निकल जाने पर भी उनकी आशा फलित न हुई। तत्सम्बन्धी समाचार फैल जाने से पण्डित जी को लोग हेय समझने लगे। आसपास के लोग पण्डित जी को अपनी कन्या देने में सङ्कोच करने लगे। हिन्दुस्तानी लोग कुल-मर्यादा के बड़े क़ायल होते हैं। और चाहे कुछ हो जाय, धर्म तक वे दे देंगे, लेकिन कुल-मर्यादा की रक्षा करेंगे। यही कारण था कि पण्डित जी के परिश्रम का कोई फल न निकला।

इधर सरला के चले जाने से पण्डित जी को भोजन का बहुत कष्ट होने लगा। उनकी माता सर्वथा असमर्थ थीं। किसी ब्राह्मणी को सेविका-रूप में रखकर वे उससे भी भोजन बनाने का काम न ले सकते थे। वे उच्च वंश के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। कभी-कभी किसी वेश्या के यहाँ जाकर वे प्रसाद ग्रहण कर सकते थे, किन्तु घर में इस प्रकार की सुविधा न हो सकती थी। फलतः दोनों शाम रसोई बनाने का भार पण्डित जी पर ही पड़ा, जो इस वृद्धावस्था में असह्य था।

लाचार होकर पण्डित जी ने देश की यात्रा की। लोगों से यह कहकर कि वे पुरी जा रहे हैं, पण्डित जी देश की तरफ़ चल पड़े। लोगों से इस प्रकार बहाना करने और उच्च-वंशीय ब्राह्मण होकर झूठ बोलने का यथेष्ट कारण था। यदि लोगों को किसी प्रकार इस बात की भनक पड़ जाती कि वे विवाह करने के उद्देश्य से देश जा रहे हैं, तो वहाँ के धार्मिक

अधिक दिनों तक परिडत जी के केलि-कुण्ड को जल प्रदान न कर सका—वह सूख गया।

परिडत जी की धर्मपत्नी—गिरिजा—केवल पन्द्रह मास वैवाहिक सुख का अनुभव कर, सदैव के लिए वैधव्य-दण्ड से दण्डित हो, जीवन बिताने के लिए बाध्य हुई। उसके प्रारब्ध में यही बदा था, इसमें किसी का क्या अपराध ?

वृद्ध की युवती-पत्नी अधिक रसिका होती है, इस कथन में बहुत-कुछ सत्यता है। परिडत बिहारीलाल की अस्वाभाविक रसिकता के फल-स्वरूप गिरिजा उनके जीवन-काल में ही निर्लज्ज बन चुकी थी। अनुचित हाव-भाव, कटाक्ष, वाचालता आदि दुर्गुण उसमें यथेष्ट मात्रा में आ गए थे। परिडत जी की मृत्यु के बाद भी उसकी इन बातों में कमी न हुई—वह दिन-बदिन बढ़ती ही गई।

स्त्री—विशेषकर परदे में रहने वाली स्त्री—का अकेले रहना कठिन है। उसे एक पुरुष की सहायता नितान्त आवश्यक होती है। परिडत जी की मृत्यु के बाद गिरिजा भी अपने किसी दूर के रिश्ते में एक देवर के साथ रहने लगी।

कुछ दिनों के बाद अचानक गिरिजा को तीर्थ-यात्रा करने की आवश्यकता पड़ी। लगभग छः मास तक वह अपने देवर के साथ तीर्थों का भ्रमण करती रही, फिर वापस आ गई। किन्तु तीर्थ आदि से श्रद्धा रखने वाली विधवाएँ जिस प्रकार सिर आदि मुड़ाकर तीर्थों से वापस होती हैं,

गिरिजा ने वैसा नहीं किया। उसकी सजधज में विशेष अन्तर नहीं आया।

पहले की तरह ही वह अब भी दाँतों में मिस्सी लगाती, पान खाती, सुगन्धित तेल का व्यवहार करती और चटक-दार पाड़ की साड़ी पहनती है। गिरिजा के तीर्थ-पर्यटन के सम्बन्ध में लोगों में कई प्रकार की अफ़वाहें फैली हुई थीं। एक पक्ष का कथन यह था कि पवित्र जगन्नाथपुरी में जाकर उसने एक कन्या प्रसव किया। उसे किसी मिशन अनाथा-लय के सुपुर्द कर वह वापस आ गई। बात कहाँ तक सच है, नहीं कहा जा सकता—इसका पता लगाना ज़रा कठिन है।

सी गृहस्थ के पारिवारिक भेदों को प्रकट करना यद्यपि अनुचित है, किन्तु परिडत बिहारीलाल की धर्मपत्नी गिरिजा के सम्बन्ध में हम इस नियम का पालन नहीं कर सकते। प्रत्येक नियम में अपवाद होता है, इसी तरह उपन्यास-लेखक के लिए यह नियम लागू नहीं होता। ऐसा करने से हमारा यह उपन्यास अधूरा रह जायगा और अपने उपन्यास के एक महान् आवश्यक अङ्ग पर हम प्रकाश डालने में असमर्थ हो जायँगे।

लोग कहते हैं, शराब ख़राब चीज़ है, उससे हानि होती है; लेकिन बात ऐसी नहीं है। शराब का नाम है दारु, जिसका अर्थ होता है औषधि—औषधि से हानि? लेकिन यह असम्भव नहीं है। प्रत्येक चीज़ विश्व के कल्याण के

लिए निर्मित हुई है । कोई चीज़ स्वतः ख़राब नहीं होती। मनुष्य उसका दुरुपयोग करता है, इसी से उससे हानि होती है। अन्न मनुष्य-जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक एवं कल्याणकारी है, किन्तु अधिक खा लेने से वही प्राणदा अन्न विष उत्पन्न करता है और मनुष्य की मृत्यु का कारण बनता है।

गिरिजा इसी अतिक्रम के कारण बिगड़ी थी। पण्डित ज़ी की मृत्यु के बाद जब वह अपने देवर की संरक्षकता में आई, उस समय दोनों का इरादा ऐसा नहीं था। देवर महाशय बड़े शुद्ध आचरण के विचारशील मनुष्य थे। अपनी भावज की अल्पावस्था देखकर उसके वैधव्य पर उन्हें बड़ा क्षोभ होता था । वे हर प्रकार से उसे सन्तुष्ट एवं प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया करते थे। अकेले उसकी तबीयत न उचटे, इस हेतु दिन में दो-एक बार वहाँ जाकर वार्तालाप द्वारा उसकी तबीयत बहला आया करते थे।

धीरे-धीरे उनका यह क्रम बढ़ने लगा। बिना गिरिजा के पास गए, बिना उससे बातचीत किए उनका जी न मानता। अपनी इस कमज़ोरी पर उनका ध्यान न गया हो, यह बात न थी। वे यह भली-भाँति जानते थे कि सुन्दर युवती के समीप एकान्त में बैठकर वार्तालाप करना अनुचित है, किन्तु अपने मन को रोक सकने में वे असमर्थ थे।

अपने मन को वे यह कहकर समझाने लगे कि जब

उन्होंने गिरिजा की देख-रेख का भार अपने ऊपर ले लिया है, तब उसके पास जाना, उसे सन्तुष्ट रखना उनका कर्त्तव्य है। ऐसी दशा में वहाँ न जाने से काम कैसे चलेगा ? अपने मन को ही वे शान्त करेंगे। मन यद्यपि चञ्चल है, किन्तु उन सरीखे विचारशील पुरुष से ऐसी ग़लती होना असम्भव है; मन की बात मन में ही दबी रहेगी, कार्य में परिणत न हो सकेगी। इस प्रकार मन को बोध देकर उन्होंने अपना आना-जाना जारी रक्खा।

किन्तु रुकना तो दूर रहा, मन एक क़दम और आगे बढ़ गया। पहले वे गिरिजा के सामने नीची दृष्टि करके बैठते थे, किन्तु अब उनकी आँखें बरबस ऊपर उठकर उसके हाव-भाव, हास्य, सौन्दर्य आदि का निरीक्षण करने लगीं। अपने को उन्होंने फिर समझाया, इन्द्रिय-निग्रह करने का यह अच्छा मौक़ा है। किसी पदार्थ से दूर रहकर, उसके उपभोग में रत न होना बहादुरी नहीं—लाचारी है। पदार्थ के सामीप्य में, उसके सहवास में ही मन की दृढ़ता का पता चलता है। पहले चञ्चलता का बोध तो होगा ही, किन्तु धीरे-धीरे अभ्यास करने से ऐसी दृढ़ता आएगी, जिसमें चञ्चलता के प्रवेश की ज़रा भी आशङ्का न रहेगी। फिर सौन्दर्य निरीक्षण कोई पाप नहीं। परमात्मा की सृष्टि देखने ही के लिए तो है। आख़िर आँखें क्यों दी गई हैं ? हाँ, मन अवश्य ही शुद्ध रखना होगा।

किन्तु वह रुका नहीं, एक क़दम और आगे बढ़ा। अब दोनों में हास-परिहास की मात्रा बढ़ने लगी। कभी-कभी स्पर्श तक का आनन्द लिया जाने लगा।

किसी ज्योतिषी ने श्यामाचरण को यह बता दिया था कि अट्ठाईस वर्ष की अवस्था में उनकी पत्नी की मृत्यु हो जायगी। श्यामाचरण सोचते—उस समय मैं गिरिजा से विधवा-विवाह कर इस अनुपम स्त्री-रत्न को सुखी करूँगा।

श्यामाचरण पहले विधवा-विवाह के कट्टर विरोधी थे; किन्तु गिरिजा के दुख को देखकर विधवाओं के प्रति उनके मन में दया एवं सहानुभूति का श्रोत उमड़ पड़ा। विधवाओं की दशा याद आते ही उनकी आँखों में आँसू आ जाते। उनकी समझ में विधवा होना संसार में सबसे बड़ा दुख था और विधवाओं को पति-सुख का लाभ करा देना सबसे बड़े पुण्य और समाज-हित की बात है। वे कहते—यदि शीघ्र ही विधवाओं की दशा सुधारने का प्रबन्ध न किया गया, तो उनकी आहों से भस्म होकर, उनके आँसुओं में देश और समाज बहकर विलीन हो जायगा।

एक दिन विधवाओं के सम्बन्ध में चर्चा छिड़ने पर उनके किसी दार्शनिक मित्र ने कहा—हिन्दू-समाज आज-कल बड़ा सङ्कुचित हो गया है। उसके विचार बड़े सङ्कीर्ण हो गए हैं। हिन्दुओं के पूर्वज कितने उदार थे, इसका पता लगाना हो तो उनके शास्त्रों पर गम्भीरता से विचार करो।

तुम देखोगे, उनके सामने बीसवीं शताब्दी का दाम्भिक योरोप भी पीछे है। स्त्रियों के सम्बन्ध में ही देखिए, हिन्दू-शास्त्रों में आर्यों ने क्या व्यवस्था दी है। सन्तान उत्पन्न न होने पर 'नियोग' द्वारा पर-पुरुष से सन्तान उत्पन्न करा लेने की व्यवस्था है। यदि कोई स्त्री किसी पुरुष से रति-दान माँगे तो उस पुरुष का कर्त्तव्य है कि स्त्री की इच्छा पूरी करे।

किन्तु व्यभिचार न बढ़ने पाए, इसका भी शास्त्रकारों ने ध्यान रक्खा है। किसी भी स्त्री को रतिदान देते समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि वास्तव में उसे रति की आवश्यकता है या नहीं? केवल विलास-लालसा से प्रेरित होकर तो उसने ऐसा प्रस्ताव नहीं किया है। इसके अलावा ऐसा करते समय पुरुष को भी केवल कर्त्तव्य-पालन का ध्यान रहे, विलास-सुख की कल्पना तक उसके मस्तिष्क में न आने पावे। जिस पुरुष का मन इतना स्थिर एवं शान्त हो, वही ऐसा कर्म कर सकता है।

शास्त्र की यह सम्मति पाकर श्यामाचरण बहुत प्रसन्न हुए। उनमें तथा गिरिजा में ये सभी शर्तें पूरी हो जाती थीं। अब वे गिरिजा के दुख को दूर करने एवं उसे वैधव्य-कूप के अन्धकार से बाहर कर, सुखी प्राणी की श्रेणी में ला सकने में समर्थ होंगे, यह जानकर उनका मन स्वस्थ हुआ।

परिणाम कितना भयङ्कर होगा, इसकी उन्हें कल्पना न हुई। माया मनुष्य को इसी प्रकार नाच नचाती है।

वृद्ध पण्डित बिहारीलाल के स्थान में युवक श्यामाचरण को पाकर गिरिजा बहुत प्रसन्न हुई। भोले-भाले युवक के मन की थाह उसे बहुत जल्द मिल गई, किन्तु वह पक्की शिकारी थी। शिकार के समीप जाकर खुद प्रयत्नशील होने की अपेक्षा वह शिकार को ही अपने पास बुलाने का उपाय जानती थी। वह चाहती थी कि उसे व्यर्थ ही परिश्रम भी न करना पड़े और शिकार आकर जाल में फँस जाय। हुआ भी ऐसा ही।

जिस प्रकार मधुर सङ्गीत के प्रति आकर्षित होकर मृग स्वयं जाल में आ फँसता है, उसी प्रकार श्यामाचरण गिरिजा की सौन्दर्य-तरङ्ग की सङ्गीत-लहरी से धीरे-धीरे आकर्षित होने लगे और अन्त में उनका पतन हो ही गया।

कुछ दिन तक तो गिरिजा इस पुष्प को लेकर मनमाने खेल खेलती रही, किन्तु जिस प्रकार कुछ देर तक सूँघने से पुष्प परागहीन हो जाता है और मनुष्य उसे फेंक देता है, उसी तरह श्यामाचरण से भी उसका मन भर गया। सुरसिका गिरिजा श्यामाचरण को ही लेकर अधिक दिनों तक न रह सकी। वह नए पुष्प की शोध में रहने लगी।

किन्तु यहाँ तो दोनों तरफ़ आग बराबर लगी हुई थी। किसी मुहल्ले की सुन्दरी युवती हिन्दू-विधवा आजकल अज्ञात नहीं रह सकती। यहाँ तो जिस दिन से पण्डित जी विवाह करके गिरिजा को लाए, उसी दिन से यार लोग ताक

लगाए बठे थे। उसी दिन से उसका नाम लिस्ट में चढ़ गया था। असूर्यंपश्या होने पर भी यारों को उसके रङ्ग-रूप और चाल का पता चल ही जाता है।

धीरे-धीरे अन्य कई लोगों का आना-जाना शुरू हो गया। अब श्यामाचरण गिरिजा के मार्ग में बाधक दिखाई देने लगे, अब वे साधक न रहे। लेकिन उन्हें दूर करना गिरिजा के लिए कोई कठिन बात न थी। उनका आचरण कलुषित बताकर गिरिजा ने उनका अपने यहाँ आना-ज़ाना बन्द कर दिया।

अब उसकी देख-रेख करने वाला कोई न रह गया। अब उसे संरक्षक की आवश्यकता भी न थी। वह खुलकर खेलने लगी। रामगढ़ के समस्त रसिक-वृन्द का एक-एक कर उसके यहाँ आगमन होने लगा। पण्डित रामलाल दुबे, मुन्शी ललितकिशोर, क़ासिमभाई आदि सज्जनों से उसका यथेष्ट परिचय होगया, किन्तु उसके सबसे घनिष्ट एवं प्रधान ग्राहक थे बाबू कुमुदविहारी वर्मा।

वर्मा जी के परिचय से उसे लाभ भी बहुत था। वर्मा जी का तमाम शहर में रोब था। उनसे परिचय हो ज़ाने के कारण उसकी ओर उँगली उठाने का कोई साहस न कर सकता था। वर्मा जी की क्रूरता विख्यात थी। उनके कोप-भाजन बनने का किसी को साहस न होता था। यही कारण था कि बड़े-बड़े समाजपति भी [illegible] से दबे रहते थे।

मुहल्ले वाले उसकी बात दुलखने की हिम्मत न करते थे और उसके कई उत्पातों को चुपचाप सह लेते थे।

इधर कई दिनों से उसके यहाँ यारों का जमवट न होता था। वर्मा जी भी बहुत दिनों से न आए थे। आज उसने वर्मा जी को बुलवा भेजा।

लगभग दस बजे रात को बाबू कुमुदबिहारी वर्मा ने उसके शयन-कक्ष में प्रवेश किया। साधारण शिष्टाचार की बात हो जाने के बाद गिरिजा ने पूछा—आजकल तो आपके दर्शन ही नहीं होते, आपने इतने दिनों से इस दासी को याद क्यों नहीं किया; ऐसी निठुराई किस काम की?

वर्मा जी—क्या करूँ गिरिजा, इधर जलसे के काम में बुरी तरह फँसा हुआ था। सब इन्तज़ाम मुझ पर ही था। बिलकुल फ़ुरसत न मिलती थी। उससे छुट्टी मिलने पर देखा कि तुम्हारा पड़ोसी यह लौंडा रमानाथ बुरी तरह मेरे पीछे पड़ गया है।

गिरिजा—और यह भी कहिए न कि सरलाबाई के दामन ने आपको घेर रक्खा है।

वर्मा जी—नहीं गिरिजा, यह बात नहीं है। तुमसे सच ही कहता हूँ, एकाध बार सरला से मेरी मुलाक़ात ज़रूर हुई है, लेकिन इसलिए मैं तुम्हें भूल जाऊँ, ऐसा नहीं हो सकता। बात यह है, इस जलसे में सरला को बुलाने की

बात को लेकर रमानाथ ने मेरे विरुद्ध एक आन्दोलन ही खड़ा कर दिया है। अपने पत्र में मेरे विरुद्ध बहुत सी बातें लिखकर यहाँ की जनता को उसने मेरे विरुद्ध उभाड़ा है। मुझे तो उसने साफ़ शब्दों में वेश्यागामी तक लिख डाला है। उस पर मैं मान-हानि का मुक़दमा चलाने वाला हूँ।

गिरिजा—मुक़दमा चलाना चाहो तो अवश्य चलाओ, इसमें मुझे ऐतराज़ नहीं है। बल्कि जहाँ तक होगा मैं भी मदद करूँगी। ऐसी बातों में, ख़ासकर तुम्हारे विरोधियों को बदनाम करने में मैंने तुम्हारी बहुत मदद की है और जीवन-भर करती रहूँगी; लेकिन वेश्यागामी कहकर उसने कोई झूठ बात नहीं लिखी है। यह कहकर गिरिजा मुस्कराई।

वर्मा जी—तुम्हारा कहना ठीक है, लेकिन यह बात सबको मालूम होने से मेरी मिट्टी पलीद हो जायगी। इस बात को सबके सामने लाकर उसने मेरी बेइज़्ज़ती की है। शुद्ध आचरण के आजकल कितने आदमी हैं, सभी तो ऐसे ही हैं। मुझ पर व्यक्तिगत आक्षेप करके उसने आन्दोलन तथा सार्वजनिक सेवा के काम पर भी कीचड़ फेंका है, जिसका मैं अगुआ हूँ। मेरी बदनामी से उन सभी संस्थाओं की बदनामी है, जिनका काम मेरे ज़िम्मे है। मेरी बदनामी से जाति की बदनामी है, देश की बदनामी है। मुझे बदनाम कर उसने देश का अहित किया है। ये बातें सब लोग नहीं समझ सकते।

गिरिजा—यह सब मैं नहीं जानती। तुम्हारी बदनामी से मैं भी उस पर रुष्ट हूँ। तुम अवश्य ही उस पर मुक़दमा चलाओ।

इसके बाद बहुत देर तक अन्य बातें होती रहीं, जिनके वर्णन की यहाँ आवश्यकता नहीं। लगभग एक बजे रात को वर्मा जी वहाँ से उठे।

स समय मुरलीधर सरला का समाचार लेकर रमानाथ के घर पहुँचे, उस समय रमानाथ पिछली बातों की आलोचना करने में मग्न थे। दिन के दो बजने का समय था।

रमानाथ यों तो पहले से ही अपने को सरला का अपराधी मानते थे और उसके वेश्या होने की तो पूरी ज़िम्मेदारी वे अपने सिर पर ही रखते थे। उनका विश्वास था कि पेण्डरा में जिस समय उनकी मुलाक़ात सरला से हुई थी, यदि उस समय वे सरला को अपने यहाँ प्रकाश्य भाव से आश्रय देने का वादा करते, तो वह कभी उनसे अलग होकर न जाती और इस प्रकार पतित न होती। उनका तो यह भी विश्वास था कि पेण्डरा में सरला के रहने के प्रश्न पर उन्होंने जो उदासीनता दिखाई थी,

उसी से दुखित होकर सरला ने उनके साथ आने से इन्कार किया और इसी चोट से घबड़ाकर वह वेश्या हो गई।

वे सरला के पास जाने के लिए उत्कण्ठित थे, लेकिन उसके पास जाने की उनकी हिम्मत न होती थी। वे सरला को इस प्रकार सार्वजनिक उपभोग की अवाध्य सामग्री के रूप में देख न सकते थे। इसीलिए उन्होंने ख़ुद वहाँ न जाकर मुरलीधर को भेजा था।

लौटकर मुरलीधर ने दरवाज़े पर से ही आवाज़ लगाई और धड़धड़ाते हुए कमरे में प्रवेश किया। मुरलीधर इस समय ज़रा आवेश में थे, उन्होंने खड़े ही खड़े अपना भाषण कर दिया—श्रीमान् की आज्ञानुसार सरलाबाई की सेवा में उपस्थित हुआ था, किन्तु वहाँ पहुँचकर तथा उसका ठाट देखकर तो मैं दङ्ग रह गया। वह भोली-भाली निराभरण बालिका तो अब रानियों को मात कर सकती है। वाक्-चातुरी में तो वह अद्वितीय है। उसके तर्क के सामने मुझे कई बार नीचा देखना पड़ा। वह तो भाई, अब बड़ी अनुभवी हो गई है, धारा-प्रवाह गति से बोलती और दुनियादारी में काफ़ी दख़ल रखती है। देश तथा समाज-सेवकों पर ऐसे-ऐसे कटाक्ष किए, वह पोलें खोलीं कि तबीयत दङ्ग रह गई। उसका तो कहना है कि अभी भी यदि कोई हिन्दू-युवक उससे विवाह करने के लिए तैयार हो, तो वह वेश्या-जीवन का त्याग कर सकती है। बोलो, है किसी समाज-सेवक में

इतनी हिम्मत ? मैं तो भाई विवाहित हूँ, नहीं तो शायद हिम्मत कर भी जाता । क्यों रमानाथ, तुम एक दिन ख़ुद क्यों न चलकर उसे समझाओ । तुम्हारी बातों को वह अधिक महत्व देगी ।

रमानाथ—मेरे जाने से भी कुछ लाभ न होगा और मैं वहाँ जा भी न सकूँगा । आजकल उसके मन की जो दशा है, उसका अनुमान कर यह भी कहा जा सकता है कि मेरे जाने से उसके ज़िद पकड़ लेने की ही अधिक सम्भावना है । तुम जाकर जो कुछ भी भलाई कर आए हो, वह भी मेरे जाने से नष्ट हो सकती है ।

मुरलीधर—हाँ भाई, तुम वहाँ क्यों जाओगे । सम्भव है, बदनामी हो जाय, और तुम सरीखे ऊँचे विचार वाले दार्शनिकों के लिए ऐसे अशुद्ध वातावरण में जाना भी तो ठीक नहीं है !

रमानाथ—नहीं मुरली, बात ऐसी नहीं है । तुम ताने न दो । मुझमें इतनी हिम्मत नहीं है कि मैं अपनी शिथिलता के इस भयङ्कर परिणाम को जाकर अपनी आँखों से देख सकूँ । और वहाँ जाने से लाभ भी तो नहीं दीखता । कोई सच्चरित्र हिन्दू चाहे वह सनातनी हो, आर्य-समाजी हो या ब्राह्मण हो, एक वेश्या से विवाह करना स्वीकार न करेगा । सरला की शर्त पूरी करना कठिन है ।

मुरलीधर—तब आप यहीं बैठे-बैठे अपने सिद्धान्तों के

आधार पर निर्णय कर डालिए, यहाँ से सरकिए नहीं। तुम एकदम अकर्मण्य मनुष्य हो।

रमानाथ—तुम्हारे जल्दी करने से भी तो कुछ लाभ नहीं है। सामाजिक या सार्वदेशीय प्रश्न पर व्यक्तिगत दृष्टि से विचार करना ठीक नहीं होता। तुम्हारे सामने इस समय एक सरला है। तुम इस बात को भूले जा रहे हो कि देश में इसी समय हज़ारों-लाखों सरला मौजूद हैं। एक के उद्धार से, विवाह कर देने से समाज का प्रश्न हल नहीं होता। रोज़ तुम न जाने कितने लोगों को भीख देते हो, फिर भी रोज़ ही भिखमङ्गों की संख्या बढ़ रही है। तुम्हारे इस प्रकार भीख देने से देश की दरिद्रता दूर नहीं हो सकती। सार्वदेशीय प्रश्नों का इस प्रकार निबटारा नहीं हो सकता, जब तक कि कोई वृहत् उपचार न किया जाय। इसके अलावा स्त्रियों की मुक्ति विवाह ही है, यह समझना भी तो ग़लती है। पुरुषों के विवाह की चिन्ता कौन करता है? ग़ौर से सोचो, स्त्रियों की पराधीनता ही उनकी दुर्दशा का कारण है। जिस दिन पुरुषों की तरह वे भी स्वाधीन हो जायँगी, जिस दिन अपने मन से विवाह करने या न करने का, विवाहित या अविवाहित रहने का उनका अधिकार मान लिया जायगा, उसी दिन उनकी दुर्दशा का अन्त हो जायगा, और यह तभी होगा, जब स्त्रियों को आर्थिक स्वतन्त्रता मिल जायगी—जब बिना पुरुष के सहारे अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति उनमें आ जायगी।

मुरलीधर—अपनी बहिन की शादी करते समय क्या आपको कभी इस बात का ख़्याल आता है कि देश में हज़ारों बालिकाएँ ग़रीबी के कारण अविवाहित हैं। दुनिया भर की चिन्ता अपने सिर पर लादकर निष्चेष्ट बैठे रहने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि आपके सामने जो कार्य आ जाय, उसे कर डालिए।

रमानाथ—फिर वही विवाह! मैं कहता हूँ, पुरुषों के विवाह की चिन्ता कौन करता है? वे स्वयं अपनी चिन्ता कर लेते हैं। दूसरों की चिन्ता का भार अपने ऊपर लेने से अच्छा यही है कि उसे स्वयं अपनी चिन्ता करने के योग्य बना दिया जाय। दूसरे के अवलम्ब पर जीवन चलाने वाले को सदैव कष्ट होता है। पराधीनता का सुख स्वाधीनता के दुख से भी गया-गुज़रा होता है।

मुरलीधर—आपकी स्कीम तो दो-चार शताब्दी में भी पूरी होगी या नहीं, इसमें भी सन्देह है। तब तक स्त्रियाँ क्या करें, उस स्कीम को लेकर चाटें या रोएँ? तब तक हमारा ही क्या कर्त्तव्य है? उस स्वर्ण-युग की राह देखते हुए आपकी तरह निष्चेष्ट बैठे रहें?

रमानाथ—बैठे रहने की क्या आवश्यकता है? आप स्त्रियों के सुषुप्त स्वाधीन भाव को जाग्रत कीजिए। स्वाधीनता मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। यदि आप किसी के मन को उठा दें; मानसिक भावों को जाग्रत कर दें; ग़रज़ यह कि

यदि किसी का मन स्वाधीन हो जाय, तो बाह्य स्वाधीनता प्राप्त करने में उसे अधिक समय न लगेगा। मन ही तो मनुष्य को सारा नाच नचाता है। स्वाधीन मन का मनुष्य कभी अधिक दिनों तक पराधीनता की बेड़ियों से जकड़ा नहीं रह सकता—मौक़ा पाते ही वह उसे तोड़ डालेगा।

मरलीधर—तो आपका यह अभिप्राय है कि हम व्याख्यान देते फिरें, कार्य कुछ न करें। और सरला को क्या उत्तर दिया जाय? उसे उसी ख़न्दक़ में सड़ने दिया जाय? और यदि तुम्हारी स्कीम के मुताबिक़ स्त्रियों को आर्थिक स्वाधीनता दे दी जाय, तो फिर पुरुषों की क्या दशा होगी? स्त्रियाँ रोज़गार करेंगी, वकालत करेंगी, सम्पादन करेंगी तो भोजन कौन बनाएगा? सन्तान का लालन-पालन कौन करेगा? पुरुष?

रमानाथ—अच्छा तो यह कहिए कि आप स्त्रियों की उसी हद तक भलाई करना चाहते हैं, जिस हद तक आपके आराम में ख़लल न पड़े। इसीलिए मैंने कहा है कि विजातीय शासक हमारी सच्ची हित-साधना नहीं कर सकता। पुरुषों के द्वारा स्त्रियों का कल्याण नहीं हो सकता। स्त्रियों का कल्याण स्त्रियों के द्वारा ही होगा। पुरुषों के लिए आपकी घबड़ाहट भी व्यर्थ है। यह तो सदा से होता चला आया है। आज जो ऊँचा है, कल नीचे गिरेगा; आज संसार में पुरुषों का प्राधान्य है तो कल स्त्रियों का होगा।

मुरलीधर—तब तुम्हारे मतानुसार एक दिन ऐसा भी आएगा, जब पुरुष रोटियाँ सेंकेंगे, बच्चे खेलाएँगे और स्त्रियाँ ऑफ़िस का काम करेंगी। क्या कोई ऐसी अवस्था नहीं है, जब स्त्री और पुरुष समान भाव से मिलकर रहें?

रमानाथ—ऐसा आएगा कि आगया! आज भी तुम्हें ऐसी स्त्रियाँ मिल सकती हैं, जो ऑफ़िस का काम करती हैं, और ऐसे पुरुष भी तुम देख सकते हो, जो रोटियाँ पकाते तथा बच्चे खेलाते हैं; यद्यपि उनकी संख्या अभी नहीं के बराबर है। साम्यावस्था सृष्टि के नियमों के विपरीत है। साम्यावस्था का अर्थ है प्रलय। ऊँच-नीच, प्रकाश-अन्धकार, हार-जीत, जीवन-मरण—इन्हीं दो विरोधी तत्वों के आधार पर संसार खड़ा है। जिस दिन ये दोनों मिल जायँगे, उस दिन प्रलय उपस्थित होगा—विश्व का अस्तित्व मिट जायगा। जब तक ऐसी अवस्था नहीं घटती, तभी तक ग़नीमत समझो। जब से सृष्टि की रचना हुई, तब से साम्य-स्थापन की कोशिश हो रही है, और जब तक सृष्टि स्थित है, तब तक यह कोशिश जारी रहेगी; लेकिन यह अपनी मृत्यु को आप ही बुलाना है।

मुरलीधर—तब तो आपके मतानुसार हमें स्त्रियों के लिए कुछ करने की आवश्यकता भी नहीं है; क्योंकि यह काम तो आप ही आप हो जायगा। और जब किसी न किसी को नीचे रहना ही है, तब इसके लिए कौन प्रयत्न करे?

रमानाथ—आप कीजिए या न कीजिए, वह आप ही होगा। यह सृष्टि का क्रम है, इसमें फ़र्क़ नहीं पड़ सकता। स्त्री और पुरुष दोनों एक गोले की परिधि पर घूम रहे हैं। मान लीजिए 'अ' इस समय चोटी पर है और 'ब' सबसे नीचे के बिन्दु पर। अब अगर आप इनको ज़रा भी मदद न दें, तो भी कुछ दिनों में 'अ' 'ब' के स्थान पर और 'ब' 'अ' के स्थान पर पहुँच जायगा। यही दशा मनुष्य-जाति तथा समाज सभी की है। आप चाहे कुछ कीजिए या न कीजिए, यह संसार-चक्र चलेगा। लेकिन आप कुछ न करें, यह भी नहीं हो सकता। प्रकृति के नियमानुसार आपको भी कुछ न कुछ करना ही होगा। आज जो उन्नति के शिखर पर चढ़ा है, कल उसे अवनति के गर्त्त में गिरना होगा। अवनति तथा उन्नति भी तो एक ही सत्य के दो पहलू हैं।

मुरलीधर—यह अकर्मण्य-शास्त्र की कोरी कल्पनाएँ हैं। इसी दार्शनिक उदासीनता के कारण देश रसातल को चला जा रहा है, फिर भी लोग उसके पीछे पड़े हुए हैं। क्या बढ़िया तर्क है ?...आदि बड़बड़ाते हुए मुरलीधर चले गए।

जहाँ तक हमें पता चला है, पण्डित मनोहरलाल सरल हृदय के मनुष्य थे। यद्यपि देश के प्रति उनमें वह जोश, वह उत्साह तथा वह एकाग्रता एवं तन्मयता न थी, जिसे अङ्गरेज़ी में 'बर्निङ्ग पैट्रिओटिज़्म' (Burning Patriotism) कहते हैं, फिर भी वे जो कुछ भी कार्य करते थे, वह केवल लोक-सेवा के भाव से प्रेरित होकर ही करते थे, अन्य किसी बात के ख़याल से नहीं। नाम कमाने, लोगों से वाहवाही लूटने या किसी आन्दोलन के नेतृत्व के स्थान पर स्थापित होने की ग़रज़ से वे कोई काम न करते थे।

पण्डित जी की इस कमज़ोरी या उदात्तभाव के द्वारा सबसे अधिक लाभ बाबू कुमुदविहारी वर्मा उठाते थे।

पण्डित जी की विद्वत्ता, प्रभाव, परिश्रम आदि का जो सम्मिलित पुरस्कार होता, तथा जिसमें अधिकांश पण्डित जी के हिस्से का रहता, उसे अकेले वर्मा साहब ही हज़म कर जाते। पण्डित जी इन बातों को समझते न हों, यह बात न थी; किन्तु इस प्रकार छोटी-छोटी बातों का ज़िक्र करना पण्डित जी अपने लिए बड़ी हेय बात समझते थे।

पण्डित जी तो इस ओर कभी ध्यान न देते, लेकिन लोगों को यह बात बहुत अखरती। दूसरे का उत्थान देखकर लोगों को एक तो योंही ईर्ष्या होती है, फिर इस प्रकार एक दूसरे व्यक्ति के परिश्रम की चोरी द्वारा अनुचित उत्थान से पुरस्कृत होने पर वे क्यों न बिगड़ते। फलतः रामगढ़ में वर्मा जी का एक विरोधी दल भी खड़ा हो गया था। म्युनिसिपल-चुनाव, काउन्सिल, कॉङ्ग्रेस आदि सभी कार्यों में वह वर्मा जी का विरोध करता, लेकिन आज तक सफलता वर्मा जी के गले ही पड़ी थी।

वर्मा जी की सफलता का प्रधान कारण यह था कि वे अपने विरोधियों की ताक़त का ठीक-ठीक पता रखते थे। उनकी प्रत्येक हरकतों तथा कार्यों का पता उन्हें ठीक अवसर पर मिल जाया करता था। हर मुहल्ले, समाज, जमघट, अड्डों, यहाँ तक कि सरकारी ऑफ़िसों तक में वर्मा जी के जासूस घुसे रहते थे। प्रान्तीय सरकार की गुप्त ख़बरें तक वर्मा जी के पास पहुँच जाया करती थीं। इसके लिए वर्मा

जी ने एक विभाग ही खोल दिया था, जिसके कई अड्डे थे। यही कारण था कि छः-सात साल के अन्दर-अन्दर ही वर्मा जी प्रान्त के अग्रगण्य नेता बन गए।

किन्तु जासूसों की जो आदत है, वह यहाँ भी न छूटी। वर्मा जी को कभी एकदम झूठी ख़बरें भी मिल जातीं। कुछ ख़बर न पा सकने पर वाहवाही लेने की ग़रज़ से या अपने किसी दुश्मन को वर्मा जी का कोप-भाजन बनाकर उससे बदला लेने की ग़रज़ से ये जासूस वर्मा जी के पास झूठी ख़बरें पहुँचाने लगे।

वर्मा जी बड़े क्रूर दिल के अनियन्त्रित शासक थे। अपने विरोधियों से वे बुरी तरह से बदला लेते थे। एक उदाहरण से ही उनकी प्रकृति का परिचय मिल जायगा। किसी वकील साहब से काउन्सिल-चुनाव के लिए वर्मा जी का विरोध हो गया। वर्मा जी ने वकील साहब पर एक झूठा फ़ौजदारी का मामला दायर करा दिया। वकील साहब बड़ी मुश्किल से भागकर गिरफ़्तारी से बचे। उनके पन्द्रह-बीस हज़ार रुपए इस मामले में लग गए, तब कहीं जाकर बेचारे को छुट्टी मिली, लेकिन उससे फ़ुरसत मिलते ही उन पर एक दीवानी का मुक़दमा चला। तीन साल तक यह मुक़दमा चलता रहा। इसमें भी उनके पन्द्रह-बीस हज़ार रुपए लगे। वकील साहब क़र्ज़ में डूब गए। जायदाद सब बिक गई। इसी चिन्ता में वकील साहब की मृत्यु हो गई, किन्तु

मर जाने पर भी वर्मा जी ने उनका पिण्ड न छोड़ा। वे इस बात की कोशिश करने लगे कि स्वर्गीय वकील साहब का पुत्र शिक्षा प्राप्त कर किसी अच्छे ओहदे पर न पहुँच पाए। ग़रज़ यह कि अपने विरोधी को जड़-मूल से नाश करने में वे कोई कमी न करते थे।

उनका विरोधी कैसा भी विद्वान्, सच्चरित्र, देशभक्त कार्य-कुशल, परोपकार-परायण क्यों न हो, वे उसके किसी गुण आदि का विचार न कर, उसे पीस डालने को तुल जाते थे।

इसका नतीजा वर्मा जी के लिए भी खराब हुआ। धीरे-धीरे उनके दल से सच्चे, खरे, कार्य-कुशल उत्साही लोग अलग होने लगे। रह गए केवल स्वार्थी चापलूस। फलतः यद्यपि अभी भी वर्मा जी ज़िले तथा प्रान्त के नेता थे, किन्तु उनकी उन्नति स्थगित-सी हो गई। जितना बढ़ चुके थे, उससे आगे बढ़ना रुक गया।

पश्चिमी शिक्षा प्राप्त करने वालों में अधिकतर विदेशियों के दुर्गुण ही आते हैं, गुण नहीं। ये लोग अपनी शिक्षा समाप्त कर नीति, धर्म, ईश्वर एवं आचार के विषय में जो विचार लेकर लौटते हैं, वह बहुत ही भयावह हैं। नीति-धर्म आदि का उनके जीवन में कोई स्थान या अस्तित्व नहीं रहता। सांसारिक सुख-लाभ ही उनका परम उद्देश्य है। स्त्री-पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध की पवित्रता के विषय में

उनकी नीति तो बड़ी ही विचित्र रहती है। पति-पत्नी के सम्बन्ध को वे साधारण मित्रता के अस्थायी प्रबन्ध में अधिक महत्व देना नहीं चाहते। अस्तु—

सरला को देखकर बाबू कुमुदबिहारी वर्मा अपने मन को रोकने में असमर्थ हो गए। लेकिन नेतृत्व के जिस ऊँचे शिखर पर वे पहुँच चुके थे, वहाँ पहुँचकर लोगों की स्वाधीनता छिन जाती है। बहुत सी बातें उन्हें छिपाकर करनी पड़ती हैं—जनता का झुकाव देखकर उन्हें सारे काम करने पड़ते हैं।

इसीलिए वर्मा जी अन्य साधारण लोगों की तरह सरला से खुले तौर पर न मिल सके। तब उन्होंने अपने मित्र मुन्शी सरफ़राज़ हुसेन से सहायता ली।

मुन्शी जी अभी तक सरला से खिंचे हुए थे, किन्तु वर्मा जी के अनुरोध को वे टाल न सके। उन्होंने सरला को निमन्त्रित किया। यह ख़ास मुजरा था, जिसमें बहुत कम लोग बुलाए गए थे। यहाँ तक कि जिस मकान में मुजरा हुआ, उसके अहाते के अन्दर भी लोगों के जाने की मनाई थी। फाटक पर लोगों को रोकने के लिए मुन्शी जी का ख़ास आदमी तैनात था और ख़ुद मुन्शी जी भी बार-बार आकर देख लिया करते थे।

पण्डित मनोहरलाल अक्सर अपनी ज़मींदारी में रहा करते थे। लखनऊ में वे कभी-कभी काम से ही आया

करते थे। उनका बँगला बहुत एकान्त स्थान में बना था। पण्डित जी की अनुपस्थिति में वह प्रायः ख़ाली रहा करता था। एक चौकीदार के सिवाय वहाँ कोई न रहता था। मैत्री के अनुरोध से बाबू कुमुदबिहारी वर्मा इस बँगले को अपने काम में लाया करते थे।

इसी बँगले में सरलाबाई के मुजरे का प्रबन्ध किया गया था। इस जलसे में सम्मिलित होने वाले केवल तीन ही आदमी थे—वर्मा साहब, मुन्शी जी और वर्मा साहब के मित्र मिस्टर ज्ञानचन्द सक्सेना। मिस्टर सक्सेना यहाँ के एक नामी वकील थे और उनका रहन-सहन एकदम साहबी था। हिन्दुस्तानियों के साथ बैठना-उठना तक उन्हें मन्ज़ूर न था। उनका आना-जाना अक्सर ईसाइयों में था। वर्मा जी को ईसाइयों के वोट दिलाने में सक्सेना साहब से बड़ी मदद मिलती थी।

लगभग नौ बजे रात को आमन्त्रित सज्जनों तथा सरला का आगमन हुआ। अन्य जो कुछ भी बातें हुई हों, उनका वर्णन न कर, हम केवल अपने मतलब की बात लिखते हैं :—

वर्मा साहब ने सरला के गले में हाथ डालकर पूछा—आपके पास मुरलीधर किस मतलब से गए थे, मिहरबानी कर सच-सच बता दीजिए।

सरला—उस बात से आपका कोई मतलब नहीं। वे मेरे पास एक बहुत ही अच्छी गरज से गए थे। अगर आपका

यह ख़याल हो कि वे मेरे पास उसी ग़रज़ से गए थे, जिस ग़रज़ से आप लोगों ने मुझे आज बुलवाया है, या जिस लिए आप मुझसे और भी एकाध बार मिल चुके हैं, तो आपका ख़्याल बहुत ही ग़लत है।

वर्मा—अच्छा आप यह भी बता सकती हैं कि आपका पहले, जब आप यहाँ रहती थीं तब, रमानाथ या मुरलीधर से किसी प्रकार का सम्बन्ध था ? अगर आप मेरी बातों का सच-सच उत्तर दे दें, तो आपको बहुत काफ़ी इनाम दिया जायगा।

सरला—महाशय, मैं इस तरह की वाहियात झूठी बातों का जवाब देना नहीं चाहती। मुझसे रमानाथ या मुरलीधर से क्यों किसी प्रकार का सम्बन्ध रहेगा ?

वर्मा—आप बिगड़ें नहीं। आपसे हम लोग एक बड़े ज़रूरी मामले में मदद लेना चाहते हैं। इस मदद के लिए आप जितना इनाम चाहें, मिलेगा। आपको अधिक कुछ न करना होगा। आप सिर्फ़ यही बात दो-चार आदमियों के सामने क़बूल करने के लिए तैयार हो जायँ कि रमानाथ और मुरलीधर छिपे-छिपे आपके पास आते हैं, तथा कई रातें वह आपके साथ काट चुके हैं। लेकिन इससे बेहतर होगा, अगर आप यह क़बूल कर लें कि जिस वक़्त आप यहाँ थीं, उस वक़्त आपसे और रमानाथ तथा मुरलीधर से आशनाई थी और उन्हीं लोगों ने आपको भगाया था।

सिर्फ़ दो-चार आदमियों के सामने यह बात क़बूल करने में आपको ऐतराज़ न होना चाहिए।

सरला—आप मुझसे ऐसा क्यों सुबूत कराना चाहते हैं? मैं झूठ-मूठ किसी भले आदमी को इस प्रकार बदनाम करने के लिए तैयार नहीं हूँ।

वर्मा—तब मालूम होता है, अभी तक आपके मन से अपने पुराने यार की मुहब्बत नहीं गई है। ख़ैर, आपकी ही बात सही। झूठ-मूठ बदनाम न कीजिए, सचमुच ही बदनाम कीजिए। पहले आप इस बात की कोशिश कीजिए कि वे लोग आपके दामन में फँस जायँ। इसके बाद तो बदनामी करने में, वह झूठी बदनामी नहीं कही जा सकती। ऐसा करने से आपको झूठ भी न बोलना पड़ेगा और मुँह माँगा इनाम भी मिल जायगा।

सरला—तब तो मुझे यही कहना पड़ेगा कि आप उन लोगों को अभी तक पहचान नहीं सके। अपने दामन में उन लोगों को फँसाना मेरे लिए अशक्य है; और यदि शक्य भी हो, तो ऐसा करना मुझे मञ्जूर नहीं है। मैं वेश्या अवश्य हो गई हूँ, लेकिन इस प्रकार के काम नहीं करती। किसी भी सच्चरित्र पुरुष को इस प्रकार बिगाड़ना मुझे मञ्ज़ूर नहीं है।

बाबू कुमुदबिहारी वर्मा ने बहुत कोशिश की, बहुत

प्रलोभन दिखाया, लेकिन सरला उस बात के लिए राज़ी नहीं हुई।

रात अधिक बीत चुकी थी। लाचार होकर महफ़िल भङ्ग की गई!
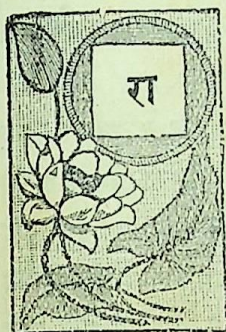
मगढ़ के आस-पास कई रजवाड़े हैं। इसीलिए रजवाड़ों को आते-जाते वक़्त वेश्याएँ बहुधा रामगढ़ को भी अपनी चरण-रज से पवित्र कर दिया करती हैं। यहाँ उनके भक्तों की कमी तो है नहीं, प्रत्येक वेश्या को यथायोग्य आवश्यक धूप, दीप, नैवेद्य मिल ही जाता है। तब भला वे यहाँ क्यों न आएँ।

फलतः हर मास में दो-एक वेश्याओं का आगमन यहाँ हो ही जाता है। जब तक वे यहाँ रहतीं, यहाँ का रसिक-वृन्द उन्हीं की पूजा-अर्चा में लगा रहता और गिरिजा देवी का केलि-निकुञ्ज पिक-विहीन हो जाता। गिरिजा को यह बात असह्य बोध होती।

गिरिजा स्वतन्त्र-प्रकृति की अभिमानिनी स्त्री थी। उसे लोगों के सामने हाथ पसारना न आता था। वह अपने आशिक़ों पर शासन करती थी। उनके मन के मुताबिक़ नाचना

या उनके खेलने की कठपुतली बनकर रहना उसे पसन्द न था। वह यह न चाहती थी कि उसका आशिक़ जब तक मन हो, उसके साथ खेले, तबीयत भर जाने पर ठुकरा दे। वह खुद उनके साथ खेलती और खेलने के बाद उन्हें दूध की मक्खी की तरह फेंक देती थी। अगर वह किसी से दबती थी, तो वर्मा जी से। उनसे अलग होना उसे मञ्ज़ूर न था, लेकिन यह इसलिए नहीं कि उसका उन पर प्रेम था, बल्कि इसलिए कि उनसे उसका बहुत काम निकलता था।

गिरिजा की समझ में यह बात बिलकुल न आती। वह सोचती—क्या बिलासपुर में आने वाली प्रत्येक वेश्या उससे अधिक सुन्दरी एवं यौवना है? यदि नहीं तो क्या कारण है कि प्रत्येक वेश्या के आते ही उसकी ओर लोग दीवाने की तरह टूटते हैं और मेरी ओर से उदासीन हो जाते हैं? क्या वेश्या बनते ही रूप-यौवन की बाढ़ आ जाती है?

उसका यह प्रश्न किसी तरह हल न होता था। उसने निश्चय किया कि चलकर वेश्याओं से मुलाक़ात करूँ, और अपनी आँखों से उनकी आकर्षण-शक्ति का कारण देख आऊँ।

उसने यह तय तो ज़रूर कर लिया, लेकिन वहाँ जाने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी। कहीं भी आने-जाने के लिए कोई ज़रिया चाहिए। जब उसने सरला के आगमन का समाचार सुना और सरला का इतिहास भी उसे मालूम

हुआ, तब उसकी हिम्मत बढ़ी। उसे विश्वास था, सरला उसका तिरस्कार न करेगी, बल्कि उसकी कहानी सुनकर प्रसन्न ही होगी।

पहले उसने पुरुष-वेश में वहाँ जाने का इरादा किया, लेकिन फिर सोचा कि एक बार स्वाभाविक वेश में जाकर उससे जान-पहचान कर आऊँ, फिर पुरुष-वेश में जाया-आया करूँगी। आज ही पुरुष-वेश में जाने से सरला उस पर विश्वास न करेगी, जान-पहचान भी न होगी और वहाँ का रहस्य भी मुझ पर प्रकट न हो सकेगा।

रात के ग्यारह बज चुके थे। सरला का मुजरा अभी समाप्त हुआ था और उसके मन पर वह शिथिलता छाई हुई थी, जो आँधी के पीछे आने वाले सन्नाटे के समान अनुचित आमोद-प्रमोद का प्रतिफल हुआ करती है। इस समय वह बिस्तर पर लेटी हुई, निद्रा-देवी की निष्फल आराधना में लिप्त थी।

सरला स्त्री को अपने कमरे में इतनी रात गए पाकर चौंक पड़ी। बिस्तर से उठकर वह खड़ी हो गई और कुछ देर तक उसे निरीक्षण करने के बाद रुककर बोली—आप कौन हैं? मेरे पास किसलिए आई हैं?

गिरिजा का ध्यान दूसरी तरफ़ था। वह कमरे की प्रत्येक चीज़ को बारीकी से देख रही थी। सरला का कमरा देखकर उसकी आँखें खुल गईं। उसके तथा सरला के

कमरे में ज़मीन-आसमान का अन्तर था। पूरे कमरे में दरी बिछी हुई थी। प्रवेश-द्वार पर पायदान रक्खा हुआ था। दरी के ऊपर मखमली क़ालीन और रेशमी मसनद तथा तकिए लगे थे। एक छोटी-सी चौकी पर चाँदी का पानदान और इत्रदान रक्खा था। एक दूसरी चौकी पर सफ़ेद कपड़ा पड़ा हुआ था, इसके ऊपर दो-तीन चाँदी की तश्तरियाँ और प्याले, चाँदी का एक गिलास तथा चमचमाते हुए तार से लपेटे एक बोतल में लाल रङ्ग का कुछ तरल पदार्थ रक्खा हुआ था। कमरे से सटा हुआ शयन-कक्ष था, जिसमें एक पलँग पड़ा था, जिसपर स्वच्छ बिस्तर लगा था और किनारे पर श्रृङ्गार का टेबुल रक्खा हुआ था।

कमरा रोशनी से जगमगा और ख़ुशबू से गमक रहा था। कुछ देर चकित-भाव से खड़ी रहकर गिरिजा ने उत्तर दिया—मैं स्वर्गीय पण्डित बिहारीलाल की धर्मपत्नी हूँ। मेरा नाम गिरिजा देवी है। तुमने मुझे न कभी देखा न मेरे बारे में कुछ सुना; क्योंकि तुम्हारे चले जाने के बाद मेरी शादी हुई थी।

सरला बड़े चक्कर में पड़ी। बहुत सोचने पर भी अपनी चाची के आगमन का कारण न जान सकी। पहले उसने सोचा—मेरे आने से इस कुल की बदनामी है; इसीलिए शायद क्रोध में भरकर मुझे दण्ड देने के लिए, यह मुझे यहाँ से चले जाने के लिए कहने आई हो; लेकिन गिरिजा की

मुद्रा में क्रोध का चिह्न तक न था। वह सहास्य एवं प्रसन्न थी। पर सरला को अधिक देर तक विचार न करना पड़ा। उसकी चाची ने स्वयं ही कहना शुरू किया—मुझे अपने पास आया देखकर तुम्हें आश्चर्य होता होगा, लेकिन तुम यदि कुछ देर तक कष्ट उठाकर मेरी बात सुनो तो तुम्हारा कौतूहल नष्ट हो जाय। मैं तुमसे यह जानने के लिए आई हूँ कि वेश्याओं के प्रति पुरुषों के इस प्रकार आकर्षित होने का क्या कारण है ? वे क्यों पतिङ्गों की तरह मतवाले होकर वेश्याओं की तरफ दौड़ते हैं ?

अपनी विधवा चाची के मुख से यह प्रश्न सुनकर सरला समझ गई कि इसका कोई यार अवश्य ही किसी वेश्या के चक्कर में पड़ गया है, किन्तु गिरिजा की सहज निर्भीकता ने सरला को आश्चर्य में डाल दिया। यद्यपि एक वेश्या को अन्य लोगों की अपेक्षा मानव-चरित्र एवं स्वभाव के अध्ययन तथा निरीक्षण का अधिक अवसर मिलता है, किन्तु इस प्रकार का स्त्री-चरित्र सरला की नज़रों से न गुज़रा था। चकित होकर उसने कहा—आपका अभिप्राय क्या है, साफ़-साफ़ समझाकर कहिए ? मैं आपका मतलब अभी तक नहीं समझ सकी हूँ। बिना बात समझे उत्तर देना ठीक नहीं।

गिरिजा—मेरे प्रश्नों का उत्तर देती जाओ, सब बात तुम्हारी समझ में आ जायगी। मैं ख़ुद ही कोई बात न छिपाऊँगी। सब साफ़ कर दूँगी।

सरला—अच्छा, तो आराम से बैठकर सुनिए। घर के भीतर रहने वाली रमणी में वह तमीज़, वह छटा, वह वाग्चातुरी, वह फ़रेब तथा वह बेशर्मी नहीं रहती, जो एक वेश्या में पाई जाती है। बाहरी तड़क-भड़क देखकर ही पुरुष वेश्या की ओर आकर्षित होता है। वेश्या के प्राप्त करने में उसे कठिनाई भी नहीं होती। तबीयत हुई, पहुँच गए। वन-बिहारी स्वच्छन्द विहङ्ग में जो आकर्षण रहता है, वह पिञ्जर-बद्ध कीर में नहीं पाया जाता। जङ्गली शेर में जो शान और सौन्दर्य होता है, वह सरकश के शेरों में नहीं दीखता। मनुष्य-स्वभाव से ही स्वाधीनता-प्रिय है—रुकावट से उसे परहेज़ है। किसी अन्य रमणी के यहाँ जाने पर उसे लुक-छिपकर, डरकर काम करना पड़ता है, वहाँ वह खुलकर नहीं खेल सकता। वह व्यभिचार के अतल-तल में ग़ोता लगाना चाहता है, किन्तु वहाँ उसको व्यभिचार का नग्न सौन्दर्य देखने को नहीं मिलता। मनुष्य जितना ही नीचे गिरता है, बेशर्मी से उसे उतनी ही रुचि होती है। वह ऐसी सङ्गति खोजता है, जहाँ बैठकर वह अपने बुरे भावों को शब्दों द्वारा बाहर कर सन्तोष लाभ करे, वहाँ उसे यह बात नहीं मिलती।

वेश्याओं की ओर उन्हें खींचने वाली दूसरी चीज़ है सङ्गीत। वेश्याओं से अपनी रुचि के अनुसार सङ्गीत का

आनन्द भी मिलता है। इस सङ्गीत एवं हावभाव से उसके

व्यभिचार में सजीवता आ जाती है और उसका जोश पूरे चढ़ाव पर पहुँच जाता है।

गिरिजा—तुम्हारी बात ठीक मालूम पड़ती है। अब मैं तुम्हें अपना अभिप्राय भी बता दूँ। तुम्हें यह जानकर अवश्य ही प्रसन्नता होगी कि तुम्हारी चाची का चाल-चलन अच्छा नहीं है। लेकिन पहले मेरा विचार वेश्या बनने का नहीं था—घर में रहकर ही खेलने-खाने का था। पर यह न हो सका। घर में रहकर पूरी आज़ादी से मज़ा करना ग़ैर-मुमकिन है। वेश्या बनने पर ही पुरुषों पर शासन करने और तबीयत भरकर उनसे मनमाने खेल खेलने का मौक़ा मिलेगा।

सरला वेश्या थी, फिर भी गिरिजा की ढिठाई देखकर घबड़ा उठी।

गिरिजा—तुम्हारी क्या राय है? मुझे वेश्या बनने में मदद दोगी या नहीं?

सरला—देखो, अगर मेरे अनुभव से लाभ उठाना चाहो, तब तो मैं यही राय दूँगी कि प्रत्येक व्यक्ति को सदाचार की यथासम्भव रक्षा करनी चाहिए। यदि ऐसा न हो सके, तो अपने घर में ही रहकर आनन्द करो। यह न समझो कि उससे यह वेश्या-जीवन अच्छा है। यह स्थान दूर से तो समुद्र की तरह सुहावना दिखता है, किन्तु भीतर पैठने पर विकराल जल-जन्तुओं का क्रीड़ास्थल मालूम

पड़ता है; दूर से तो फूलों का सुहावना उपवन बोध होता है, किन्तु समीप आने पर हिंसक पशुओं और विषैले सर्पों से भरा हुआ वन जान पड़ता है।

यहाँ यद्यपि भोग-विलास की सभी सामग्रियाँ मिलती हैं, किन्तु बहुधा ऐसे-ऐसे मनुष्यों की ख़ातिरदारी करनी पड़ती है, जिनकी सूरत देखकर जी भिनक उठता है। यहाँ वह बेहयाई करनी पड़ती है, जिसे सुनकर तुम काँप उठोगी। आज तुम समाज में आदर पाती होगी; भले घरों में आ-जा सकती होगी; कुटुम्ब का आनन्दमय दृश्य, बाल-बच्चों के खेल-कूद देख सकती होगी; किन्तु कल तुम एक कुलटा के सामने भी सिर न उठा सकोगी। किसी कुटुम्ब में जाकर बैठने के लिए तरसोगी।

आज जिस प्रेम-वार्तालाप की कल्पना तुम्हारे मन में गुदगुदी पैदा करती होगी, कल उसी से घृणा उत्पन्न होगी। तुमको ज्ञात होगा, यह सब छलना है। यहाँ का जीवन एकदम अस्वाभाविक है। दिल रोता है, लेकिन मुँह पर हँसी लानी होगी, अस्वस्थ रहने पर भी लोगों की पशु-वासना की तृप्ति करनी होगी।

गिरिजा—तब तुम यहाँ क्यों पड़ी हो?

सरला—मेरे पीछे का मार्ग बन्द है, मैं लौट नहीं सकती। इस ख़न्दक़ में एक बार कूदने के बाद यहीं सड़ने के सिवाय फिर कोई चारा नहीं रहता। मुझे यहाँ रहते अधिक दिन

नहीं हुए हैं ; लेकिन यहाँ का यथेष्ट अनुभव हो गया है। यहाँ मनुष्य नहीं आते, यहाँ पशु आते हैं—छली, कपटी, जुआरी, चोर, गिरहकट, शराबी। ये मनुष्यता की श्रेणी से इतने गिरे रहते हैं कि इन्हें अपने पतन पर, अपनी दुर्बलता पर गर्व रहता है।

यहाँ की स्त्रियाँ तो रहती हैं बनी-ठनी और विद्युत्-ज्योति की तरह आखों में चकाचौंध पैदा करने वाली, किन्तु उनका हृदय छिछोरेपन, फ़रेब, कुवासना, कुरुचि आदि का क्रीड़ास्थल है। अपनी निर्लज्जता और कुकर्म की कहानियाँ वे मज़े ले-लेकर कहती हैं। इसके प्रेम में मत पड़ो; यहाँ प्रेमी नहीं आते। यहाँ आते हैं वे लोग, जो तुम्हें घायल कर तुम्हारे तड़पने का आनन्द लेते हैं।

गिरिजा—ख़ैर, इस पर विचार करने के लिए मेरे पास काफ़ी समय है। यह तो बताओ, मुझे गाना कितने दिनों में आ जायगा ?

सरला—यहाँ गाना कौन पूछता है ? ग़ज़ल, ठुमरी, कव्वाली और दो-चार थियेटर के गाने आ जायँ, बस ! यहाँ सौन्दर्य और बातों में तमीज़ चाहिए। बस फिर देखो किस तरह दीवाने की तरह लोग तुम्हारी तरफ़ टूटते हैं। सूरत तो तुम्हें परमात्मा ने अच्छी दे ही दी है, गाना सीखने में ज्यादा से ज्यादा एक साल लगेगा।

गिरिजा ने सोचा, सरला ईर्ष्या-वश उसे वेश्या बनाने से

इन्कार कर रही है। उसने सरला से कहा—मैं तुम्हारे यहाँ बराबर आया करूँगी, लेकिन इस स्त्री-वेश में घर से बाहर होना और तुम्हारे यहाँ बराबर आते रहने में मुझे कठिनाई होगी। इसलिए मैं अब से पुरुष-वेश में तुमसे मुलाक़ात किया करूँगी। इसमें तुम्हें तो कोई ऐतराज़ न होना चाहिए।

सरला—मुझे इसमें कोई ऐतराज़ नहीं है। मुझे पुरुषों से मिलने में क्या ऐतराज़ हो सकता है। मेरा तो दरवाज़ा खुला हुआ है। तुम्हारे आने से एक सखी ही मिल जायगी। किन्तु मैं तुम्हारी भलाई के लिए अब भी कहती हूँ कि इस मृग-जाल में न फँसो, यह घातक माया है।

दूसरे दिन आने का वादा करके गिरिजा चली गई।

गिरिजा को नवीनता पसन्द थी। दो-चार दिनों तक किसी चीज़ को काम में लाने के बाद उसकी तबीयत उचट जाती, फिर उस चीज़ के लिए उसे किसी प्रकार का आकर्षण न बोध होता, इसीलिए उसे निरन्तर नए शिकार की खोज में रहना पड़ता था। नए-नए पुष्प की शोध में वह हरदम लगी रहती। नया असामी फँसाने पर उसे शिकारी का सा आनन्द आता।

रमानाथ उसके पड़ोसी थे। जब से रमानाथ वापस आए, तभी से गिरिजा की दृष्टि में वे गड़ से गए थे। उनकी हृष्ट-पुष्ट भरी हुई सुडौल आकृति को देखकर उनसे खेलने की बलवती इच्छा गिरिजा को सताने लगी। लेकिन उनका

सौन्दर्य ही गिरिजा के आकर्षण का प्रधान कारण न था। रमानाथ के शील, आचार एवं संयम को देखकर उसे भङ्ग करने की लालसा भी उसके अन्दर प्रबल हो उठी।

श्यामाचरण का शील भङ्ग हो जाने के बाद से गिरिजा को विश्वास हो गया था कि पुरुषों का संयम भङ्ग करना कोई बड़ी बात नहीं है। लोगों के शील-संयम तथा पूजा-पाठ को अधिकांश में वह ढोंग समझती और मज़ाक़ उड़ाती थी।

रमानाथ के विषय में भी उसकी यही धारणा हुई। उसे विश्वास था कि यह ढोंगी छोकरा शीघ्र ही उसके सामने घुटने टेककर भिक्षा-याचना करेगा।

उसने इसी उद्देश्य से कई जाल फेंके—चारा दिया; लेकिन कबूतर न उतरा। सारे हाव-भाव, कटाक्ष व्यर्थ हुए—इस योगी का अखण्ड संयम न डिगा। नाना प्रकार के कौशल कर वह हार गई। उसके तूणीर के समस्त अस्त्र निष्फल हुए—सब वार ख़ाली गए। अपनी इस असमर्थता पर उसे क्षोभ हुआ। वह रमानाथ पर भीषण रूप से क्रोधित हो उठी और उनसे बदला लेने, उन्हें नीचा दिखाने का अवसर ढूँढ़ने लगी। रमानाथ को इसकी ख़बर तक न थी।

उस दिन यह जानकर कि वर्मा जी भी उससे असन्तुष्ट हैं और उस पर मुक़दमा चलाना चाहते हैं, उसे बड़ी ख़ुशी हुई, लेकिन इस भेद को उसने ज़ाहिर न होने दिया।

आज गिरिजा इन्हीं विचारों में लीन हो, मन ही मन क्रूर, पैशाचिक आनन्द का अनुभव कर रही थी। आज रात को वर्मा जी इसी सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए उसके यहाँ आने वाले थे।

वर्मा जी समय के बड़े पाबन्द थे। नियत समय पर ओवरकोट से अपने को ढाँके हुए वर्मा जी अपनी नायिका के शयन-कक्ष में प्रविष्ट हुए। गिरिजा उस समय विचार-मग्न मुद्रा में बैठी हुई थी।

वर्मा—क्या सोच रही हो गिरिजा ? किस सौभाग्यवान् के ध्यान में मग्न हो ?

गिरिजा—रमानाथ की ही बात सोच रही थी।

वर्मा—तब तो रमानाथ बड़ा भाग्यवान् है। क्या अब हम लोगों को भुलाकर उसी से नेह लगाने का इरादा कर लिया है ?

गिरिजा—क्या किया जाय ? तुम तो अब बहुत पुराने हो गए। तुम्हारी उमर तैंतीस-चौंतीस की हो गई। रमानाथ अभी पच्चीस-छब्बीस का बलिष्ट युवक है।

वर्मा—तब तो रमानाथ पर मुक़दमा चलाने से तुम्हें कष्ट होगा ? अपने प्रेमी को कष्ट में डालना तुम्हें कब स्वीकार होगा ? तब मुक़दमा चलाना व्यर्थ है। तुम्हें मैं कष्ट देना नहीं चाहता।

गिरिजा—तुमने किस प्रकार मुक़दमा चलाना सोचा

है, वह अवश्य ही फ़ज़ूल है। उसमें अगर तुम्हारी जीत भी हो गई, तो भी उससे कुछ विशेष लाभ न होगा।

वर्मा—तब सुन्दरी, तुम्हीं बताओ, किस प्रकार मुक़दमा चलाया जाय। तुमने किस प्रकार काम करना सोचा है? बिना इस पर विचार किए ही तुम ऐसा कह नहीं रही हो। मैं तो देखता हूँ, तुम केवल इस रहस्य में ही सुदक्ष नहीं हो, मामले-मुक़दमे की बात भी काफ़ी तौर से समझती हो।

गिरिजा—वकील होकर भी तुम्हें मुझसे मामले-मुक़दमे में सलाह करने की ज़रूरत आ पड़ती है, इससे तुम्हें शर्म नहीं आती? ख़ैर, सुनो! रमानाथ पर किसी भले घर की स्त्री के ऊपर बेजा हरकत की कोशिश करने का मुक़दमा चलाओ। मुक़दमा सबूत न होने पर भी रमानाथ बर्बाद हो जायगा। लोग कहेंगे, ऐसे मामले में सबूत होना कठिन है, लेकिन कुछ न कुछ बात ज़रूर है, नहीं तो भला कोई भले घर की औरत अपने ऊपर इस प्रकार का तोहमत लगवाना क्यों पसन्द करती। रमानाथ इतनी उम्र हो जाने पर भी अविवाहित है, इससे लोगों के मन में यह बात बहुत जल्द बैठ जायगी। तुम्हारी बदनामी भी इसके सामने आप से आप दब जायगी। लोग कहेंगे—अपनी तो यह करनी और दूसरों के ऊपर इल्ज़ाम लगाएँ—लेख लिखें! बड़ा पाखण्डी है!!

वर्मा जी गिरिजा की बुद्धि की प्रशंसा किए बिना न रह सके। उसका आलिङ्गन कर उसके गालों पर प्रशंसा-सूचक

चुम्बन-चिह्न जड़ ही तो दिया। फिर पूछा—सुन्दरी, भला यह तो बताओ, ऐसी भले घर की स्त्री कहाँ से मिलेगी, जो अपने ऊपर इस प्रकार अत्याचार की बात दस आदमियों के सामने क़बूल करे और अदालत में जाकर इज़हार दे? ऐसी कौन स्त्री है, जो ऐसा करने के लिए तैयार हो जाय? वह ऐसी भी हो, जिस पर हम लोग विश्वास कर सकें; क्योंकि उसके बदल जाने या भेद खुल जाने से भारी गड़-बड़ी हो जायगी। उलटे हमीं लोग बदनाम हो जायँगे।

गिरिजा—क्यों? क्या मुझपर तुम्हारा विश्वास नहीं है? या मैं कोई नङ्गी-लुच्ची औरत हूँ? तुम्हारे लिए मैं क्या नहीं कर सकती? मैं मुद्दई बनूँगी। देखूँ तो ज़रा यह कैसा बहादुर छोकरा है, जो तुम्हारे विरुद्ध खड़ा हुआ है। इस छोकरे का ग़रूर ज़रा कम करना होगा।

वर्मा जी गिरिजा की इस बात से गद्गद् हो उठे। अपने को रोक न सकने के कारण उन्होंने गिरिजा को कस कर दबा लिया।

उस रात वर्मा जी का प्रेम इतना उमड़ा कि वे गिरिजा को छोड़ न सके। रात को वहीं रहे। खाना-पीना भी वहीं हुआ। ऐसे अवसरों पर सहभोज में मदिरा के मिश्रण से बड़ा आनन्द आता है।

दिन को ऐ जवानी, दे दे उधार बचपन !' जीवन-संग्राम के भँवर में पड़े हुए किसी दुखी हृदय के ये उद्गार हैं, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में कभी न कभी इन पंक्तियों की सत्यता का अनुभव करता है।

विरोधी तत्व के अनुभव विना किसी भी वस्तु का वास्तविक स्वाद नहीं मिलता ; किसी के वियोग होने पर ही यह मालूम होता है कि उससे हमें क्या सुख-दुख था, उसका हमारे जीवन में क्या स्थान था। कड़ुवे मुँह को ही मिठास का मज़ा मिलता है। दुख के बाद ही सुख खिल उठता है। यदि रात्रि का अन्धकार न हो तो चन्द्रिका का महत्व कम हो जाय।

जब तक मनुष्य की बाल्यावस्था रहती है, उसे नहीं

मालूम पड़ता कि इसमें कैसा मिठास है, कैसी स्वच्छन्दता है। किन्तु बचपन बीत जाने पर, यौवन प्राप्त होने पर, जीवन-संग्राम के मध्य में जब विजय और पराजय का पलड़ा इधर से उधर झूलने लगता है, चारों ओर से ठोकर खाकर जब मनुष्य त्रस्त हो जाता है—हार कर व्याकुल हो उठता है, तब उसकी दृष्टि पीछे की ओर दौड़ती है। उसके मन से आह निकल पड़ती है—पीछे छूटी हुई बाल्यावस्था कैसी मधुर थी। उस समय उसकी याद कर उसका मन रो पड़ता है; पीछे लौट पड़ने के लिए मन मचलने लगता है—फिर से बालक बनने की इच्छा प्रबल हो जाती है। किन्तु जीवन-पथ में आगे बढ़कर पीछे लौटने की सामर्थ्य मनुष्य में नहीं है।

वय-प्राप्त पुरुष-स्त्रियों की करुण-पुकार सुनकर परमपिता ने उनकी बाल्यावस्था लौटाने की विधि निर्मित की—उनके फिर से बालक बनने का उपाय खोज निकाला। सन्तान होने पर उसके प्रेम में विह्वल होकर मनुष्य उसके साथ बालक बनता है। थोड़ी देर के लिए उसका बालपन लौट आता है—उसका स्वभाव बालकों का सा हो जाता है। वह भूल जाता है कि वह वय-प्राप्त मनुष्य है, धनी है, शिक्षित है, नेता है। उचितानुचित का ध्यान छोड़कर वह बालक के साथ तुतलाता है, कान पकड़ता है, दौड़ता है, खेलता है, रोता है, बिल्ली की बोली बोलता है, ताली पीटकर नाचता है।

राजा नगेन्द्रनाथ सिंह की धर्मपत्नी इस समय अपनी तीन वर्षीया बालिका के साथ इसी प्रकार क्रीड़ा कर रही हैं। वे कभी ताली पीटतीं, कभी नाचतीं, कभी तुतलातीं, कभी आँखें बन्द करतीं और कभी रोने लगती हैं। इस समय उनके आचरण को देखकर कोई भी इस बात का अनुमान नहीं कर सकता कि वे एक बड़े भारी ज़मींदार की वय-प्राप्त रानी हैं। उन्हें देखकर एक पागल स्त्री का ही भान हो सकता था, बुद्धिमती शिक्षिता महिला का नहीं।

इसी अचेतनावस्था में वे बहुत देर तक बालिका के साथ किलोल करती रहीं। खेलते-खेलते बालिका सो गई। सोई हुई बालिका का मुख-चुम्बन कर उन्होंने उसे दाई के सुपुर्द किया।

बालिका से छुट्टी पाकर वे कुछ आवश्यक चिट्ठी-पत्री लिखने बैठ गईं। बहुत देर तक इस काम में व्यस्त रहने के बाद उन्होंने दीवार में लगी हुई घड़ी की ओर दृष्टिपात किया। दस बजने को पाँच मिनट शेष थे, किन्तु अभी तक कुँवर साहब नहीं आए!

उन्होंने फिर कुछ लिखने-पढ़ने का प्रयत्न किया, किन्तु मन न लगा। वे उठ बैठीं। कुछ देर तक इधर-उधर घूमकर जी बहलाना चाहा, लेकिन वह भी व्यर्थ हुआ। उनका मन तो इस समय कुँवर साहब की इन्तज़ार में व्याकुल हो रहा था!

ठण्ढी हवा लेने की ग़रज़ से खिड़की खोलकर वे बाहर का दृश्य देखने लगीं।

फूलों का मधु चुराकर पवन दबे पाँव, मन्द गति से ललिता के कमरे में भागकर आश्रय लेने के लिए आ रहा था। मार्ग में उसकी मुलाक़ात ललिता देवी की सुन्दर नासिका से हो गई। पवन को इससे अधिक सुखद एवं सुरक्षित आश्रय मिलने की आशा कम थी। वह आगे न बढ़ सका। नासिका में प्रवेश कर अन्तर्द्धान हो गया। सौन्दर्य-समुद्र में ग़ोता मारकर बाहर निकलना सबके लिए असाध्य है। फिर पवन की क्या बिसात ?

ज्योत्स्ना-प्लावित, वसन्त-प्रफुल्लित सघन वृक्ष की आड़ में बैठी हुई कोकिला वियोग-रात्रि के आगमन से अपनी वाग्चातुरी भूल-सी गई थी। ललिता के विरह-मलिन मुख को देखकर उसकी वेदना कुछ कम हुई। समवेदना से द्रवित होकर सहानुभूति दिखाने तथा सान्त्वना प्रदान करने के उद्देश्य से उसने पञ्चम स्वर में अलापना प्रारम्भ किया, किन्तु ललितादेवी का भावुक मन सान्त्वना की कोमल ठेस भी न सह सका—वह दर्द से व्याकुल हो उठीं।

चारों ओर निर्मल चन्द्रिका बिखरी हुई थी। ललिता देवी के मुख को देखकर उसे दूसरे चन्द्र का धोखा हो गया। चन्द्रिका को यह नवीन चन्द्र अपने चन्द्र से अधिक आकर्षक बोध हुआ। इसलिए चन्द्रिका अपने पातिव्रत्य को

तिलाञ्जलि देकर उसी ओर दौड़ पड़ी। वह ललिता के मुख पर आकर कुलभ्रष्टा स्त्रियोचित निर्लज्जता से क्रीड़ा करने लगी। इस पर-पुरुष के समीप उसे ज़रा भी लज्जा बोध न हुई। वह मदान्ध होकर इस नवीन चन्द्र से लिपट गई। किन्तु मुख-चन्द्र न खिला। उसने चन्द्रिका की अठखेलियों पर ज़रा भी ध्यान न दिया। वह अपने ध्यान में मस्त रहा।

ऐसी चन्द्रिका, इतना कोकिला-कुञ्जन, मलय-पवन के इतने मन्द झकोरे से आख़िर ललिता का मन व्याकुल हो ही उठा, स्थिर रहना असम्भव प्रतीत हुआ। किसी का कथन है—संसार अनन्त सङ्गीत है। वायु के झोंके, वृक्षों का हिलन्त, समुद्र का गम्भीर गर्जन, सरिता का कलकल निनाद, बादलों की गड़गड़ाहट, आकाश का इन्द्रधनुष—ये सभी अनन्त सङ्गीत हैं, यहाँ तक कि सृष्टि का प्रत्येक अणु-परमाणु किसी नियत ताल पर चक्कर लगाता रहता है। इसीलिए जब बाह्य सङ्गीत से इनकी साम्यता सङ्घटित होती है, तब हमें अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है। यही कारण है कि सङ्गीत से जड़, जीव, चेतन, अचेतन सभी को प्रेम है, सभी सङ्गीत से प्रभावित होते हैं। सङ्गीत से सभी में मस्ती आती है। दुख में, सुख में, थकावट के समय—सभी अवसरों पर सङ्गीत से शान्ति मिलती है।

आकुल हृदय को स्थिर करने के विचार से ललिता रानी ने सितार लेकर गाना शुरू किया। रात्रि की निस्तब्धता में

कोकिल-कण्ठ की झङ्कार से सुधा-धारा बरसने लगी। निर्जन कक्ष का वातावरण उस अमृतमय सङ्गीत-स्रोत की तरङ्गों पर नृत्य करने लगा:—

बागीश्वरी तीन ताल

रजनी गई, पिया नहिं आए।
पिया नहिं आए, नाथ नहिं आए॥
अन्तरा—सखि, कहँ जाऊँ शान्ति न पाऊँ।
शून्य सदन में मन अकुलाए॥ रजनी॥

विमल चाँदनी, मलय-मारुत की सुरभित मन्द हिलोरें तथा कोमल कण्ठ से निकली हुई सङ्गीत-लहरी ने मिलकर ऐसी अलौकिक कविता की रचना की कि प्रकृति निस्तब्ध हो उठी। रात्रि की गति रुक-सी गई।

सङ्गीत बन्द हो गया, किन्तु वहाँ के वातावरण से उसका प्रभाव इतनी जल्दी अलग न हो सका। ललिता रानी को यह विदित न था कि उसके निर्जन कक्ष में चोर की तरह घुसकर एक व्यक्ति मन्त्र-मुग्ध होकर उसका गाना सुन रहा है।

गाना बन्द होते ही उस व्यक्ति ने कहा—आ गए!

ललिता रानी स्वर से ही पहचान गई कि आवाज़ देने वाला व्यक्ति अन्य कोई नहीं, वही है, जिसे उसके निर्जन कक्ष में आने का अधिकार है।

बिना उस ओर देखे ही ललितादेवी ने कहा—कितने

बज चुके हैं, यह मालूम है ? तुम तो कहीं आनन्द में मग्न होगे, लेकिन तुम्हें इस बात का तो ध्यान रखना चाहिए कि बिना तुम्हारे आए मुझे नींद नहीं आती।

इसके उत्तर में कुँवर ने एक प्रगाढ़ आलिङ्गन द्वारा ललिता रानी को निरुत्तर कर दिया। उनका मान भङ्ग हो गया!

इकत्तीसवाँ परिच्छेद

रपट भागते हुए मनुष्य का मन अन्य बातों की ओर नहीं जाता। उस पर उस समय दौड़ की गरमी सवार रहती है। दौड़ते-दौड़ते जब उसे ठोकर लगती है, तब उसका ध्यान खिंचता है और वह विचार करने लगता है। यह एक प्रकार की चेतावनी होती है, जो मनुष्य को उसकी आत्मा या सद्बुद्धि की ओर से मिलती है। पुरानी बातें हमारी आँखों के सामने एक के बाद एक सिनेमा की पुतलियों की तरह घूमने लगती हैं। थोड़ी देर के लिए हमारी अन्तर्दृष्टि खुल जाती है और हम विचार-सागर में निमग्न हो जाते हैं।

पञ्जाबी एजेण्टों की दुर्घटना और सुशीला देवी के विष-पान ने सरला के मन को बड़ा आघात पहुँचाया। उसे

कड़ी ठोकर लगी और वह अपनी वर्त्तमान दशा पर विचार

करने के लिए बाध्य हुई। वह सुशीला देवी की सौम्य एवं शान्त मूर्त्ति से अपनी तुलना करने लगी।

"इतने कष्ट पाकर भी उसके चेहरे पर कैसी दीप्ति, कैसी शान्ति है? हज़ार दुखी होने पर भी, स्वामी से फटकारे जाने पर भी उसमें कितना स्वाभिमान है; किस प्रकार दार्शनिक उदासीनता से वह स्वामी के अनादर की उपेक्षा करती है; इतना होने पर भी किस प्रकार अभिमान से सिर ऊँचा करके चलती है; अपनी पवित्रता का उसे कितना ध्यान है और इसी पवित्रता के बल पर तूफ़ानों से टकराती हुई जीवन-नौका को वह किस प्रकार सहज भाव से खे रही है! उसका गर्व अनुचित नहीं है—वास्तव में वह सौभाग्य-वती है!

"उस दिन रेल पर उस स्त्री ने वेश्या-जीवन का कैसा सुन्दर चित्र खींचा था। न जाने कितनी महिलाएँ इसी प्रकार धोखे में फँस जाती हैं। दूर से मृगजल देखकर जिस प्रकार प्यासा पथिक आकर्षित होता है, किन्तु समीप जाने पर जिस प्रकार उसे जलती हुई उत्तप्त बालुका मिलती है, वही हाल वेश्या बनने वाली स्त्रियों का होता है। बाहर से यह जीवन बहुत सुखद प्रतीत होता है, किन्तु यहाँ अपने पर—इस मायापुरी के अन्दर प्रवेश करने पर जब इसकारहस्य खुलता है, तब बहुत देर हो जाती है और बाहर जाने का मार्ग अदृष्ट हो जाता है।

"बाहर से तो यही बोध होता है कि यदि हमें कहीं त्राण मिलेगा तो बस यहीं; किन्तु यहाँ पहुँचने पर इस मायावन में विहार करने वाले नर-पिशाचों की भयङ्करता तथा कोलाहल से चित्त व्याकुल हो उठता है। यहाँ आने वाले प्रेम का दम तो ज़रूर भरते हैं, लेकिन वे कितने लुच्चे, लफङ्गे तथा नीच होते हैं—कोई पैसे का जाल बिछाकर, कोई बातों की सफ़ाई दिखाकर और कोई प्रेम की कथा सुनाकर वेश्याओं पर हाथ साफ़ करते हैं। लेकिन यह सब जाल है—फ़रेब है। काम निकल जाने पर ये प्रेमी ज़न्तु इस प्रकार अपनी दुम दबाकर भागते हैं, मानो अजनबी हों।

"लोग कहते हैं कि रण्डियाँ किसी की नहीं होतीं, बड़ी मक्कार होती हैं; रुपए ऐंठ लेने पर अपने आशिक़ों को दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक देती हैं। लेकिन रण्डियों को फ़रेब सिखाता कौन है? येही धूर्त्त प्रेमी।"

फिर उसे नगेन्द्रनाथ सिंह की बात याद हो आई—वह कैसा सीधा, सरल, तेजस्वी युवक है। वह धूर्त्तता, वह निर्लज्जता का भाव, जो वेश्यागामियों के चेहरे पर रहता है, वह कुँवर के चेहरे पर न था। मुझसे बातें करते समय उसके मुख-मण्डल पर लज्जा की लाली छाई हुई थी; आँखें नीचे ज़मीन की ओर गड़ी हुई थीं; हाथ थरथरा रहे थे।

वह युवक सरला को सच्चा प्रेमी जान पड़ा। उसमें

निरर्थक अभिमान न था—उसकी बातें कोरी डींगें न थीं। सरला का हृदय इस सरल हृदय नवयुवक की ओर खिंचने लगा, किन्तु अपने अनुचित एवं निषिद्ध प्रेम में वह उस भोले-भाले युवक की आहुति देने में हिचकिचाती थी। वह इस प्रेम-लालसा को विश्वासघात समझती थी!
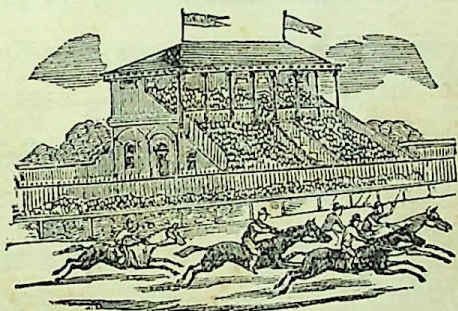
जकुमार नगेन्द्रनाथ सिंह की अवस्था अभी बहुत कम थी। उनकी अवस्था इस समय चौबीस वर्ष से अधिक की न होगी। अभी हाल ही में वे कॉलेज से अपनी शिक्षा समाप्त कर निकले थे। वह अत्यन्त स्वरूपवान्, सुगठित एवं बलिष्ट नवयुवक थे। कसरत का शौक़ था; खेल-कूद, घोड़े की सवारी, शिकार आदि से बड़ी रुचि थी। इसके लिए उनके पास अवकाश एवं सुपास दोनों थे। इसीलिए उनका शरीर खिल उठा था। छाती चौड़ी, गर्दन भरी हुई, कन्धे ऊँचे तथा चाल मस्तानी थी। उनके मुख पर वीरता तथा

सौम्यता की सम्मिलित झलक दिखाई देती थी। आँखें मतवाली, चञ्चल एवं सतेज थीं। जब वे रास्ते से निकलते तो उनके रङ्ग-रूप, ठाट-बाट पर बूढ़े-जवान—सभी की आँखें उठ जातीं। लोग राह चलते उन्हें देखने के लिए ठिठक जाते।

रईस तथा राजाओं का चाल-चलन बहुधा ख़राब ही होता है। प्रारम्भ से उनकी शिक्षा-दीक्षा, रहन-सहन ही ऐसा होता है, जो उनके मन में चञ्चलता का आरोप कर धीरे-धीरे उन्हें कुपथगामी बनाता है; और वे फिर इस प्रकार बिगड़ते हैं कि साधारण लोगों को उनका अनुमान तक नहीं हो सकता। किन्तु युवक नगेन्द्रनाथ सिंह इस नियम के अपवाद-स्वरूप थे। वे एक पत्नीव्रत के क़ायल थे। ललितादेवी के प्रति उनका अपूर्व एवं एकान्त स्नेह था। पत्नी के प्रति उनके जो कर्त्तव्य थे, उसे वे अच्छी तरह समझते थे।

ललिता देवी भी एक पटु गृहिणी थीं। रानी को गृहस्थी के काम देखने नहीं पड़ते, काफ़ी अवकाश रहता है। फलतः ललिता देवी अपनी समस्त पटुता पति-सेवा में व्यय किया करती थीं। पति-पत्नी में आदर्श दाम्पत्य प्रेम था। विवाह होने के बाद से उनमें एक दिन के लिए भी वियोग न हुआ था। जहाँ जाते, दोनों साथ ही जाते।

रामगढ़ के शान्ति-उत्सव में शामिल होने के लिए कुँवर नगेन्द्रनाथ सिंह को भी बड़े साहब की ओर से निमन्त्रण

दिया गया था। इसीलिए वे ललिता देवी को साथ लेकर रामगढ़ आए थे और अपनी कोठी में ठहरे हुए थे। जिस समय जल्से में सरला का गाना हुआ, उस समय कुँवर साहब भी उपस्थित थे। सरला पर दृष्टि पड़ते ही कुँवर साहब के हृदय में खलबली मच गई। उनका कभी न डिगने वाला जितेन्द्रिय मन फिसल पड़ा। एक बार जो फिसला, सो फिर न सँभला। एकदम क़ब्ज़े के बाहर हो गया।

सरला की आँख भी उनपर जा अटकी। मौक़ा देखकर उसने दो-चार नयन-बाण भी कस-कसकर चला दिए। जिस प्रकार हमें अपनी विद्वत्ता दिखाने का, शौर्य दिखाने का, साहस के काम करने का हौसला रहता है, उसी तरह वेश्याओं को भी अच्छे शिकार घायल करने में—उसे फँसाने में आनन्द आता है।

कुँवर साहब यद्यपि बुद्धिमान एवं सच्चरित्र थे, फिर भी उनका यह यौवन-काल—गदह-पचीसी का समय था, जबकि मनुष्य में अदम्य उत्साह रहता है, किन्तु आगा-पीछा सोचने की सद्बुद्धि जाग्रत नहीं होती। उनमें वह विवेक न था, जो मनुष्य के सदाचरण की रक्षा करता है। उस सभा में उनका कोई ऐसा परिचित या गुरुजन भी न था, जिसके सामने उनकी आँखें ऊपर उठने में सङ्कोच करतीं।

उस समय तो कुँवर साहब किसी तरह उठकर अपने डेरे पर चले आए; क्योंकि वहाँ सुविधा नहीं थी, किन्तु

अपना दिल वे सरला के केश-जाल में उलझा आए—वह उनके साथ डेरे तक वापस न आ सका। रमणी के केश-जाल से मन का निकलना साधारण काम नहीं है। शङ्कर भगवान् की जटा में गङ्गा जी लुप्त हो गईं, तो क्या सरला के केश में एक नवयुवक का मन भी न अटता? वे अपने मन को बहुत समझाते, ललिता के प्रति अपनी प्रतिज्ञा एवं कर्त्तव्य की याद दिलाते, किन्तु वह उनकी सभी बातें अनसुनी कर देता।

अपने मन से उन्हें हारना पड़ा। उनकी एक न चली। धीरे-धीरे उनके मन की चञ्चलता यहाँ तक बढ़ी कि उनका मन किसी काम में न लगता। वे सदैव अन्य-मनस्क से रहने लगे। वही दृश्य आँखों के सामने फिरा करता। सरला के हाव-भाव, कटाक्ष, आँखें नीची कर धीरे से मुस्कराने आदि की आलोचना में ही उनका मन मग्न रहता। इसमें उन्हें बड़ा आनन्द आता। इस मधुर कल्पना से अलग होते ही वे उदास हो जाते, उन पर एक प्रकार की शिथिलता-सी छा जाती।

सरला के रूप-लावण्य में एक प्रकार की सरलता थी, जो उन्हें बरबस अपनी ओर खींचती थी। उनकी प्रेम-लालसा कभी-कभी इतनी उत्तेजित हो उठती कि रोकना कठिन हो जाता और वे बेचैन हो जाते!

लाचार होकर उन्होंने सरला के पास पैग़ाम भेजा कि

वे उससे मिलना चाहते हैं। जिस समय सरला उनसे मिली, उनकी बुरी हालत थी। मारे उत्तेजना के वे पसीने-पसीने हो रहे थे; घबड़ाहट के कारण मुँह से साफ़ बात न निकलती थी, हाथ-पैर थरथरा रहे थे!

सरला अशान्ति के जीवन से ऊब गई थी। इसीलिए यद्यपि कुँवर सरीखे भोले-भाले नवयुवक को फाँसना वह अनुचित समझती थी, किन्तु जब उनकी ओर से प्रस्ताव पर प्रस्ताव आने लगे, तब वह अपने को रोक न सकी।

वह कुँवर साहब की संरक्षकता में आकर रहने लगी। एक सुन्दर बँगले में उसके रहने का प्रबन्ध किया गया। कई दास-दासियाँ उसकी सेवा में उपस्थित रहने लगीं। दरवाज़े पर एक शस्त्रधारी दरबान पहरे पर नियुक्त हुआ।

कुँवर साहब ने यह सब प्रबन्ध अवश्य कर दिया, लेकिन सरला से प्रकाश्य सम्बन्ध रखने में उन्हें बड़ा सङ्कोच होने लगा। वे जहाँ तक हो सकता, छिपकर उससे मिलते।

विशेषकर वे यह बात ललिता रानी से छिपाना चाहते थे। अभी भी ललिता देवी के लिए उनके मन में काफ़ी स्थान था। ललिता देवी के लिए वे भारी वेदना का अनुभव करते, किन्तु सरला को भूल जाना भी असम्भव था!

कुँवर साहब की दशा बड़ी विचित्र थी। वह एक तराज़ू के पलड़े पर बैठ चुके थे, जो कभी इधर झुकता था, कभी उधर। कभी ललिता के प्रति उनका जो कर्त्तव्य

था, वह ज़ोर पकड़ता तो कभी सरला की ओर का आकर्षण उन्हें ज़बरदस्ती अपनी ओर खींच लेता। ललिता देवी से विश्वासघात करते उन्हें कष्ट होता था, किन्तु सरला को त्यागने में भी वे असमर्थ थे।

कुँवर साहब अपना रात्रि का समय बाहर व्यतीत न करते थे, लेकिन यह बात कब तक छिपी रहती? धीरे-धीरे ललिता देवी के कानों तक बात पहुँच गई।

अब उनकी समझ में कुँवर साहब की अन्यमनस्कता का तात्पर्य आगया। ललिता का सामना होते ही वे सङ्कोच से दब जाते। ललिता से वे सदैव आँखें चुराने का प्रयत्न करते। आजकल न तो वे उससे दिल खोलकर बातें करते और न उस पर उस प्रकार प्यार ही जताते। इस खींचातानी में पड़कर आहार, निद्रा, सम्भाषण—सभी से उन्हें अरुचि हो गई। वे ललिता के सामने अपने मन का भाव छिपाने की कोशिश करते, सदैव उससे भागे-भागे फिरते!

ललिता देवी सब बातें समझ गईं, किन्तु कुँवर साहब के सामने उन्होंने कभी इस बात को ज़ाहिर न होने दिया। इस सम्बन्ध में सदैव वे अपना अज्ञान ही दरसाती रहीं।

एक दिन उदास मन से कुँवर साहब सरला की रूप-राशि देख रहे थे। सरला इस जीवन में पहला सच्चा प्रेमी पाकर कुँवर साहब को दिल से प्यार करने लग गई थी। इस मरुभूमि में बहुत दिनों के बाद सरिता का कलकल

निनाद सुनाई दिया था। वह कृतज्ञ थी। कुँवर साहब के सच्चे प्यार का बदला पूर्णरूप से देना चाहती थी।

वह कुँवर साहब को अन्यमनस्क देखकर जी-जान से उन्हें प्रसन्न करने की कोशिश किया करती थी। यद्यपि यह कहना अनुचित होगा, लेकिन है यह यथार्थ बात कि सरला का कुँवर साहब के प्रति जो प्रेम था, वह किसी पतिभक्ता विवाहिता स्त्री से कम न था। उसने कुँवर साहब से पूछा—क्या देख रहे हैं कुँवर साहब ?

कुँवर—देखता हूँ सरला, तुम्हारी अनुपम रूप-राशि, तुम्हारे आयत लोचनों की उज्जवल ज्योति, तुम्हारे आलुलायित केश-राशि की मादक श्यामता, तुम्हारे अधर-पल्लव की लालिमा ! तुम कितनी सुन्दर हो सरला !

सरला—कौन कहता है कि मैं सुन्दर हूँ कुँवर साहब ? मैं क्या तुम्हारे योग्य हूँ ? तुमने अपने चरणों में स्थान दिया, यही मेरा सौभाग्य है। किन्तु कौन जाने, मेरा यह सौभाग्य कितने दिन तक स्थिर रह सकेगा ?

कुँवर—अच्छा सरला, इन बातों को छोड़ो, एक गाना गाओ, कुछ तबीयत बहले।

सरला—गाती हूँ नाथ, किन्तु एक बात सच-सच बता दो, तुम उदास क्यों रहते हो ?

कुँवर—कुछ कह नहीं सकता सरला ! लेकिन मन उत्साह-शून्य रहता है। सदैव द्विविधा में पड़ा रहता हूँ।

इच्छा होती है, दिन-रात तुम्हें देखा करूँ। तुम्हें देखकर मेरी तृप्ति नहीं होती सरला ! तुमने मुझ पर कौन-सा जादू कर दिया है ? तुम्हारे सामने मैं संसार को भूल गया हूँ। मेरी बुद्धि नष्ट हो गई है।

कुँवर की इस बात से सरला के मन पर बड़ा गहरा घाव हुआ। पीड़ा से विकल होकर उसने कहा—तब क्यों नहीं मुझे दूर हटाकर, मुझे भूलकर सुखी होते नाथ ?

कुँवर—अब मैं इस मार्ग पर बहुत दूर तक अग्रसर हो चुका हूँ सरला ! अब तुम्हें छोड़ भी नहीं सकता। तुम भी मुझे न त्यागना सरला ! नहीं तो मैं दीन-दुनिया कहीं का न रहूँगा।

सरला अपने आँसू न रोक सकी। जाह्नवी के प्रबल-प्रवाह से दोनों किनारे डूबने लगे। रमणी के इस अश्रु-प्रवाह में पड़कर कुँवर साहब डूबने-उतराने लगे।

कुँवर साहब ने सरला को चुप कराने की बहुत कोशिश की, किन्तु दारुण अभिमान के बाद, अयाचित सम्मान के कारण अश्रुधारा और भी प्रबल हो उठी !

कुँवर साहब व्याकुल होकर सरला को मनाने लगे। रमणी की आँखों में आँसू देखकर धैर्य धारण करना कठिन है। बहुत देर के बाद सरला चुप हुई।

इस शिथिलता और उदासी को दूर करने के लिए, उसने कुँवर साहब को एक प्याले में ढालकर एक प्रकार

का लाल तरल पदार्थ मिलाया, किन्तु जब तक उसने उसे अपने ओष्ठ-पल्लवों से लगाकर प्रसाद नहीं बना दिया, तब तक कुँवर साहब ने उसे ग्रहण न किया।

लगभग आध घण्टे के बाद ही कुँवर साहब ने देखा, उनके मानस-चक्षुओं के सामने एक नवीन जगत् की सृष्टि हुई है, जहाँ दुख का नाम भी नहीं है।

धीरे-धीरे कुँवर साहब में दृढ़ता आने लगी। कमज़ोरी का अनुभव होते ही वे वारुणी की शरण लेते। अब अपनी अन्तरात्मा से उन्हें धिक्कार की आवाज़ सुनाई न देती।

दिन-रात आसङ्ग-लिप्सा, प्रेम-सम्भाषण और मदिरा में वे अपने को भूल गए—संसार को भूल गए और भूल गए बेचारी ललिता को !!
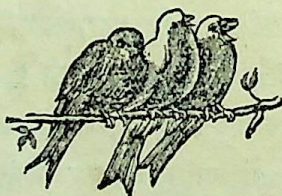
मानाथ पर गिरिजादेवी नामकी एक भद्र ब्राह्मण-विधवा के कमरे में उसकी इज़्ज़त ख़राब करने की ग़रज़ से घुसने का इल्ज़ाम लगा। पुलिस की जाँच हो जाने पर मुक़द्दमा अदालत में पेश कर दिया गया।

गिरिजा ने अपने बयान में बताया कि रमानाथ उसका पड़ोसी है, उसे वह बहुत अच्छी तरह पहचानती है, उसके पहचानने में उससे ज़रा भी ग़लती नहीं हो सकी। सौ आदमी के बीच में खड़े रहने पर भी दूर से ही वह रमानाथ को बता सकती है। इसके पहले भी रमानाथ ने कई बार आदमी भेजकर अनुचित पैग़ाम भेजे हैं। रमानाथ के मकान में एक खिड़की है, जिससे उसका आँगन दिखाई देता है। इस खिड़की से रमानाथ को बहुत

मदद मिलती थी। उसने कई तरह के बेहूदे इशारे तथा उत्पात किया, लेकिन अपनी इज़्ज़त-आबरू का ख़याल कर वह चुप रह जाती और इन उत्पातों को सहती थी।

घटना के दिन की बात का वर्णन करते हुए उसने बतलाया—लगभग ग्यारह बजे रात की बात है, वह खाना खाकर अपने कमरे में जाकर लेटी हुई थी। एकाएक रमानाथ कमरे के अन्दर घुस पड़ा। वह खाट पर बैठने ही वाला था कि गिरिजा उछलकर खाट की दूसरी तरफ़ चली गई। रमानाथ आगे बढ़ने लगा। गिरिजा ने उसे बहुत दुतकारा, लेकिन वह न माना और अन्त में झपट कर उसने गिरिजा का हाथ पकड़ लिया। इस छीना-झपटी में उसकी चूड़ियाँ फूट गईं और हाथ में गड़ गईं। उसने अपने हाथ के दाग़ भी अदालत को दिखाए। किसी तरह छुटकारा न देख, गिरिजा ने हल्ला मचाया, जिस पर कई लोग आ पहुँचे; लेकिन लोगों के पहुँचते-पहुँचते रमानाथ दीवार फाँदकर अपने घर में जा घुसा।

गिरिजा की तरफ़ से चार गवाह थे। कोल्हू ताँगा वाला, मूला क़साई, भङ्गू पान वाला और मुन्शी भवानीदयाल अर्ज़ीनवीस। कोल्हू ताँगे वाले ने कहा—सरकार, मैं दस बजे की गाड़ी से सवारी उतारकर ख़ाली ताँगे में वापस आ रहा था। हल्ला सुनकर मैं घर के अन्दर घुस पड़ा। सबसे पहले मैं ही पहुँचा। उस समय वहाँ और कोई दूसरा आदमी

न पहुँचा था। बाई के यहाँ मैं बहुत दिनों से आता-जाता हूँ। रमानाथ को भी मैं बहुत दिनों से जानता हूँ। अक्सर मेरे ही ताँगे पर वे आया-जाया करते हैं। मैं क्या जानूँ हुज़ूर कि वे ऐसे बदचलन हैं। देखने में तो वे बड़े भले-मानस जान पड़ते थे और पैसा लेने-देने में भी बड़े खरे आदमी हैं। रमा बाबू बाई के कमरे से निकल रहे थे। मुझे देखते ही वे भागे।

अन्य गवाहों ने भी घुमा-फिराकर यही बातें कहीं। मूला क़साई ने तो यहाँ तक कह डाला कि जिस समय बाबू दीवार फाँद रहे थे, उस समय उनकी कमीज़ मेरे हाथ में आगई थी, लेकिन मैं नीचे था और वह दीवार पर चढ़ चुके थे, इसलिए वह मेरे हाथ से छूट गई और रमानाथ दीवार की ओर कूद पड़े।

जहाँ तक हो सका, पुलिस ने इन गवाहों को अपनी ओर से पक्का कर दिया था।

मुक़दमे में दम तो न था, लेकिन वर्मा जी के अनुरोध से पुलिस ने मुक़दमे को अदालत में भेज दिया था। रमानाथ का बेदाग़ छूट जाना निश्चित था, लेकिन ग़रज़ रमानाथ को सज़ा दिलाने से तो थी नहीं; ग़रज़ तो थी उन्हें बदनाम करने की।

मुक़दमा मुलतवी हुआ, लेकिन शहर भर में सनसनी फैल गई। एक विधवा सच्चरित्र ब्राह्मणी के अपमान से धार्मिक हिन्दुओं का ख़ून उबलने लगा।

यहाँ पर वर्मा जी के सङ्गठन की एक आवश्यक बात का उल्लेख किए बिना आगे बढ़ना ठीक न होगा। वर्मा जी के गुप्तचरों के कई अड्डे थे। एक जेनरल मर्चेण्ट की दूकान; एक सोने-चाँदी की दूकान; एक मास्टर, एक अर्ज़ीनवीस। इस प्रकार कई बैठकें थीं, जहाँ वर्मा जी का कार्य होता था।

दिन के बारह बजे तक जो कुछ समाचार ये लोग अपनी-अपनी बैठकों में एकत्र कर पाते, उसे लेकर वे दोपहर के वक्त़ वर्मा जी के पास पहुँचा आते। वहाँ से आदेश लेकर ये लोग अपने स्थान को लौटे जाते और आने-जाने वालों में आवश्यक समाचार फैलाते तथा एकत्र करते। रात के नौ बजे वे लोग वर्मा जी की सेवा में फिर उपस्थित होते और सब बातें कह सुनाते।

आज इन अड्डों पर यही ज़िक्र छिड़ा हुआ था। सोने-चाँदी वाले सेठ ज़रा बेवक़ूफ़ थे, वे सीधे ही कहने लगे—भाई, रमानाथ ने बड़ा बुरा काम किया। ब्राह्मण-गुरु के साथ इस प्रकार की हरकत करना बहुत बेजा है। अगर उसे बदमाशी करनी ही थी तो किसी फ़ाहिशा औरत के पास जाता, चुपके से काम साधता। ऐसे ही धोखेबाज़ों से देश तथा देश-भक्तों का नाम बदनाम होता है। इस तरह की बदमाशी के साथ ही साथ लोग देश-भक्ति का बीड़ा भी उठा लेते हैं! राम! राम!! ये ही महाशय चार दिन पेश्तर बेचारे वर्मा जी को वेश्यागामी कहकर बदनाम कर रहे थे।

जेनरल मर्चेण्ट महोदय सेठ जी की तरह भोंदूमल न थे। वे अपनी दूकान पर कहने लगे—भाई, रमानाथ देखने में तो बड़ा सुशील है। बड़ा भोलाभाला, खरा आदमी जान पड़ता है। मालूम नहीं कैसे इस मामले में फँस पड़ा, हमारी तो समझ में ही कुछ बात नहीं आती है!

अगर कोई यह कहता कि रमानाथ भला आदमी है, ऐसा नहीं कर सकता, तो उसे उत्तर देते हुए वे कहते—आपका ऐसा कहना भी ठीक नहीं। कब आदमी का पैर नीचे फिसल जाय, इसे कोई नहीं जानता। इसलिए आपका यह कथन कि रमानाथ ऐसा कर नहीं सकता, ग़लत है।

यदि कोई रमानाथ को दोषी ठहराता तो वे कहते—आपका कहना भी ठीक हो सकता है। मैं तो इस तरह जल्दी में राय क़ायम नहीं करता। हाँ, बहुत सम्भव है कि रमानाथ ने वैसा किया हो।

दोनों एक ही मतलब साधते थे, लेकिन तरीक़ा अलग-अलग था। दोनों रमानाथ की बदनामी लोगों में फैलाना चाहते थे।

इसी तरह हर अड्डे पर काम जारी था। इसके अलावा मुन्नू, कल्लू, बैसाखू इधर से उधर दौड़-दौड़कर लोगों में समाचार पहुँचा रहे थे। साथ ही साथ गिरिजा के धैर्य एवं सतीत्व की तारीफ़ भी की जा रही थी।

सारे शहर में यह समाचार क्षणभर में फैल गया। जहाँ

देखो वहीं आज इसी की चर्चा छिड़ी हुई थी। बात के अन्त में अधिकांश लोग यही राय देते कि रमानाथ दोषी है। यदि उसका दोष न होता, तो व्यर्थ गिरिजा सरीखी भले घर की एक महिला को अपनी इस प्रकार बेइज्ज़ती की बात फैलाने की क्या आवश्यकता थी ?
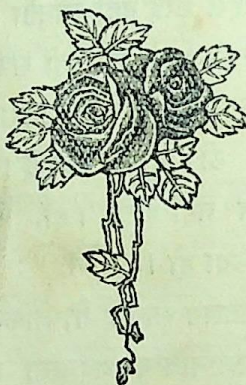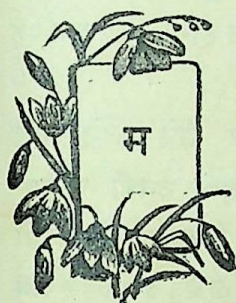
नुष्य चाहे कितना भी पतित हो जाय, उसके हृदय में कहीं न कहीं स्वच्छ कोमल स्थान रहता ही है। गिरिजा भी यद्यपि पाप-पङ्क में धँस गई थी और पाप-पुण्य का ख़याल उसे बहुत कम आता था, किसी भी प्रकार अपने उद्देश्य की सिद्धि करना ही उसने सीखा था; फिर भी जब कल सन्ध्या समय मुरलीधर उससे मिले और बहुत देर तक उसे समझाते रहे, तब वह मुरलीधर के विचारों से प्रभावित हुए बिना न रही।

आज तक उसकी भेंट मुरलीधर सरीखे सच्चे आदमी से न हुई थी और उसने ऐसी बातें सुनी भी न थीं। सच्ची बातों का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। सच्ची बातें सीधे जाकर हृदय पर असर डालती हैं। इसीलिए मुरलीधर की बातों का गिरिजा पर बहुत असर हुआ। मुरलीधर ने बड़ी

सरलता से उसके मन पर यह बात अङ्कित कर दी कि उसने

निरपराध रमानाथ पर कलङ्क लगाकर बहुत ही अनुचित किया है।

मुरलीधर के ध्यान में किसी बात के आते ही वे काम करने के लिए भिड़ पड़ते थे। रमानाथ के ऊपर जो इल्ज़ाम लगाया गया था, उससे वे स्वयं तो बहुत विचलित न हुए, किन्तु मुरलीधर घबड़ा गए। रमानाथ बहुत गम्भीर प्रकृति के आदमी थे। सत्य की अन्त में विजय होगी, इस बात पर उन्हें बड़ा विश्वास था।

मुरलीधर भी घबड़ाकर हाथ-पैर ढीले करने वाले असामी न थे। किसी भी स्थिति में पड़कर उनकी कर्तृत्व-शक्ति नष्ट न होती थी। यही उनकी विशेषता थी—यही उनका महत्व था। वे बड़े कर्मशील व्यक्ति थे। इसीलिए जब तक रमानाथ निश्चय करने में लगे हुए थे कि इस समय उनका क्या कर्त्तव्य है, तब तक मुरलीधर जाकर गिरिजा से मिल आए। मुक़द्दमा पेश होने के दिन ही मौक़ा देखकर वे सन्ध्या समय गिरिजा से मिले और उसे एक हद तक अपने अनुकूल कर लिया।

मुरलीधर के चले जाने पर वह उदास बैठी हुई उनकी बात पर विचार कर रही थी। शायद जीवन में प्रथम बार आज उसे अपने कृत्य पर पश्चात्ताप हुआ था, वह सोच रही थी—उस सच्चरित्र भोले नवयुवक को मैंने एकबार ही मिट्टी में मिला दिया। बेचारे ने मेरा क्या बिगाड़ा था? उसे तो

शायद मेरी सुध तक न रही हो। व्यर्थ ही उससे उलझ पड़ी। यह काम मैंने अच्छा नहीं किया।

ये ही विचार बार-बार आकर गिरिजा के सहज आमोद-शील चित्त पर उदासी की छाप मार रहे थे। रात्रि के दस बज चुके थे, इसी समय बाबू कुमुदविहारी वर्मा का आगमन हुआ। बग़ल में काग़ज़ों का एक बड़ा-सा पुलिन्दा दाबे वे सीधे गिरिजा के शयन-कक्ष में आ धमके। आज गिरिजा ने अदालत में जो निर्भीकता दिखलाई थी, उसके लिए उन्होंने आते ही बधाई दी; लेकिन गिरिजा चुप रही।

गिरिजा की चुप्पी से उनका ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होंने देखा कि वह आज बहुत उदास है। गिरिजा को उदास देखने का शायद आज उनका पहला मौक़ा था, इसलिए उन्होंने आश्चर्य में आकर पूछा—क्या बात है रानी? आज मुख-चन्द्र मलीन क्यों है प्यारी?

गिरिजा—यही रमानाथ की बात सोच रही हूँ।

वर्मा—तब तो रमानाथ दरअसल भाग्यवान् है। रूपवती स्त्रियाँ जिसकी चिन्ता करती हों, वह भाग्यवान् नहीं तो और क्या है? उसकी क्या बात सोच रही हो? उस पर तबीयत आ गई क्या?

गिरिजा—देखो, मज़ाक़ में तुम कई बार रमानाथ की तरफ़ मेरे झुकाव का इशारा कर चुके हो, तुम्हारी यह बात मुझे पसन्द नहीं। मालूम होता है, तुम मुझे अविश्वासिनी

समझते हो। मैं चाहे और जो कुछ भी करूँ, लेकिन तुम पर मेरा सच्चा स्नेह है। तुम्हारे लिए मैं अपनी इज़्ज़त तक का ख्याल नहीं करती हूँ। तुम जो ऐरे-ग़ैरे सभी के साथ इस प्रकार मेरा नाम जोड़ा करते हो, इससे मुझे कष्ट होता है।

वर्मा जी को गिरिजा की इस बात पर हँसी आगई। वे गिरिजा के आमोद-प्रमोद की, प्रायः सभी बातों की ख़बर रखते थे। गिरिजा से उनका बहुत-कुछ मतलब सधता था, इसीलिए वे उससे मित्रता रक्खे हुए थे। उन्होंने बात टालने के लिए गिरिजा को प्यार करते हुए कहा—वाह! तुम मज़ाक़ में इस प्रकार रूठ जाती हो? अच्छा, अपनी उदासी का कारण तो बताओ। रमानाथ की क्या बात सोच रही थीं?

गिरिजा ने मुरलीधर के आगमन की बात बतलाना ठीक न समझा। उसने कहा—मैंने आज तक ऐसी कोमलता का कभी अनुभव नहीं किया। आज बार-बार न जाने क्यों मेरे मन में यही बात आ रही है कि रमानाथ कम से कम इस मामले में निरपराध है। ऐसे सङ्गीन मामले में फँसाकर मैंने अच्छा नहीं किया। वह एकदम बर्बाद हो जायगा।

वर्मा—वाह, तुम्हारे कहने से ही तो उस पर यह मुक़दमा चलाया गया, अब तुम्हीं इस प्रकार आगा-पीछा

कर रही हो! ऐसी कमज़ोरी दिखाने से काम न चलेगा। एक धूर्त्त को दण्ड दिलाने के लिए ज़रा-सा झूठ बोलने में हर्ज ही क्या है ?

गिरिजा—नहीं, रमानाथ धूर्त्त नहीं है। उसकी शक्ल बताती है कि इसके अन्दर का दिल साफ़ है। मेरी राय तो यह है कि उस पर से मुक़दमा उठा लिया जाय। उसे किसी दूसरी तरह का दण्ड दो।

वर्मा जी ने कड़े स्वर में कहा—ठीक है, आग लगा-कर अब उसे बुझाने चली हो। यह दया-भाव ज़रा पहले दिखलाना अच्छा था। अब कुछ नहीं हो सकता। स्त्रियों की बुद्धि प्रखर होने पर भी चञ्चल होती है। ऐसा करने से उलटे तुम पर जुर्म लग जायगा और तुम सज़ा पा जाओगी। ऐसा कभी करना भी नहीं।

गिरिजा का दया-भाव इस हद तक जाने के लिए तैयार न था। अपने ऊपर विपत्ति आने की बात सुनकर वह भयभीत हो उठी। उसने कहा—न बाबा, अगर ऐसी बात है, तब मुक़दमा चलने ही दो। होम करते हाथ कौन जलाए।

वर्मा—अदालत को भी क्या तुमने खेल मुक़र्रर कर रक्खा है ? जब तबीयत हुई मुक़दमा दायर कर दिया और जब तबीयत हुई उसे उठा लिया। अब मुक़दमा उठाना तुम्हारे हाथ में नहीं है। अदालत जैसा उचित समझेगी,

करेगी। फिर तुम्हें यह भी तो याद रखना चाहिए कि इस मुक़दमे में कितने भले आदमी फँसे हैं, मुक़दमे के झूठ साबित होने से उनकी कितनी बदनामी होगी! रमानाथ का तो तुम्हें बहुत ख़्याल है, लेकिन उन भलेमानसों की, जो तुम्हें मदद दे रहे हैं और हरदम के तुम्हारे साथी हैं, तुम्हें बिलकुल चिन्ता नहीं। तारीफ़ है तुम्हारी बुद्धि की! तुममें ऐसी चञ्चलता तो आज तक मैंने नहीं देखी। मैं तो तुम्हें बड़े काम की औरत समझता था।

गिरिजा बहुत लज्जित हुई। उसने कहा—जब ऐसी बात है, तब मैं मुक़दमा उठाने के लिए न कहूँगी। आख़िर मैं औरत ही तो ठहरी। अगर एकाध ग़लती हो जाय तो तुम्हें माफ़ करना चाहिए। तुम जैसा कहोगे, मैं वैसा ही करूँगी।

वर्मा—हाँ, ज़रा सँभल कर रहना। तुम्हारे बयान पर ही मामले का ज़ोर है। अदालत में भी ऐसी कमज़ोरी न दिखाना, नहीं तो सब चौपट हो जायगा।

इसके बाद बहुत देर तक अन्य बातें होती रहीं।
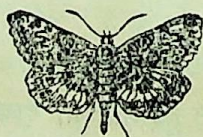
जनीति का यह ज़बरदस्त सिद्धान्त है कि किसी भी व्यक्ति को सदैव के लिए अपना साथी बनाना ठीक नहीं—काम निकल जाने के बाद उसे दूर कर देना चाहिए। नहीं तो सम्भव है, आगे चलकर वह ज्यादा ताक़तवर हो जाय, तुम्हारे भेदों के बल पर तुम पर शासन करने लगे।

वर्मा जी भी इस नीति के क़ायल थे। वे उन मनुष्यों में थे, जो अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए जितने भी नीचे जाना पड़े, जाने के लिए तैयार रहते हैं। उनकी एक ख़ासियत और थी, वे ख़ुद किसी काम को न करते। यथासम्भव दूर रहकर ही कार्य-साधन करने का उन्हें अच्छा इल्म था।

गिरिजा से उनकी जो बातें हुईं, उससे वे शङ्कित हो उठे। गिरिजा यदि रमानाथ से मिल जाय तो वर्मा जी बड़ी

विपत्ति में पड़ सकते थे। गिरिजा की बातों से उन्हें पूरा शक हो गया था कि वह या तो खुद ही रमानाथ के ऊपर मोहित हो गई है या रमानाथ इस बात की कोशिश कर रहा है कि वह गिरिजा को फोड़ ले और इसमें वह किसी हद तक सफल भी हो चुका है। यदि रमानाथ किसी दिन इसमें सफल हो गया, तो वर्मा जी की आफ़त थी।

बहुत देर तक इस पर विचार करने से वर्मा जी इसी निश्चय पर पहुँचे कि किसी भी प्रकार गिरिजा को हटाना होगा। उसके रहने से आज नहीं तो कल इस बात का डर बना ही रहेगा। इतना निश्चय कर वे उठे और गिरिजा के घर की राह ली।

आज गिरिजा पर से उस उदासी का असर एकदम हट चुका था। उसकी रसिकता पूर्णरूप में विराजमान थी। फलतः वर्मा जी का अच्छा स्वागत हुआ; लेकिन इससे उनका सन्देह कम होने के बजाय उलटे और भी दृढ़ हो गया। वे सोचने लगे—वह उन्हें चकमा दे रही है।

आज वर्मा जी की भी रसिकता खूब बढ़ गई। उन्होंने गिरिजा को ख़ूब शराब पिलाई। आमोद-प्रमोद में बहुत समय व्यतीत किया। जब गिरिजा शराब तथा आमोद-प्रमोद की गरमी में चूर हो गई, उसका मस्तिष्क गरम हो गया, तब वर्मा जी ने उससे पूछा—तुमने नाटक तो अवश्य देखा होगा?

नाटक तो वह कई बार देख चुकी थी। उस श्रेणी की स्त्रियों को नाटक में जाकर नए शिकार फँसाने की बड़ी सुविधा रहती है। वे ऐसा अपूर्व अवसर नहीं छोड़तीं। लेकिन वर्मा जी के इस प्रश्न पर उसे शङ्का हुई। वर्मा जी की तरह आज उसके मन में भी सन्देह बैठा हुआ था। फिर भी उसने उत्तर में कहा—हाँ, नाटक तो मैंने कई बार देखा है।

वर्मा—तुम्हारी इच्छा नाटक करने की नहीं होती क्या ? पुरुष बनकर निकलने की तबीयत तुम्हारी होती है या नहीं ?

गिरिजा—कई बार हुई है।

वर्मा—यदि तुम पुरुष-वेष में बाहर निकलने लग जाओ तो तुम्हारे पास जो इस प्रकार लुक-छिपकर आना पड़ता है, वैसा न करना पड़े। हरदम तुम्हें लेकर घूमने तथा यात्रा करने की सुविधा हो। गिरिजा, तुम पुरुष-वेष में बाहर निकला करो।

गिरिजा—निकली तो कई बार हूँ, लेकिन हरदम ऐसा नहीं करती। सरला के पास मैं जब कभी जाती थी, पुरुष-वेष में ही जाती थी।

वर्मा—आजकल तुम उसके पास क्यों नहीं जातीं-आतीं ?

गिरिजा—सुनती हूँ, वह परदे में रहती है। उसके पास ...ई आ-जा नहीं सकता।

वर्मा—हाँ, है तो परदे में, लेकिन आखिर ठहरी तो रण्डी

हो। तुम वहाँ जाकर उससे मेल-जोल पैदा करो। तुम्हारे पुरुष-वेष में आने-जाने में कोई रुकावट न होगी। इसका इन्तज़ाम कर दिया जायगा। मुझे सरला से एक काम लेना है। तुमसे मेल-जोल बढ़ जाने पर ही वैसा हो सकेगा।

गिरिजा राज़ी हो गई। वह वर्मा जी की नाराज़गी दूर कर, उन्हें फिर से पूर्ववत् अनुरक्त करना चाहती थी। इसीलिए बिना कुछ अधिक पूछताछ किए ही वह उनकी बात मान गई।

यहाँ पर एक और बात स्पष्ट कर देना होगा, वर्मा जी सरला पर अनुरक्त थे। उससे उनकी मुलाक़ात दो-एक बार ही हुई थी। सरला के कुँवर साहब के पास पहुँच जाने पर भी वर्मा जी ने उससे मिलने की कोशिश की, लेकिन कोरा उत्तर मिलने पर वे चुप रह गए। उनका दिल उस पर लगा ही रहा।

वर्मा जी सरला को कुँवर साहब के पास से हटाकर कम से कम कुछ दिनों के लिए अपने पास गिरिजा के स्थान में रखना चाहते थे, क्योंकि गिरिजा के हटाने का निश्चय तो हो ही चुका था।

इस उपाय से उनके दोनों काम सध रहे थे। एक तीर से दो शिकार करने वाले थे—गिरिजा से छुटकारा और सरला से मिलन!

य

छत्तीसवाँ परिच्छेद
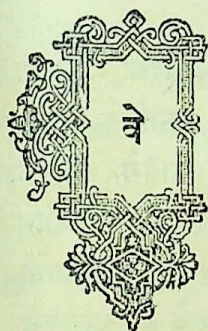
श्या को अधिकांश लोग अपने विलास की सामग्री समझकर आदर की दृष्टि से देखते हैं। खाने-पीने, उठने-बैठने की तरह उसकी दृष्टि में यह भी एक साधारण व्यापार है, किन्तु एक दल अर्द्ध-शिक्षित लोगों का ऐसा भी है, जो वेश्याओं को समाज का एक आवश्यक अङ्ग समझता है, और उनके अस्तित्व को समाज के लिए कल्याणकारी क़रार देता है। इसका कहना है कि यदि वेश्याओं का अस्तित्व मिटा दिया जाय, तो समाज में बड़ा अनिष्ट उठ खड़ा हो।

ये लोग वेश्याओं को समाज के लिए नाली या मोरी समझते हैं। नाली यद्यपि अत्यन्त घृणित, दुर्गन्धियुक्त पदार्थ है, फिर भी नगर या मकान की सफ़ाई के लिए उसका होना अत्यन्त आवश्यक है। उसके न रहने से आज जो मल-मूत्र, कूड़ा-करकट उसके ज़रिए बाहर हो जाता है,

वह नगर या मकान के अन्दर ही पड़ा रहकर अनेक भयङ्कर रोगों की सृष्टि करेगा; ठीक इसी प्रकार वेश्या भी समाज के दूषित विचार को मिटाने के लिए, पुरुषों की पाशविकता को दूर करने के लिए साधन-स्वरूप है। उसके ज़रिए लोगों की—स्त्री तथा पुरुष दोनों की—अनुचित सम्भोग-लिप्सा मिट जाती है, और इस प्रकार समाज की एक तरह से सफ़ाई हो जाती है।

अब यदि वेश्याओं का अस्तित्व मिटा दिया जाय, तो समाज के बिगड़े-दिल युवक-युवतियों के मानसिक विकार अतृप्तावस्था में उनके अन्दर ही पड़े रह जायँगे, जिसके चरितार्थ करने के लिए समाज के अन्दर ही अन्दर वे लोग दूषित कार्य-प्रणाली की रचना करेंगे और आज वे अपनी जिस लालसा को वेश्या के समीप पूरी करते हैं, कल उसे कुल-वधुओं के ज़रिए करने पर मजबूर होंगे। इस प्रकार समाज के अन्दर एक नया रोग उठ खड़ा होगा, जो नाना प्रकार की नई-नई कठिनाइयों की रचना कर समाज का भारी अमङ्गल करेगा।

एक तीसरे तरह के शिक्षित लोग भी हैं, जो सब वेश्याओं को एक स्थान में एकत्रित कर तोप से उड़ा देना चाहते हैं। ये लोग वेश्याओं को सर्वथा पतित, मोह-माया-शून्य, हृदयहीन पशु मानते हैं। ये लोग वेश्या को मनुष्य की श्रेणी में रखने से इन्कार करते हैं। उसे भी दुख-सुख

का अनुभव होता है अथवा उसका हृदय भी आदर के प्रति आकर्षित तथा अनादर से विमुख रहता है, इस बात को वे एकदम अस्वीकार करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो यह मानते हों कि वेश्या की ज्ञानेन्द्रियाँ सर्वथा मृत नहीं हो जातीं—उसमें भी मनुष्यता का अंश शेष रहता है।

इस बीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने मनुष्य की कार्य-प्रणाली में, उसकी विचार-धारा में तथा उसके भावों तक में परिवर्त्तन कर दिया है; किन्तु वह मनुष्य-हृदय को बदल न सका। वह अभी भी वैसा ही है। इस युग में भी ऐसे लोग बहुत कम हैं, जिनके मन में सन्तान-प्राप्ति की प्रबल लालसा न हो।

मनुष्य की बनावट में केवल हाड़-मांस ही हो, ऐसा नहीं है; उसमें कई कोमल तथा सूक्ष्म तत्व मिले हुए हैं। इसीलिए केवल भौतिक या स्थूल सुख से उसे सन्तोष नहीं होता। शरीर-सुख के साथ-साथ इन कोमल तथा सूक्ष्म तत्वों की तृप्ति होने पर ही मनुष्य को पूर्ण आनन्द मिलता है। इसी से हम देखते हैं कि धनी से धनी और उच्च से उच्च व्यक्ति संसार में दुखी रहते हैं।

स्त्री-पुरुष के मिलने से जिस सुख की प्राप्ति होती है, उससे उसके कोमल एवं सूक्ष्म तन्तुओं की तृप्ति नहीं होती। इसीलिए दम्पति का प्रेम बिना सन्तान के पूर्णता को प्राप्त

नहीं होता। सन्तान-प्रेम की उत्पत्ति कोमल तन्तुओं से सम्बन्ध रखती है। प्रत्येक मनुष्य में सन्तान-प्राप्ति की प्रबल इच्छा का यही कारण है।

वेश्या को यद्यपि प्रेम करने के बहुत मौक़े मिलते हैं और रोज़ दर्जनों प्रेमी उसके यहाँ की धूल छाना करते हैं, लेकिन उसको प्रेमजनित सुख की पूर्णता का अनुभव नहीं होता। वेश्या-जीवन का सबसे दुखद एवं उदासीन भाग यही होता है। इस स्वर्गीय सुख से उसे सदैव वञ्चित रहना पड़ता है।

वह ऐसी स्थिति में रहती है कि सन्तान उसके लिए सुख के स्थान में दुख पहुँचाती, आर्थिक हानि का कारण बनती और स्वयं जन्मभर कलङ्क का टीका लगाए घूमती है। सन्तान वेश्या के लिए वाञ्छनीय नहीं।

जिस प्रकार घोर पापी या किसी प्रचण्ड डाकू के लिए राज्य की ओर से क़ानून का आश्रय उठा लिया जाता है, वह जरायम पेशा क़रार दे दिया जाता है, उसी प्रकार प्रकृति तथा समाज की परिस्थिति दोनों वेश्या को सन्तान-सुख के पूर्णानन्द से वञ्चित रखने का विधान करती हैं या स्वयं भी कभी-कभी उसे इस प्रकार की व्यवस्था करनी पड़ती है।

जिस प्रकार पूर्णचन्द्र के लिए समुद्र अपना नीलाञ्चल फैलाकर चन्द्र की ओर बढ़ता है, किन्तु कूल-स्थित चट्टानों से टकराकर वापस आ जाता है, उसी प्रकार वेश्या का

हृदय भी सन्तान के लिए तरङ्गित होता है; किन्तु निष्ठुर आघात खाकर चुप हो रहता है।

मनुष्य की कई प्रवृत्तियाँ सुषुप्तावस्था में रहती हैं; किन्तु एक समय आता है, जब घटना-विशेष के हलके आघात से ही वे जाग्रत होकर क्रन्दन करने तथा उथल-पुथल मचाने लग जाती हैं।

सरला का मातृ-स्नेह भी कुँवर साहब के यहाँ आने पर सहसा जग उठा, ललितादेवी की जिस शिशु-बालिका का ज़िक्र हम किसी पिछले परिच्छेद में कर आए हैं, वह कुँवर साहब से बहुत हिली-मिली थी। कुँवर साहब का भी बालिका के प्रति प्रगाढ़ स्नेह था। वह अक्सर कुँवर साहब के साथ आया-जाया करती और उन्हीं के साथ रहती थी।

कुँवर साहब के साथ बालिका वनलता भी सरला के यहाँ आने-जाने लगी थी। पहले वह कभी-कभी आती, किन्तु अब वह सरला से इतनी हिल-मिल गई कि उसी को अपनी माँ समझने लगी। सरला के पास से अलग होने में वह बहुत मचलती। कभी-कभी वह रात को भी उसी के पास रहने के लिए ज़िद करने लगती। वयस्क लोगों की अपेक्षा बालक स्नेह का आह्वान जल्दी सुनते हैं—प्रेम पह-चानने की शक्ति उनमें अधिक होती है।

सरला भी बालिका के प्रति अपूर्व स्नेह का अनुभव

करने लगी। बालिका के चले जाने पर उसे ऐसा बोध होता,

मानो उसकी कोई अति प्रिय वस्तु गुम गई हो। किसी काम में उसका मन न लगता। दिन-रात बालिका को अपने हृदय से चिपकाए रहने के लिए उसके मन में तूफ़ान उठा करता।

अपनी सन्तान के लिए हमारे हृदय में जो स्वाभाविक स्नेह रहता है, कभी-कभी अवस्था-विशेष में पड़कर दूसरे की सन्तान के लिए हमारे मन में उससे भी अधिक स्नेह उमड़ पड़ता है। अपने पति के प्रति एक कुल-बधू का जितना प्रेम रहता है, कभी-कभी किसी कुलटा में उसके यार के प्रति उससे अधिक प्रेम देखा गया है। ऐसा अक्सर अपनी चीज़ के अभाव में ही होता है।

अपने पर हमारा जो प्रेम होता है, वह यमुना नदी की तरह गम्भीर, चन्द्रिका की तरह शीतल और समुद्र की तरह शान्त होता है; किन्तु हमारा यही प्रेम, जब किसी दूसरे की वस्तु पर जा अटकता है, जो वास्तव में हमारी नहीं है, तो यह पहाड़ी नदी की तरह तीव्र, सूर्य की किरणों की तरह प्रखर तथा बवण्डर की तरह प्रचण्ड हो उठता है।

अभाव के समय तृष्णा प्रखर हो उठती है। अभाव-पूर्ति के लिए हमारे प्राण अकुला जाते हैं, भीतर एक प्रकार की खलबली-सी मच जाती है। ऐसे समय में दूसरे की चीज़ को पाते ही उस पर टूट पड़ते हैं, उसे अपने हृदय से घेर कर छिपा लेते हैं; किन्तु हमें इस बात का भी ज्ञान बना

रहता है कि वास्तव में यह हमारी नहीं है। यदि कुछ दिनों के लिए हमारी हो भी गई हो, तो एक दिन निश्चय ही वह जहाँ की है वहाँ चली जायगी। इसीलिए इस थोड़े से अवकाश में ही हम अपनी सारी हसरतें निकालने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। हाय! फिर यह अवसर न मिलेगा, यह भावना हृदय को आलोड़ित और हमारे प्रेम को शान्त बना देती है।

सरला के मन की भी ठीक यही दशा थी। बालिका के स्नेह में वह बावली बन गई थी।

पर सरला का हृदय कितना भी शुद्ध क्यों न हो, उसमें स्नेह की मात्रा कितनी भी क्यों न हो, वनलता के प्रति उसके मन में कितनी ही मङ्गलाकांक्षा क्यों न हो, फिर भी वह वेश्या है। उसका विश्वास कौन करता है? हृदय की परख करने वाले संसार में कितने हैं? संसार का विचार, उसका न्याय, तो बाहरी आधार पर निर्भर रहता है। अन्तर देखने की तो उसमें शक्ति ही नहीं है।

ऐसी दशा में भला कोई सद्गृहस्थ अपनी सन्तान—वह भी कन्या—उसके सुपुर्द कैसे कर देता। कुँवर साहब भी इसी तरह के विचार में, इसी दुविधा में पड़े हुए थे; किन्तु स्वभाव से कोमल होने के कारण एकाएक इस कड़ुवे प्रसङ्ग पर कुछ कहने की उनको हिम्मत न पड़ती थी। सरला से उन्हें भारी सङ्कोच होता था। वे जानते थे कि सरला का

मानो उसकी कोई अति प्रिय वस्तु गुम गई हो। किसी काम में उसका मन न लगता। दिन-रात बालिका को अपने हृदय से चिपकाए रहने के लिए उसके मन में तूफ़ान उठा करता।

अपनी सन्तान के लिए हमारे हृदय में जो स्वाभाविक स्नेह रहता है, कभी-कभी अवस्था-विशेष में पड़कर दूसरे की सन्तान के लिए हमारे मन में उससे भी अधिक स्नेह उमड़ पड़ता है। अपने पति के प्रति एक कुल-वधू का जितना प्रेम रहता है, कभी-कभी किसी कुलटा में उसके यार के प्रति उससे अधिक प्रेम देखा गया है। ऐसा अक्सर अपनी चीज़ के अभाव में ही होता है।

अपने पर हमारा जो प्रेम होता है, वह यमुना नदी की तरह गम्भीर, चन्द्रिका की तरह शीतल और समुद्र की तरह शान्त होता है; किन्तु हमारा यही प्रेम, जब किसी दूसरे की वस्तु पर जा अटकता है, जो वास्तव में हमारी नहीं है, तो यह पहाड़ी नदी की तरह तीव्र, सूर्य की किरणों की तरह प्रखर तथा बवण्डर की तरह प्रचण्ड हो उठता है।

अभाव के समय तृष्णा प्रखर हो उठती है। अभाव-पूर्ति के लिए हमारे प्राण अकुला जाते हैं, भीतर एक प्रकार की खलबली-सी मच जाती है। ऐसे समय में दूसरे की चीज़ को पाते ही उस पर टूट पड़ते हैं, उसे अपने हृदय से घेर कर छिपा लेते हैं; किन्तु हमें इस बात का भी ज्ञान बना

रहता है कि वास्तव में यह हमारी नहीं है। यदि कुछ दिनों के लिए हमारी हो भी गई हो, तो एक दिन निश्चय ही वह जहाँ की है वहाँ चली जायगी। इसीलिए इस थोड़े से अवकाश में ही हम अपनी सारी हसरतें निकालने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। हाय! फिर यह अवसर न मिलेगा, यह भावना हृदय को आलोड़ित और हमारे प्रेम को शान्त बना देती है।

सरला के मन की भी ठीक यही दशा थी। बालिका के स्नेह में वह बावली बन गई थी।

पर सरला का हृदय कितना भी शुद्ध क्यों न हो, उसमें स्नेह की मात्रा कितनी भी क्यों न हो, वनलता के प्रति उसके मन में कितनी ही मङ्गलाकांक्षा क्यों न हो, फिर भी वह वेश्या है। उसका विश्वास कौन करता है? हृदय की परख करने वाले संसार में कितने हैं? संसार का विचार, उसका न्याय, तो बाहरी आधार पर निर्भर रहता है। अन्तर देखने की तो उसमें शक्ति ही नहीं है।

ऐसी दशा में भला कोई सद्‌गृहस्थ अपनी सन्तान—वह भी कन्या—उसके सुपुर्द कैसे कर देता। कुँवर साहब भी इसी तरह के विचार में, इसी दुविधा में पड़े हुए थे; किन्तु स्वभाव से कोमल होने के कारण एकाएक इस कड़ुवे प्रसङ्ग पर कुछ कहने की उनको हिम्मत न पड़ती थी। सरला से उन्हें भारी सङ्कोच होता था। वे जानते थे कि सरला का

उसके प्रति माता का सा स्नेह है, तथा सरला को बालिका के अलग होने से भारी कष्ट होगा; लेकिन शुद्ध स्नेह अभेद्य कवच हो सकता है, इस बात पर उन्हें विश्वास न होता था।

जब बालिका की सरला के पास आमद-रफ़्त बढ़ गई और जब वह रात को भी उसी के पास रहने के लिए ज़िद करने लगी, तब वे चुप न रह सके। उन्होंने नौकरों को सख़्त ताकीद कर दी कि वनलता सरला के पास न जाने पाए। उस दिन से उसका जाना एकदम बन्द हो गया।

जब कई दिनों तक बालिका न आई, तब सरला ने सबसे पूछना शुरू किया। कुँवर साहब से भी पूछा, किन्तु किसी ने साफ़ उत्तर न दिया। वह जिससे पूछती, वही बात टालने की कोशिश करता। इस प्रकार उत्तर न पाने से वह और भी घबड़ा गई। लाचार होकर उसने अपना एक ख़ास आदमी बालिका का समाचार लाने के लिए भेजा, किन्तु वह भी बिना साफ़ उत्तर लिए ही लौट आया।

बात यह थी कि कुँवर साहब ने वनलता का आना-जाना तो रोक दिया, लेकिन ऐसा करने का कारण बताकर वे सरला के मन को आघात पहुँचाना न चाहते थे। इसीलिए सरला को साफ़ जवाब न मिलता था। सभी गोल-मोल जवाब देकर टाल देते थे।

दो-चार दिन तक तो उसने किसी प्रकार अपने मन को सँभाला; लेकिन एक दिन उसकी तबीयत बहुत ही घबड़ाई,

बालिका को देखने के लिए उसके प्राण नाचने लगे। सन्ध्या होते-होते वह अपने को रोक सकने में एकदम असमर्थ हो गई।

बावली सरला बालिका को देखने के लिए कुँवर साहब के निवास-स्थान की ओर चल पड़ी! कुँवर साहब के मकान पर पहुँचकर वह सीधे भीतर घुस पड़ी। वहाँ के सभी नौकर-चाकर उसे जानते थे। उसके इस प्रकार पैदल चले आने से सबको आश्चर्य अवश्य ही हुआ, लेकिन उससे कुछ पूछने या रोकने की हिम्मत किसी को न हुई—सब चुपचाप रहे।

वहाँ पहुँचकर अकस्मात् उसकी मुलाक़ात सबसे पहले ललितादेवी से हो गई। उसका पहला सवाल था—वनलता कहाँ है?

ललितादेवी तो सरला के मुख पर का उचक्का एवं रूखा भाव देखकर ज़रा डरीं, किन्तु उन्हें याद आगया—यही सरला है। वे सरला के बालिका के प्रति अपूर्व अनुराग की बात सुन चुकी थीं।

सरला की दशा पर उन्हें दया आ गई। वे स्त्री थीं, स्त्री के मन का भाव समझ सकती थीं। उन्होंने सोचा—यह पतिता तो है, किन्तु बालिका पर इसका सच्चा स्नेह है। सच्चे स्नेह से कभी किसी का अमङ्गल नहीं होता। सच्चा प्रेम माता की गोद की तरह आश्रय प्रदान करने वाला सुखद

आश्रय है, इसके द्वारा वनलता का कोई अनिष्ट नहीं हो सकता।

उन्होंने वनलता को लाकर सरला की गोद में दे दिया। जिस प्रकार बिरनाई गाय अपने बछड़े के समीप पहुँचकर उसे चाटने लगती है और क्रोध को भूल जाती है, उसी प्रकार सरला की सारी उत्तेजना वनलता को गोद में पाकर भाग गई। अब उसने देखा, उसके सामने गृहलक्ष्मी ललिता-देवी खड़ी हैं। उनकी क्षीण आकृति, धँसी हुई आँखें, मुर्झाया हुआ मुख तथा सादी साड़ी देखकर सरला का जी धक से हो गया। एक क्षण में उसकी आँखों के सामने सारा रहस्य झलक गया। ललितादेवी की इस दशा का वही कारण है, यह सोचकर उसे कष्ट होने लगा। ललिता देवी का दुख सहस्र गुणा होकर उसके हृदय पर आघात करने लगा।

ललितादेवी ने उसके प्रति दया दिखाकर अपने हृदय के ऊँचेपन का ऐसा परिचय दिया था कि वह चकरा गई। जिसने उनके सौभाग्य-सूर्य को राहु की तरह ग्रस लिया; जिसने उन्हें सिंहासन से उठाकर धूल में फेंक दिया; जिसने इस पुष्प का सब मधु चुराकर उसे नीरस, श्रीहीन कर दिया वही सरला उनके सामने खड़ी थी—भिखारिणी रूप में। अपने उस सर्वस्वापहारी के प्रति घृणा से मुँह फेर लेने, उसे अपमानित करने तथा धक्के मारकर अपने आँगन

से निकाल देने के बदले उन्होंने उसके प्रति दया दिखाकर उसे भीख दी। पति को तो सौंपा ही था, आज स्वेच्छा से कन्या भी सौंप दी। इस महा महिमामयी, दया-मूर्त्ति के सामने सरला का सिर लज्जा से झुक गया—विजेता को विजित से हार माननी पड़ी। उसकी विजय झूठी थी, यही विजय सच्ची है।

वह अच्छी तरह जानती थी कि कुँवर साहब के स्त्री है, लेकिन इस ओर उसका ध्यान ही न जाता था। आज उसे बोध हुआ, मैं दूसरे के सौभाग्य का अपहरण करके सुखी हो रही थी। कुँवर साहब पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। आह! एक सती स्त्री को मैंने कितना कष्ट दिया! मेरे भाग्य ही फूटे हैं! दूसरे के धन को लेकर कब तक चैन करूँगी? यह उचित नहीं।

वनलता के उससे अलग किए जाने का कारण भी सहसा उसके मस्तिष्क में चमक गया—वह वेश्या है, उसकी संरक्षकता में कोई कैसे अपनी कन्या को छोड़ सकता है? वह विश्वास के योग्य नहीं है। चोर-डाकू पर कोई कैसे विश्वास कर सकता है?

वनलता से भी अलग होना पड़ेगा? सौ बिच्छुओं के काटने की पीड़ा का उसे बोध हुआ। आज उसे मालूम हुआ कि वेश्या बनकर उसने कैसा घोर अपराध किया है। वेश्या बनने के लिए आज उसे [illegible] से पीड़ा हुई। ललिता-

देवी के पैर छूकर उसने कहा—देवी, अब आपको और अधिक दिन कष्ट न दूँगी ।

उनके कुछ उत्तर देने के पूर्व ही वह सपाटे से बाहर चली गई ।

सैंतीसवाँ

परिच्छेद

ललितादेवी के यहाँ से वापस आकर सरला सीधे अपने बिस्तर पर जा पड़ी। आज फिर उसे नए रूप से अपना पथ निश्चित करना होगा। ललिता देवी के सामने ही उसने यह निश्चय किया था कि वह अब और अधिक दिनों तक उनके सौभाग्य-सूर्य के लिए राहु न बनी रहेगी।

नवीन मार्ग की बात सोचकर सरला का हृदय काँप उठा। फिर उसे वही मार्ग ग्रहण करना होगा, फिर उसे अमानुषिक अत्याचार सहना होगा। उसके जीवन का यह क्रम कितने दिनों तक जारी रहेगा ? क्या कभी उसे शान्ति मिलेगी ही नहीं ?

नवीन पथ निर्देश करते समय उसे अपने पिछले इतिहास का सिंहावलोकन कर लेना आवश्यक जान पड़ा। वह अपने जीवन की पिछली घटनाओं पर एक-एक कर विचार

करने लगी—यदि उस रात को मैं दुष्टों के चङ्गुल में न पड़ जाती, यदि उसके बाद भी किसी सज्जन पुरुष ने मुझे आश्रय दिया होता, तो मेरी यह दशा क्यों होती ? क्यों मैं इस प्रकार गली-गली मारी फिरती ? क्रोध, सन्ताप, लज्जा, घृणा एक-एक कर उसके मस्तिष्क को आलोड़ित करने लगे।

कुँवर साहब के आश्रय में आकर एक प्रकार से वह सुखी थी, किन्तु अब वह विचारने लगी—कुँवर साहब की बात सोचना तो अब व्यर्थ ही है। उन पर मेरा कोई अधिकार नहीं, किसी की सोने की गृहस्थी मिट्टी में मिलाना उचित नहीं। उनके स्नेह पर मेरा नहीं, ललितादेवी का अधिकार है।

इसके बाद उसे वनलता की याद आई। हा दुर्भाग्य ! उसे आज किसी को सन्तान समझने का, सन्तान की तरह स्नेह करने का भी अधिकार नहीं है। वेश्या-जीवन का शाप !

रात के दो बज चुके थे। कड़ाके की ठण्ढ पड़ रही थी, लेकिन सरला पसीने से तर हो रही थी। उसका मस्तिष्क गरम न था, ख़ून नसों में तेज़ी से दौड़ रहा था। वेदना असह्य हो जाने पर उसने आल्मारी खोली, शराब निकालकर एक ग्लास गटागट गले के नीचे उतार गई।

उसने सोने का बहुत उपाय किया, लेकिन सारी रात उसे पलभर के लिए भी नींद न आई। चुपचाप पड़ी-पड़ी वह करवटें बदलती रही।

सबेरा होने पर वह बिस्तर छोड़कर उठी। प्रातःकाल की स्फूर्तिदायिनी, स्वास्थ्यकर वायु के लगने से उसका मस्तिष्क कुछ ठण्डा हुआ।

प्रातःकृत्य से निवटकर वह फिर बिस्तर पर जा लेटी और विचार-मग्न हो गई। अभी तक वह अपना आगे का कार्य-क्रम निश्चित न कर सकी थी। कुँवर साहब के आश्रय को छोड़कर वह क्या करेगी, कहाँ जायगी, यही उसे तय करना था।

लेकिन बहुत देर तक विचार करते रहने पर भी उसे पता न चलता था कि वह क्या करे। दोपहर होगया, लेकिन उसकी विचार-धारा न रुकी। चौबीस घण्टे होगए, अभी तक उसके मुँह में पानी का एक घूँट भी न पड़ा था। दारुण ज्वाला से उसका हृदय दग्ध हो रहा था।

वह इन्हीं विचारों में मग्न थी। इसी समय पुरुष-वेष-धारिणी गिरिजा ने उसके कमरे में प्रवेश किया। सरला के मुख पर नज़र पड़ते ही गिरिजा जान गई कि यह आज रातभर सोई नहीं है। उसकी भौंहें चढ़ी हुईं तथा आँखें लाल थीं। उसने अनुमान किया कि कुँवर साहब से किसी बात पर रूठ गई है। रातभर अभिमान-वश रोती रही होगी, इसीलिए इसकी यह दशा हो रही है। उसने सहानुभूति जताते हुए सरला से कहा—छोटी-छोटी बातों के लिए इस प्रकार अभिमान कर रोना-धोना अच्छा नहीं, साथ रहने से

इस प्रकार के लड़ाई-झगड़े तो हुआ ही करते हैं। प्रेम को तरोताज़ा करने के लिए ये आवश्यक भी हैं। बिना इनके बीच-बीच में छिड़े प्रेम शिथिल पड़ जाता है। ख़ैर, बताओ तो किस बात पर झगड़ा हुआ ?

सरला—मेरी तबीयत इस समय बहुत बिगड़ी हुई है। तबीयत ज़रा शान्त हो लेने दो, मैं सब कुछ बता दूँगी।

गिरिजा—मालूम होता है, आज रातभर तुम सोई नहीं। ज़रा देर सो रहो, तबीयत आप ही हलकी हो जायगी।

सरला—सोने की बहुत कोशिश की, मगर नींद आती ही नहीं। कुछ देर आराम करने का इरादा तो मेरा भी है।

गिरिजा ने कहा—अच्छा, मैं तुम्हें सुलाने का उपाय करती हूँ।

गिरिजा ने शराब निकालकर सरला को पिलाई। सरला बिना कुछ उत्तर दिए ही चुपचाप ग्लास ख़ाली कर गई। गिरिजा ने भी यह अवसर छोड़ना ठीक न समझकर ख़ुद भी एक ग्लास ढाल ली।

सरला को लिटाकर उसने दासी को बुलाया और उसके तलवों में तेल की मालिश करने की आज्ञा दी। उसके सिर में वह ख़ुद तेल मलने लगी। कुछ देर के बाद सरला को दरअसल नींद आ गई।

उसके सो जाने के बाद गिरिजा ने सोचा—इसकी तबीयत बिगड़ गई है। जब तक यह सोकर उठ न जाय, तब

तक यहीं रहना चाहिए। सोकर उठते ही इसकी तबीयत अवश्य ही हलकी हो जायगी। उसी समय मेरा जाना ठीक होगा।

वह एक किताब उठाकर पढ़ने लगी। थोड़ी देर के बाद ही उसे भी नींद-सी आने लगी। वह सरला के पास ही उसी खाट पर लेट गई और दो मिनट के अन्दर ही उसकी नाक बजने लगी।

सरला को नींद में बोध हुआ, वनलता आकर उसके पास सोई है। वह बड़ी प्रसन्न हुई। उसने करवट बदल कर बालिका को अपने हृदय से चिपका लिया।

इधर सरला की दासी ने आकर चुपके से वर्मा जी को सब समाचार दे दिया। वहाँ का समाचार वह सदैव वर्मा जी को दे जाया करती थी।

वर्मा जी यह समाचार पाकर बहुत प्रसन्न हुए। सफलता अधिक दूर न थी। अपनी साइकिल उठाकर उन्होंने कुँवर साहब के बँगले की ओर प्रस्थान किया।

कुँवर साहब से वर्मा जी की अच्छी जान-पहचान थी। जिस समय वर्मा जी वहाँ पहुँचे, कुँवर साहब बैठक में ही भोजन करने के बाद आराम कर रहे थे। आजकल या तो वे बाहर ही रहते या घर में रहने का अधिकांश समय बैठक में ही बिताया करते थे। घर के भीतर जाने से उन्हें अरुचि-सी हो गई थी।

वर्मा जी का स्वागत करते हुए उन्होंने उनके इस समय आने का कारण पूछा।

वर्मा—एक आवश्यक काम से ही आया हूँ, लेकिन सोच रहा हूँ, कहूँ या न कहूँ।

कुँवर—कहिए-कहिए, ऐसी कौन-सी बात है, जिसके कहने में आप मुझसे सङ्कोच कर रहे हैं।

वर्मा—अच्छा पहले आप यह बताइए कि सरलाबाई का आजकल क्या हाल-चाल है ?

कुँवर साहब को वर्मा जी का यह प्रश्न अभद्रतापूर्ण मालूम हुआ। यह उनकी निजी बात थी, जिसमें दख़ल देने का किसी दूसरे को कोई हक़ न था। अपनी अप्रसन्नता को रोककर उन्होंने कहा—आपका मतलब क्या है ? किस प्रकार का हाल-चाल आप जानना चाहते हैं ?

वर्मा—यही कि उसका आपके प्रति आजकल कैसा व्यवहार है ? क्या आप उस पर विश्वास करते हैं ? क्षमा कीजिएगा, किसी ख़ास वजह से तथा मित्रता के अनुरोध से मैंने आपके सामने यह अप्रिय प्रसङ्ग उठाया है।

कुँवर—यदि कोई दूसरा व्यक्ति इस प्रसङ्ग को छेड़ता तो शायद उसकी बात का मैं उत्तर तक न देता, लेकिन जब आप ख़ास सबब से यह बात पूछ रहे हैं, तब बताए देता हूँ। आपको भी यह ख़ास सबब बताना होगा।

वर्मा—अवश्य ही बताऊँगा। उसे बताने के लिए ही तो मैं यहाँ आया हूँ।

कुँवर—उसका व्यवहार तो मेरे प्रति सर्वथा कपट-शून्य मालूम होता है। मैं तो उसे अविश्वासिनी नहीं समझता। ऐसा समझने का कोई कारण नहीं है, लेकिन इससे आपका मतलब क्या है ?

वर्मा—तब तो मुझे यही कहना पड़ेगा कि आप भारी भूल कर रहे हैं। आप उसके पूर्व इतिहास को जानते हुए भी इस प्रकार सरलतापूर्वक उस पर विश्वास कर रहे हैं, यह आश्चर्य की बात है। आख़िर वह वेश्या है। इस प्रकार अन्ध-विश्वास में पड़कर उसके पीछे पागल बनना आपके योग्य नहीं है। आप मेरे मित्र हैं, इसीलिए मैं आपका भ्रम दूर कर देना चाहता हूँ।

कुँवर—उसके पूर्वेतिहास से आप उसके आचरण का अन्दाज़ न लगाइए। मुझे विश्वास है, वह धोखा नहीं दे सकती। मैंने उसकी कई बार परीक्षा ली है। वेश्या होने पर भी वह एक अनुपम नारी-रत्न है।

वर्मा—मैं कहता हूँ, आपका ख़्याल ग़लत है। आवश्यकता पड़ने पर मैं अपनी बात सिद्ध कर दूँगा।

कुँवर—आप एक विश्वसनीय व्यक्ति हैं। आपकी बात पर अविश्वास करना आपका अपमान करना है, लेकिन मैं कहता हूँ, यह आपका भ्रम है। जब तक मैं अपनी आँखों

से कोई बात न देख लूँ, तब तक मैं इसे नहीं मान सकता, इसके लिए क्षमा कीजिएगा।

वर्मा—अगर मैं आपकी आँखों के सामने सरला को अपने यार के साथ दिखला दूँ, तब तो आप मानिएगा न?

कुँवर—तब तो मानना ही पड़ेगा; लेकिन मैं कहता हूँ, आप ऐसा दिखा नहीं सकते। सरला का मुझ पर जो स्नेह है, वह एक कुल-वधू से कम नहीं। दूसरे पुरुष की छाया से उसे नफ़रत है।

वर्मा—अच्छा, कपड़े पहनकर मेरे साथ चलिए, आपका भ्रम-निवारण हो जायगा। कई दिनों से मैं एक नवयुवक को सरला के यहाँ आते-जाते देखता हूँ। आज भी वह वहाँ गया है। मैं अभी उसे पीछे के रास्ते से घुसते देखकर आ रहा हूँ। मुझे विश्वास है, वह अभी वहीं होगा।

कुँवर नगेन्द्रनाथ सिंह कपड़े पहनकर वर्मा साहब के साथ चले। सरला के निवास-स्थान पर पहुँचकर वर्मा जी ने कुँवर साहब से कहा—देखिए, उत्तेजित होकर कोई गोल-माल न खड़ा कर दीजिएगा। सब बातें देखकर, अपनी आँखों का भ्रम मिटाकर मुझे बुलाइएगा, मैं सब मामला ठीक कर दूँगा।

वर्मा जी को बैठक में छोड़कर कुँवर साहब भीतर घुसे। उनके भीतर जाते ही वर्मा जी अपनी बाइसिकिल उठाकर वहाँ से गायब हो गए।

जिस समय कुँवर साहब ने सरला के शयन-कक्ष में प्रवेश किया, उस समय सरला स्वप्न में पुरुष-वेषधारी गिरिजा को वनलता समझकर उसका आलिङ्गन कर रही थी।

सरला को एक नवयुवक के साथ आलिङ्गन-बद्धावस्था में देखकर कुँवर साहब का रक्त खौल उठा। उष्ण रक्त के उत्तेजित प्रवाह से उनका मस्तिष्क गरम हो उठा, विचार-शक्ति जाती रही, आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

उन्होंने अपने पॉकेट से पिस्तौल निकालकर पलँग की तरफ़ लक्ष्य किया और दनादन दो-तीन फ़ायर कर दिए। सारे कमरे में धुआँ छा गया।

पीछे के दरवाज़े से निकलकर कुँवर साहब लापता हो गए।

रला का रूप-यौवन अभी घटा न था, वह पूर्ववत् ही था। यदि वह उसका उचित उपयोग करती तो उसे इतनी दिक़्क़तों का सामना न करना पड़ता, लेकिन वह ऐसा करने के लिए तैयार न थी। फलतः पुलिस और जेल-कर्मचारियों के हाथों उसे बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ी।

वे उसे सदैव घेरते और ज़रा भी दम न लेने देते। केवल जेल-कर्मचारियों की ही यह दशा होती तो भी ग़नीमत थी, किन्तु जेल के नीचातिनीच क़ैदी भी ऐसे अवसर पर कसर नहीं करते। वहाँ पहुँचकर यदि कोई स्त्री अपनी इज़्ज़त-आबरू बचाकर रहना चाहे, तो उसे सदैव सतर्क

रहना पड़ता है। इस प्रकार सदैव सतर्क रहना, सदैव भय-भीत बने रहना बड़ा दुखदाई होता है।

सरला का सौन्दर्य, उसका पूर्व इतिहास लोगों को उसे छेड़ने के लिए, उस पर अत्याचार करने के लिए उभाड़ता था। वह इन हरकतों का जिस दृढ़ता से विरोध करती थी, उससे लोग उस पर चिढ़ गए थे और ज़िद्दन् उसे सताते थे।

लगभग दस बजे जेलर सरला को लेकर जेल-ऑफ़िस में पहुँचा। वहाँ दो वर्दीधारी सिपाही पहले से ही तैयार बैठे थे। जेलर ने सरला को उनके हवाले कर कहा—इसे ले जाकर अदालत में हाज़िर करो।

सरला की ओर देखकर एक सिपाही ने अपने दूसरे साथी से इशारा किया और जेलर की आँख छिपाकर धीरे से मुस्कराया। वे सरला को लेकर जेल से बाहर निकले। दोनों सिपाही किनारे-किनारे तथा सरला उनके बीच में चलने लगी।

दूकानदार, ऑफ़िस को जाने वाले बाबू, कुली, खान-सामा—सभी खड़े होकर एक नज़र सरला को देखते—इस सौन्दर्य के भीतर ऐसा हलाहल! बुरी राह पर चलने का यह परिणाम है। भगवान् ऐसी दुष्टाओं से रक्षा करे!

स्कूलों को जाते हुए बालक भी रुककर भयभीत दृष्टि से इस हत्यारिणी के सौन्दर्य को देख लेते और आगे बढ़ जाते। उन्हें यह जानकर सन्तोष होता कि सिपाहियों के

मज़बूत हाथों से छूटकर अब वह किसी को हानि न पहुँचा सकेगी।

जेल की दूषित गन्दी वायु से बाहर की स्वच्छ वायु में आकर सरला को किञ्चित् आनन्द का अनुभव हुआ, किन्तु कचहरी पहुँचते-पहुँचते उसके पैर बुरी तरह से दुखने लगे; उसे पैदल चलने की आदत न थी।

रमानाथ भी दो सिपाहियों के ज़रिए पहले से ही अदालत में पहुँच चुके थे। उन्हें भी जेल में काफ़ी कष्ट था। जेल तथा पुलिस के कर्मचारियों के हाथों तकलीफ़ न उठानी पड़े—यह एक ग़ैर-मुमकिन बात है।

जिस समाज, सोहबत या वातावरण में मनुष्य को रहना पड़े, उसका उसकी प्रकृति पर अवश्य ही असर पड़ता है। रात-दिन चोर-डाकुओं आदि दुश्चरित्रों के संसर्ग में रहने से इन कर्मचारियों का मन तथा मस्तिष्क विकृत हो जाता है। जो कोई भी इनके चङ्गुल में फँस जाय, ये उसे अपराधी ही समझकर, उसके साथ व्यवहार करते हैं। वह निरपराध भी हो सकता है, ग़लती से पकड़ लिया जा सकता है—इस बात की वे कल्पना तक नहीं कर सकते। फलतः किसी भलेमानस के साथ बर्ताव करते समय भी इन कर्मचारियों में रूखेपन तथा अविश्वास का भाव साफ़ दिखाई देता है। उनकी बातों से सदैव अभिमान तथा अधिकार की गुरुता झलकती है।

कोई पूछे, तब कहिएगा कि आज भोजन करने के बाद ही आप मेरे यहाँ चले आए थे। तब से इस समय तक आप बराबर मेरे साथ ही रहे। कुँवर साहब की घबड़ाहट कम करने के लिए वर्मा जी ने उन्हें शराब पिला दी।

अपने एक विश्वस्त कर्मचारी को भेजकर उन्होंने सोने-चाँदी वाले सेठ तथा जेनरल मर्चेण्ट को बुलवाया और आवश्यक बातें बतलाकर रवाना कर दिया।

लगभग आध घण्टे में ये सब कार्य समाप्त कर वर्मा जी कुँवर साहब के साथ घटनास्थल की ओर चले।

कुँवर साहब घटनास्थल पर जाने में घबड़ाने लगे। वे किसी भी तरह वहाँ जाने के लिए तैयार ही न होते थे, लेकिन जब वर्मा जी ने उन्हें सब बातें समझाकर यह दिखलाया कि उनके वहाँ न जाने से मामला बुरी तरह पेचीदा हो जायगा, तब वे राज़ी हो गए।

जिस समय वर्मा जी कुँवर साहब को लिए हुए वहाँ पहुँचे, उस समय घटनास्थल पर लोगों की भीड़ लगी हुई थी।

दिन-दोपहर को बन्दूक़ की आवाज़ सुनकर लोग चौंक पड़े। घर निकलने की किसी की हिम्मत ही न पड़ी। अगर कोई निकलने भी लगा तो उसके यहाँ की औरतों ने उसे पकड़ लिया। लेकिन इसके कुछ ही क्षण बाद जब उन्हें 'ख़ून-ख़ून', 'क़तल हो गया' की आवाज़ सुनाई दी, तब लोग दौड़ पड़े। अपने-अपने घरों से बाहर निकलकर लोगों

ने देखा कि सरला के दरवाज़े पर उसकी नौकरानी विकट स्वर से चीत्कार कर रही है। पाँच मिनट के अन्दर ही लोगों की भीड़ जुट गई।

लोग मनमाने सलाह-मशविरा करने में व्यस्त थे, इसी समय वर्मा जी कुँवर साहब के साथ पहुँच गए। लोगों ने ससम्मान उनके लिए रास्ता दिया। पुलिस को भी ख़बर मिल गई थी। दारोग़ा ज़ालिमसिंह भी क़त्ल की वारदात की बात सुनते ही सदल-बल आ धमके। पुलिस ने लोगों को हटाना शुरू किया, लेकिन लोग वहाँ से इतनी जल्दी कैसे हट जाते। लाचार होकर पुलिस ने गालियाँ तथा धक्के देकर लोगों को हटया।

वर्मा जी तथा कुँवर साहब को साथ लेकर दारोग़ा साहब भीतर घुसे। पलँग पर ख़ून में तर गिरिजा की लाश पड़ी हुई थी। सब लोगों ने पहले उसे पुरुष ही समझा, लेकिन उसे छूते ही उन्हें पता लग गया कि लाश स्त्री की है। इस बात में दारोग़ा साहब बड़े घबड़ाए। मामला उन्हें ज़रा पेंचीदा जान पड़ा। लेकिन कुँवर साहब की बुरी दशा थी। उन्हें मालूम पड़ा, अब वे चक्कर खाकर गिरते ही हैं। प्राण-भय से वे अपने को किसी तरह सँभाले रहे।

कमरे की तलाशी लेने पर सिर्फ़ एक पिस्तौल मिली, जिस पर कुँवर साहब का नाम लिखा हुआ था। और कोई काम की चीज़ न मिली।

कुँवर साहब ने दारोग़ा साहब के सवाल के उत्तर में कहा—यह मेरी ही पिस्तौल है, जो मैं अक्सर यहीं सरला के पास छोड़ जाया करता था। इस घटना के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं जानता, आज बराबर मैं ग्यारह बजे से वर्मा जी के मकान पर ही था।

दारोग़ा ज़ालिमसिंह कुँवर साहब को किसी भी तरह एक बार हिरासत में लेना चाहते थे। ऐसा करने पर उन्हें भारी लाभ की सम्भावना दिखाई देती थी, लेकिन वर्मा जी ने उन्हें धीरे से समझा दिया कि ऐसा करने से उन्हें कोई लाभ न होगा, बल्कि उलटे कुँवर को साफ़ निकाल देने पर उन्हें मुँह-माँगा इनाम मिलेगा। वर्मा जी की बात उन्हें ठीक जँची, इसलिए वह चुप रहकर दूसरी तरह से जाँच करने लगे।

सरला की नौकरानी ने बतलाया—कुछ देर पहले लगभग दस बजे रमानाथ बाबू आकर सरला से कुछ सलाह कर गए थे। रमानाथ बाबू अक्सर सरला के पास आया-जाया करते थे। उनके चले जाने पर सरला ने आदमी भेजकर गिरिजा को बुलवाया।

दारोग़ा साहब के पूछने पर उसने कहा—गिरिजा बराबर यहाँ आया करती थी। लेकिन आज वह मर्द के कपड़े पहनकर क्यों आई, यह मैं नहीं जानती। गिरिजा के आ जाने पर बहुत देर तक दोनों शराब-कबाब उड़ाती रहीं।

इसके बाद गिरिजा को खूब नशा चढ़ गया और सरलाबाई ने उसे सुला दिया। उसके सो जाने पर बाई ने मुझे बाज़ार भेज दिया।

बाज़ार से लौटकर ज्योंही मैंने दरवाज़े पर पैर रक्खा, त्योंही मुझे बन्दूक़ दग़ने की आवाज़ सुनाई दी। मैं दौड़ी, आँगन में आते ही मैंने रमानाथ बाबू को भागते हुए देखा। डरी कि कहीं मेरी मालकिन को कुछ न हो गया हो। मैं दौड़कर मालकिन के कमरे में पहुँची। मैंने देखा, गिरिजा ख़ून से लथपथ पलँग पर पड़ी है और मालकिन घबड़ाई हुई खड़ी हैं। मुझे देखते ही वे मेरे पैर पर गिर पड़ीं और मेरे हाथों पर २००) के दो नोट रखकर उन्होंने कहा कि तुमसे जब कोई पूछे, तब कह देना कि एक मर्द को बाई के साथ सोया हुआ देखकर कुँवर साहब ने ग़ुस्से से गोली चला दी, जिससे गिरिजा तो मर गई और सरला बेहोश हो गई।

इतना कह, वे बेहोश होने का बहाना कर, गिर पड़ीं और मैं मालकिन के कहे मुताबिक़ बाहर आकर हल्ला मचाने लगी। इससे ज्यादा मुझे कुछ नहीं मालूम। सरकार, मुझे न फँसाना। मैंने जो कुछ मालूम था, सब सच-सच बता दिया। इतना कहकर दासी ने अपने आँचल से दो नोट खोलकर दारोग़ा जी को दे दिए।

ठाकुर मनमोहन सिंह असिस्टेंट टीचर म्युनिसिपल-

स्कूल ने अपनी गवाही में कहा—जब गोली चलने की आवाज़ सुनकर मैं घर से बाहर निकला, उसी समय रमानाथ इधर से घबड़ाए हुए साइकिल पर भागे जा रहे थे।

पण्डित रामदीन पाठक ने बतलाया—लगभग आठ दिन पेश्तर मैं अपनी एक कविता लेकर रमानाथ के पास गया था, उस समय वे एक ख़त लिख रहे थे। जाते ही मेरी नज़र उस पर पड़ गई। उसमें गिरिजा का नाम था, और वह सरला को लिखा जा रहा था। उस समय उसका मतलब मेरी समझ में न आया।

सरला के घर के समीप रहने वाली लतीफ़न रण्डी ने बतलाया—मेरी सरला से बड़ी जान-पहचान है। मैं अक्सर उसके यहाँ आया-जाया करती हूँ। लगभग एक पखवारा हुआ, एक दिन सरला ने मुझसे कहा—'बहिन, अगर तू गिरिजा को ज़हर दे दे, तो मैं तुझे दो सौ रुपए दूँ।' जब मैं इस बात पर बिगड़ी, तब उसने कहा—वाह बहिन, तू मज़ाक़ तक नहीं समझती। गिरिजा मेरी सखी है, भला उसे मैं क्यों ज़हर दिलवाने चली? लेकिन दिल्लगी में मेरे मुँह से बड़ी ख़राब बात निकल गई। तुझे मेरी सौगन्ध, इसका किसी से ज़िक्र न करना।

वर्मा जी के सेठ मित्र भी वहीं उपस्थित थे। उन्होंने कहा—अजी गिरिजा ने मुक़दमा चलाकर रमानाथ को भारी झमेले में डाल दिया था, इसीसे उसने यह उत्पात कर

डाला। लेकिन रमानाथ है एकदम छोकरा ; पहले तो ख़ाली थोड़ी-सी बदनामी ही थी, अब तो बेटा को फाँसी के सिवाय और कुछ न होगा। लेकिन अफ़सोस है कि नादानी के लिए एक भलेमानस के छोकरे की जान जाना चाहती है।

दारोग़ा ने पहले मामले को जितना पेचीदा समझा था, वह वैसा न निकला, बड़ी जल्दी साफ़ हो गया। सेठ जी ने जैसा कहा, दरअसल बात वैसी ही थी। गिरिजा पुरुष-वेष में इसलिए सजा दी गई थी कि कुँवर साहब फँस जायँ। निश्चय हो गया कि सरला और रमानाथ ने मिलकर ख़ून किया है। इस समय तक सरला की मूर्च्छा दूर हो गई थी, वह तुरन्त हिरासत में ले ली गई। दारोग़ा जी ने अपने सहकारी को रमानाथ के मकान पर गिरफ़्तारी के लिए भेज दिया। रमानाथ ठीक उसी समय कहीं वाहर से आए थे। ताँगे से उतरकर वे अपना सूट-केस तथा बिस्तर उतार रहे थे।

सहकारी दारोग़ा ने कहा—वाह सरकार ! चालाकी तो आपने .खूब की, लेकिन इससे कुछ नहीं होता। पुलिस बेवक़ूफ़ नहीं है। सब पता चल गया है। आपको मैं गिरफ़्तार करता हूँ।

रमानाथ की समझ में कुछ न आया। उन्होंने कहा—आप मुझे किस जुर्म में गिरफ़्तार कर रहे हैं ?

दारोग़ा—आप मेरे साथ चलिए, सब मालूम हो जायगा।

रमानाथ भी गिरफ़्तार होकर घटनास्थल पर लाए गए। अब केवल एक बात का पता लगाना बाक़ी था। जब तक यह अच्छी तरह न मालूम होजाय कि रमानाथ और सरला में घनिष्टता थी, तब तक यह मामला ख़ूब मज़बूत नहीं होता। बिना घनिष्टता के इस प्रकार के सङ्गीन मामले में दो आदमी शरीक नहीं होते।

सरला की दासी जो कुछ बता चुकी थी, वह काफ़ी न था। पूछने पर लतीफ़न ने कहा—मुझसे सरला की कोई बात छिपी न थी। दोनों में बड़ा प्रेम था, लेकिन मैं क्या जानती थी कि वह ऐसी ख़ूँख़्वार औरत है! सरला ने ही मुझे बतलाया था कि उसमें और रमानाथ में बड़ी गाढ़ी आशनाई थी। यह आशनाई आज की नहीं; उस समय से चली आ रही है, जब सरला यहीं थी और रमानाथ उसका पड़ोसी था।

पण्डित दीनदयाल शर्मा ने इस बात को तसदीक़ करते हुए बताया—मुझे ख़ूब याद है, इन दोनों की आशनाई थी। जिस समय हम लोग सरला को जाति से बाहर कर रहे थे, उस समय रमानाथ ने सरला का पक्ष लेकर बड़ी बहस की थी। बिना अनुचित सम्बन्ध हुए ऐसी भ्रष्टा स्त्री को जाति-च्युत करने से रोकने की चेष्टा कौन करेगा? सरला के जाति-च्युत कर दिए जाने पर रमानाथ उसे लेकर भाग गया और चार-पाँच वर्ष तक ग़ायब रहा।

सरला ने कहा—मैं इस मामले में कुछ नहीं जानती। लेकिन हाँ, गिरिजा मेरे पास सदैव मर्दाने वेष में आया करती थी। आज भी वह आई। बात करते-करते मुझे नींद आ गई। इसके बाद क्या हुआ, मुझे नहीं मालूम। नींद में ही मुझे बन्दूक़ की आवाज़ सुनाई दी। मैंने उठने की कोशिश की, लेकिन उठ न सकी—बेहोश हो गई।

रमानाथ ने कहा—मैं तो बिलासपुर में था ही नहीं—बाहर गया हुआ था। कहाँ गया था, यह मैं अभी नहीं बता सकता; लेकिन वक़्त पर साबित कर दूँगा। मैं चार बजे वाली गाड़ी से आया और जिस समय पुलिस मेरे मकान पर पहुँची, उस समय मैं ताँगे से उतर रहा था।

पूछने पर वे ताँगे का नम्बर न बता सके, लेकिन दिखाए जाने पर ताँगे वाले को पहचान सकने का वादा किया।

दारोग़ा ने कहा—असामी कभी गुनाह क़बूल नहीं करते। वे तो कुछ न कुछ बहाना बताएँगे ही। अच्छा, अदालत में आप लोग सफ़ाई देते रहिएगा। फ़िलहाल आप लोगों को हिरासत में लेने के लिए मेरे पास काफ़ी मसाला है।
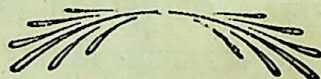
ज महोदय के स्थान ग्रहण कर लेने पर सिपाहियों से घिरी हुई सरला तथा रमानाथ ने प्रवेश किया। सभी आँखें सरला पर उठीं और अटक गईं। उसके उदास मुख, झुकी हुई आँखें तथा उभरे हुए वक्षस्थल पर दर्शकों की दृष्टि थिरकने लगी !!

इसके बाद अदालत की मामूली कार्रवाई शुरू हुई। असेसरों की संख्या गिनी गई। मुन्शी ने आवश्यक काग़ज़ पत्र लाकर साहब के सामने रक्खे। सरकारी वकील भी तैयार हो गए। रमानाथ तथा सरला के वक़ील भी सँभल-कर बैठे।

जज की आज्ञा से रमानाथ कटघरे में खड़े किए गए, और जज ने पूछना प्रारम्भ किया :—

तुम्हारा नाम ?

"रमानाथ"

"जाति ?"

"ब्राह्मण"

"पेशा ?"

"ज़मींदारी"

"उम्र ?"

" २८ वर्ष "

चार्ज-शीट पढ़कर सुनाने के बाद जज ने पूछा—अपना चार्ज-शीट तुमने देखा है ?

"जी हाँ !"

"पुलिस के सामने तुमने जो कुछ कहा है, उसके सम्बन्ध में कुछ कहना है ? तुम्हारा बयान ठीक है या नहीं; सब ठीक-ठीक कहो !"

"मेरा बयान दुरुस्त है !"

इसके बाद सरला कटघरे में लाई गई। उससे भी वही सवालात किए गए। पेशे का ज़िक्र आते ही सरला लज्जा के मारे चुप रह गई। दुबारा पूछे जाने पर उसने कहा—मैं एक ज़मींदार के यहाँ रहती थी।

"वहाँ क्या करती थी ?"

इस प्रश्न के उत्तर देने में भी सरला को भारी कष्ट हुआ, लेकिन करती क्या ? उसने कहा—पहले मैं वेश्या थी। ज़मींदार साहब ने मुझे रख लिया था।

गवाहों ने वही बातें बताईं, जो उन्होंने पुलिस के सामने

कही थीं। इन लोगों की गवाही में जो कुछ कमी थी, उसे सरकारी वकील ने पूरा कर दिया।

अपनी दासी का बयान सुनकर सरला के आश्चर्य की सीमा न रही। इन बातों का मतलब उसकी समझ में बिलकुल न आया। अपनी दासी के साथ वह सदैव अच्छा व्यवहार करती रही। उसके इस प्रकार एकदम नई बातें बतलाने का तात्पर्य वह न जान सकी। लतीफ़न की गवाही पर भी वह चकित हुई। अपनी इस सखी को तो उसने शकल तक न देखी थी।

लगभग पाँच बजे आज की कार्रवाई ख़तम हुई। मुक़दमा दूसरे दिन के लिए मुलतवी किया गया। उन्हीं दोनों सिपाहियों के साथ सरला जेल के लिए रवाना हुई।

इस समय सन्ध्या हो जाने से भीड़भाड़ कम थी। कुछ दूर तक जेल के रास्ते में ज़रा एकान्त भी पड़ता था। दोनों सिपाहियों के बीच में वह चल रही थी। एक ने उसे हलका-सा धक्का दिया, वह दूसरी ओर चली गई। दूसरे ने भी उसे धक्का दिया।

बाएँ चलने वाले सिपाही ने कहा—यार, कैसी परी है?

दाहिने वाले सिपाही की तबीयत फड़क रही थी, उसने कहा—अरे बोलतीं क्यों नहीं, नख़रा तो बहुत करती हो? उसने सरला का हाथ अपने हाथ में लेकर दाब दिया।

सरला से चला न जाता था। उसके पैर दुख रहे थे,

भूख भी ज़ोर की लगी हुई थी। सिपाहियों की बेहूदगी पर उसे क्रोध हो आया। उसने ज़ोर से धक्का देकर अपना हाथ छुड़ा लिया।

दोनों सिपाही सरला से कुछ छेड़छाड़ और करते, किन्तु इसी समय सामने से कुछ लोग आते हुए दिखाई दिए। दोनों सिपाही दूर रहकर अदब से नीची निगाह कर चलने लगे।

सरला जिस समय जेल पहुँची, उस समय दिन डूबने पर था, जेल के भोजन का समय बीत चुका था। वह एक कमरे में अकेले भूखी ही बन्द कर दी गई।
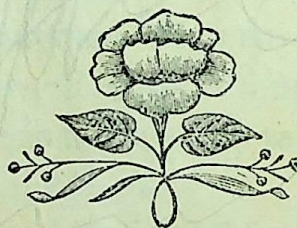
त यह थी, जिस दिन की यह घटना है, उसके एक दिन पूर्व ही से रमानाथ बिलासपुर में न थे। वे पण्डित मनोहरलाल के पास गए हुए थे। 'समाज' को पण्डित जी से यथेष्ट सहायता मिलती थी और इसी सम्बन्ध में सलाह-मशविरा करने के लिए रमानाथ पण्डित जी के पास जाया करते थे। जिस दिन लगभग एक बजे यह घटना हुई, उसी दिन वे चार बजे की गाड़ी से बिलासपुर पहुँचे।

स्टेशन पर मिस्टर वेङ्कटा पैया सहायक सिगनेलर से पण्डित मनोहरलाल की ख़ासी जान-पहचान थी और इसी लिए रमानाथ की भी उनसे जान-पहचान हो गई थी। पण्डित जी के पास जाते समय वे मिस्टर वेङ्कटा पैया से मिले थे और गाड़ी के छूटते तक उनके साथ थे। पण्डित जी के पास

से वापस आते समय भी वे पण्डित जी का एक ख़ास समाचार पहुँचाने के लिए पैया के पास गए थे।

वर्मा जी का दल यद्यपि बड़ी सतर्कता से काम करता था और वर्मा जी भी बड़े दक्ष व्यक्ति थे, किन्तु मनुष्य की शक्ति परिमित होती है, वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता। वर्मा जी को रमानाथ की अनुपस्थिति का पता न चला। इस ओर किसी का ध्यान ही न गया था।

दारोग़ा साहब के पूछने पर रमानाथ ने इन बातों को नहीं बताया, क्योंकि वे जानते थे कि वर्मा जी की ओर से ही यह जाल रचा गया है। सरला की निर्दोषिता का भी उन्हें विश्वास था। ऐसी दशा में पण्डित जी तथा मिस्टर वेङ्कटा पैया उनकी मदद करेंगे या नहीं, इसमें उन्हें सन्देह था। बहुत सम्भव था कि वे लोग वर्मा जी से मिल जाते और उनकी तरफ़ से गवाही न देते, किन्तु शीघ्र ही उनको अपनी यह धारणा बदलनी पड़ी। ज्योंही पण्डित जी को यह समाचार विदित हुआ, वे बिलासपुर पहुँचकर रमानाथ से मिले और सब हाल सुनकर उनको मदद देने के लिए कटिबद्ध होगए।

वर्मा जी ने बहुत कोशिश की, लेकिन पण्डित जी न डिगे। हर प्रकार से यह समझाने की कोशिश की कि उनका रमानाथ से किसी प्रकार का व्यक्तिगत विरोध नहीं है। सार्वजनिक कार्यों में रमानाथ उनका विरोधी है, इसीलिए

वे इस रोड़े को अपने पथ से हटाने का प्रयत्न कर रहे हैं। सार्वजनिक हित के ख़्याल से ही वे ऐसा कर रहे हैं। अपने विरोधी को किसी भी प्रकार नीचा दिखाना, यह प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। विरोध के सामने चुप रह जाना नीचता है, कायरपन है। राजनीति साध्य की ओर लक्ष्य रखने का उपदेश देती है, साधन की ओर नहीं (end justifies the means) इन तर्कों के आधार पर वर्मा जी ने यह सिद्ध किया कि ऐसी दशा में पण्डित जी का भी यही फ़र्ज़ है कि रमानाथ को कुचलने में वर्मा जी की मदद करें। यदि मदद न करें तो कम से कम विरोध तो न करें—उलटे रमानाथ को तो मदद न दें। पण्डित जी सरीखे कुशल राजनीतिज्ञ द्वारा ऐसी भद्दी ग़लती हो और वे रमानाथ को मदद देने लग जायँ, इस बात पर वर्मा जी ने बड़ा आश्चर्य प्रकट किया।

किन्तु पण्डित जी राजनीतिक क्षेत्र में रहकर भी हृदय-हीन नहीं हुए थे। राजनीति को वे साध्य नहीं, साधन समझते थे। वर्मा जी के साथ राजनीति-पङ्क में इतने नीचे जाना उन्हें स्वीकार न था।

वर्मा जी को वे इतना नीच न समझते थे; उनकी तीक्ष्ण बुद्धि, राजनीतिक प्रगल्भता तथा व्यावहारिक कुशलता पर मुग्ध थे। इसीलिए उनके कई ऐबों को जानते हुए भी उनसे सहयोग करने जा रहे थे। थोड़ी-सी बात के लिए आपस में

विरोध खड़ा कर सार्वजनिक जीवन को गँदला करना उन्हें स्वीकार न था, किन्तु आज उन्हें इस राजनीतिज्ञ की नीचता पर आन्तरिक खेद हुआ। उन्होंने रमानाथ को सहायता देने का निश्चय दृढ़ रक्खा और तदनुसार कार्य करने लग गए।

पण्डित जी की सहायता पाकर रमानाथ का पक्ष मज़बूत होगया। वर्मा जी बड़े हताश हुए, दारोग़ा ज़ालिमसिंह भी बड़ी गड़बड़ी में पड़े। इतनी दूर तक जाकर मुक़दमा उठाने में उनकी बड़ी बदनामी थी, केवल उन्हीं की नहीं, पुलिस-विभाग की बदनामी थी। साफ़ था कि पुलिस ने मामला बनाया। कप्तान साहब उन पर बड़े ख़फ़ा थे, यद्यपि उन्होंने सब काम उनकी मञ्ज़ूरी से किया था; लेकिन लाचारी थी। दूसरे दिन की पेशी में रमानाथ पर से इल्ज़ाम उठा लिया गया, पर सरला न छोड़ी गई।

सरला पर ख़ून का नहीं, वरन् ख़ून के काम में रमानाथ की मदद करने का इल्ज़ाम लगाया गया था। जब रमानाथ पर से जुर्म हट गया, तब सरला भी मुजरिम न रही, लेकिन वह घटनास्थल पर उपस्थित थी, इसलिए उस पर शक करने की काफ़ी गुञ्जाइश थी।

उसे छोड़ देना पुलिस ने ठीक न समझा। उसे कुछ दिन हिरासत में रखकर जाँच के लिए अदालत से मुहलत मिली।

सरला को ज़मानत पर छोड़ने के लिए, अदालत से दरख़्वास्त की गई, पर वह ज़मानत पर न छोड़ी गई।

रमानाथ तथा पण्डित मनोहरलाल ने दूसरे ही दिन सरला से मिलने की जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट से इजाज़त ली। सरला से ख़ुद मिलकर सब समाचार जानने के लिए रमानाथ बड़े उत्सुक थे। उन्हें यह तो विश्वास था कि सरला इस मामले में निरपराध है, लेकिन उन्हें इसका भी पूरा सन्देह था कि सरला इस मामले के सम्बन्ध में अवश्य ही कुछ न कुछ समाचार जानती है, जो वह किसी कारण से बता नहीं रही है।

प्रातःक्रिया से निवृत्त होकर रमानाथ पण्डित मनोहरलाल के बँगले पर पहुँचे। वे तैयार ही बैठे रमानाथ की राह देख रहे थे। दोनों आदमी जेल के लिए रवाना हुए।

लगभग दस-बारह आदमी अपने किसी न किसी कुटुम्बी या हित-मित्र से मिलने के लिए उत्सुक जेल के फाटक से पन्द्रह-बीस क़दम की दूरी पर खड़े थे। यहाँ से आगे बढ़ने की उन्हें इजाज़त न थी।

ये सभी लोग बहुत साधारण कोटि के आदमी थे। उनमें दो स्त्रियाँ भी थीं, जिनके वस्त्र इतने फटे-पुराने थे कि ठीक से उनकी लज्जा निवारण भी न हो सकती थी। काम होने में देर देखकर इनमें से अधिकांश लोग आपस में बात-चीत करने लग गए थे। एक दुबला-पतला आदमी अपने

विरोध खड़ा कर सार्वजनिक जीवन को गँदला करना उन्हें स्वीकार न था, किन्तु आज उन्हें इस राजनीतिज्ञ की नीचता पर आन्तरिक खेद हुआ। उन्होंने रमानाथ को सहायता देने का निश्चय दृढ़ रक्खा और तदनुसार कार्य करने लग गए।

पण्डित जी की सहायता पाकर रमानाथ का पक्ष मज़बूत होगया। वर्मा जी बड़े हताश हुए, दारोग़ा ज़ालिमसिंह भी बड़ी गड़बड़ी में पड़े। इतनी दूर तक जाकर मुक़दमा उठाने में उनकी बड़ी बदनामी थी, केवल उन्हीं की नहीं, पुलिस-विभाग की बदनामी थी। साफ़ था कि पुलिस ने मामला बनाया। कप्तान साहब उन पर बड़े ख़फ़ा थे, यद्यपि उन्होंने सब काम उनकी मञ्ज़ूरी से किया था; लेकिन लाचारी थी। दूसरे दिन की पेशी में रमानाथ पर से इल्ज़ाम उठा लिया गया, पर सरला न छोड़ी गई।

सरला पर ख़ून का नहीं, वरन् ख़ून के काम में रमानाथ की मदद करने का इल्ज़ाम लगाया गया था। जब रमानाथ पर से जुर्म हट गया, तब सरला भी मुजरिम न रही, लेकिन वह घटनास्थल पर उपस्थित थी, इसलिए उस पर शक करने की काफ़ी गुञ्जाइश थी।

उसे छोड़ देना पुलिस ने ठीक न समझा। उसे कुछ दिन हिरासत में रखकर जाँच के लिए अदालत से मुहलत मिली।

सरला को ज़मानत पर छोड़ने के लिए, अदालत से दरख्वास्त की गई, पर वह ज़मानत पर न छोड़ी गई।

रमानाथ तथा पण्डित मनोहरलाल ने दूसरे ही दिन सरला से मिलने की जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट से इजाज़त ली। सरला से ख़ुद मिलकर सब समाचार जानने के लिए रमानाथ बड़े उत्सुक थे। उन्हें यह तो विश्वास था कि सरला इस मामले में निरपराध है, लेकिन उन्हें इसका भी पूरा सन्देह था कि सरला इस मामले के सम्बन्ध में अवश्य ही कुछ न कुछ समाचार जानती है, जो वह किसी कारण से बता नहीं रही है।

प्रातःक्रिया से निवृत्त होकर रमानाथ पण्डित मनोहरलाल के बँगले पर पहुँचे। वे तैयार ही बैठे रमानाथ की राह देख रहे थे। दोनों आदमी जेल के लिए रवाना हुए।

लगभग दस-बारह आदमी अपने किसी न किसी कुटुम्बी या हित-मित्र से मिलने के लिए उत्सुक जेल के फाटक से पन्द्रह-बीस क़दम की दूरी पर खड़े थे। यहाँ से आगे बढ़ने की उन्हें इजाज़त न थी।

ये सभी लोग बहुत साधारण कोटि के आदमी थे। उनमें दो स्त्रियाँ भी थीं, जिनके वस्त्र इतने फटे-पुराने थे कि ठीक से उनकी लज्जा निवारण भी न हो सकती थी। काम होने में देर देखकर इनमें से अधिकांश लोग आपस में बात-चीत करने लग गए थे। एक दुबला-पतला आदमी अपने

साथी से कह रहा था—यार, मेरा भाई तो बिना क़सूर सज़ा पा गया। ज़मींदार से एक दिन गोरू के लिए लड़ बैठा। बस, क्या था ? ज़मींदार ने एक चोरी का मामला खड़ा कर उसे सज़ा दिला दी।

दोनों स्त्रियाँ तथा एक युवक—ये तीनों उदास-भाव से जेल के फाटक की ओर देख रहे थे।

सामने ही जेल की इमारत थी। फाटक अभी बन्द था। एक सन्तरी घूम-घूमकर पहरा दे रहा था। तीन-चार और सन्तरी वहीं पर खड़े बातें कर रहे थे, उनमें से एक तम्बाकू मल रहा था।

पण्डित जी की मोटर फाटक के समीप जाकर खड़ी हुई। मोटर के रुकते ही एक सन्तरी आगे बढ़ा। पण्डित जी ने उसे अपना कार्ड दे दिया, जिसे लेकर वह भीतर चला गया। कार्ड मिलते ही जेलर ने आकर पण्डित जी का स्वागत किया।

वे लोग भीतर पहुँचे। पण्डित जी तो ज़रा दूर ही रहे, रमानाथ सरला के समीप बात करने के लिए चले गए। बहुत दिनों में दोनों की मुलाक़ात हुई, किन्तु कैसी विपरीत परिस्थिति में। इन दोनों का सामना जीवन में दो ही बार हुआ था—एक बार उस समय, जब सरला डूब कर मर रही थी, दूसरी बार उस समय, जब उसके फाँसी पर चढ़ने का योग सङ्घटित हो रहा था।

सरला को इस परिस्थिति में देखकर रमानाथ का जी भर आया। बड़ी कठिनता से अपने मन को संयत कर उन्होंने कहा—सरला, मैं अच्छी तरह यह जानता हूँ कि तुम निरपराध हो। मगर तुम्हें इस मामले में जो कुछ भी मालूम हो, सब मुझसे बता दो। नहीं तो तुम्हें छुटकारा दिलाने में बड़ी दिक़्क़त होगी।

सरला—मुझे छुटकारा दिलाने की आप इतनी कोशिश क्यों करते हैं?

रमानाथ कुछ उत्तर न दे सके। बात ज़बान तक आकर रुक गई।

सरला—आपने एक बार और मेरी रक्षा की थी, किन्तु फल क्या निकला, आप जानते हैं? आप मेरी यहाँ से तो रक्षा कर लेंगे, लेकिन यहाँ से छूटकर मैं करूँगी क्या? क्या आप भी चाहते हैं कि मैं सदैव इसी प्रकार एक गड्ढे से निकलकर दूसरे ख़न्दक़ में गिरा करूँ। मेरे लिए फाँसी की सज़ा ही श्रेयस्कर है। आत्मघात का पाप भी न होगा और संसार की यन्त्रणा से त्राण भी पा जाऊँगी।

रमानाथ—सरला, अवश्य ही मैं तुम्हारे सामने अपराधी हूँ, लेकिन अब मैंने निश्चय कर लिया है कि तुम्हें इस प्रकार कष्ट न होने दूँगा।

सरला—आपको मैंने आज तक कभी अपराधी नहीं ठहराया। आप से मेरा सिर्फ़ यही कहना है कि जिसे आप

उपयुक्त आश्रय नहीं दे सकते, उसे जीवदान देकर उसके लिए यन्त्रणा का कारण बनना उचित नहीं—मुझे फाँसी पर चढ़ने दीजिए। अपराधी मैं किसे कहूँ ? सारा दोष मेरे खोटे भाग्य तथा पूर्व करनी का है।

रमानाथ—क़िस्मत को दोष देना व्यर्थ है। तब किसका दोष है, यह भी ठीक-ठीक बताना कठिन है। सम्भवतः दोष मेरा, तुम्हारा या किसी व्यक्ति-विशेष का नहीं है ! अपराधी है परिस्थिति और ऐसी परिस्थिति पैदा करने वाला समाज। हाँ, यह दूसरी बात है कि इस समाज का अङ्ग होने के कारण तथा परिस्थिति को निष्क्रिय भाव से सहन करने के लिए प्रत्येक समझदार तथा शिक्षित व्यक्ति दोषी गिना जा सकता है। इसीलिए मैं स्वतः अपने को तुम्हारे पतन के लिए दोषी समझता हूँ। अगर मैं दृढ़ता दिखाता तो तुम्हारी यह दुर्दशा न होती।

सरला—आपकी बातों को मैं ठीक-ठीक समझ तो नहीं सकती, लेकिन मेरा तो विश्वास है कि यह सब क़िस्मत का खेल है। आप तो मेरी निगाहों में कभी दोषी हो ही नहीं सकते। आप मेरे लिए व्यर्थ ही अपने को दोषी समझकर इस प्रकार ग्लानि न किया करें।

बार-बार ज़ोर दिए जाने पर सरला ने कहा—मैं तो गोली दग़ने के साथ ही बेहोश हो गई थी। इसके पहले जब तक मैं जगती रही, तब तक इस सम्बन्ध की कोई घटना न

घटित हुई। गिरिजा मेरे पास अक्सर पुरुष-वेष में आया करती थी। ऐसा करने का उसने मुझसे यही कारण बतलाया था कि उसे स्त्री-वेष में घर से निकलने में दिक़्क़त होती है, पुरुष-वेष में कोई रोक-टोक नहीं होती। गिरिजा के आने के बाद मुझे नींद आ गई और मैं सो गई। मेरे सो जाने के बाद क्या हुआ, मैं नहीं जानती। मेरा अनुमान है कि मेरे सो जाने के बाद कुँवर साहब आए हों और मुझे एक पुरुष के साथ सोते देखकर क्रोधवश उन्होंने गोली चला दी हो।

यद्यपि गिरिजा का मेरे पास आना-जाना मुझे पसन्द न था, लेकिन उसे मना करते मुझे सङ्कोच होता था। कुँवर साहब से मैंने कभी उसका ज़िक्र न किया था। उसकी बात चलाते मुझे सङ्कोच होता था। मैंने सोचा था, ज़रूरत के वक़्त बता दूँगी।

चाहे मुझे फाँसी हो, लेकिन मैं यह बात किसी से क़बूल कर कुँवर साहब को फँसाना नहीं चाहती। तुम्हारे ज़िद करने पर तुमसे बता दिया। तुम इस बात का ज़िक्र किसी से न करना।

सरला की बातचीत में रमानाथ को मतलब की कोई बात न मिलती। अधिक खोद-बिद करना वे चाहते न थे, क्योंकि सरला की बातों पर उन्हें विश्वास था, सरला उनसे झूठ न बोलेगी।

सरला के अनुरोध की रक्षा करना भी रमानाथ का

काम था। कुँवर साहब के सम्बन्ध में वे किसी से कुछ कह न सकते थे, यहाँ तक कि पण्डित जी तक से उन्होंने वह बात न बतलाई।

सारी बातें सुनकर पण्डित जी खिन्न हुए। लेकिन सरला को अधिक दिनों तक कष्ट न भोगना पड़ा। रमानाथ के छूटते ही ज़ालिमसिंह ने कुँवर साहब को फाँसने की चेष्टा की, पर वर्मा जी की मदद से मामला बढ़ न सका—रुपयों के ज़ोर से मामला दबा दिया गया। लोगों का कहना है कि लगभग ५,०००) रु० की थैली पाकर दारोगा साहब अपनी तथा अपने मुहकमे की बदनामी चुपचाप पी गए। अन्य ऊँचे अफ़सरों को ख़ुश करने में भी बहुत रुपए लगे। फलतः सरला भी साफ़ छोड़ दी गई।

Shiban Krishan Wanzoo
3-1-65
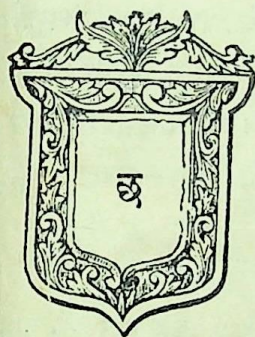
त पर चढ़ते समय एक प्रकार के सुखमय आवेग से रमानाथ का हृदय भर गया। चन्द्रिका की उज्ज्वल आभा ने मानो उनकी सब अभिलाषाओं तथा विचारों को उज्ज्वल बना दिया था। आज उन्हें पृथ्वी, आकाश, घर—सभी में एक प्रकार की नवीनता दृष्टिगोचर हो रही थी।

प्रेम इतने दिनों तक नेपथ्य की आड़ में छुपकर बैठा हुआ था। आज उसने परदा उठा दिया। पेड़, पत्ते, फल, फूल, पशु, पत्ती, राह में होने वाला मन्द कोलाहल—सभी आज सुन्दर और मधुर दिखाई देते थे।

रमानाथ ऊपर जाते समय सोच रहे थे—सरला इस बात को सुनकर कितनी सुखी होगी ? उसकी प्रसन्नता की कल्पना से उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ !

छत पर पहुँचकर रमानाथ ने देखा, सरला स्थिर-दृष्टि से अपने टूटे हुए शिवालय तथा उजड़े हुए फूलोद्यान को देख रही है।

रमानाथ उसके समीप ही बैठ गए। उनके बैठ जाने पर सरला ने कहा—तुम्हारे साथ अधिक दिनों तक मेरा रहना तो हो न सकेगा। मेरा जो कुछ प्रबन्ध करना हो, सो जल्दी से कर दो—विलम्ब करना ठीक नहीं। रमानाथ बहुत देर तक चुप रहे। जो बात कहने के लिए वे अभी तक मन्सूबा बाँध रहे थे, उसे कहने की उनकी हिम्मत न पड़ती थी—ज़बान पर आकर बात रुक जाती थी। अपने समस्त साहस को एकत्र कर अवरुद्ध कण्ठ से उन्होंने कहा—सरला! मैं तुमसे विवाह करूँगा।

सरला—यह कैसा ठट्ठा है?

रमानाथ—नहीं सरला, मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह ख़ूब सोच-विचार के बाद कह रहा हूँ, यह क्षणिक आवेश या मज़ाक़ की बात नहीं है। न जाने कितनी रातें जागकर मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ।

सरला—लेकिन यह सब किस लिए? इसका परिणाम क्या होगा? लोग तुम्हें क्या कहेंगे?

रमानाथ—लोगों के कहने का ख़याल बहुत दूर तक किया, अब मुझे उसकी चिन्ता नहीं है।

सरला—ऐसी बात न करो। मालूम होता है, ग्लनिं

तुम्हारी बुद्धि ख़राब हो गई है। तुम्हारे कहने से कुएँ में कूद सकती हूँ, लेकिन तुम्हारी इस बात को मैं नहीं मान सकती। मैं विवाह नहीं कर सकती—मैं नीच हूँ, पतित हूँ, मुझसे सम्बन्ध करने वाला भी भ्रष्ट हुए बिना न रहेगा। मेरी प्रकृति बिगड़ गई है। मुझे .खुद अपने पर विश्वास नहीं है, तब मैं तुम्हें अपने साथ क्यों ले डूबूँ ? मैं तो गिर ही गई, एक उच्चात्मा को अपने साथ क्यों घसीटूँ ?

रमानाथ—तब क्या तुम मुझे स्वीकार न करोगी ?

सरला—अगर ऐसा कर सकती तो इससे बढ़कर सुख मेरे लिए क्या था ? लेकिन धर्म इस बात को सह न सकेगा। सरला ने रमानाथ का पैर पकड़कर कहा—इस जन्म में मेरे लिए अब कहीं स्थान नहीं है, लेकिन दूसरे जन्म में मैं तुम्हें अवश्य ही प्राप्त करूँगी।

रमानाथ चुपचाप प्रस्तर-मूर्त्ति की तरह बैठे रहे।

सरला ने कहा—मेरा तुम्हारे साथ रहना एकदम अनुचित है। तुम्हारा सब गौरव नष्ट हो जायगा। मैं तुमसे [illegible]र ही रहूँगी। इतना कह सरला चुप हो गई। दोनों बहुत [illegible]र तक यों ही विचार-मग्न बैठे रहे। अन्त में रमानाथ उठ [illegible]ड़े हुए और अपने शयनागार में जाकर पड़ रहे।

दूसरे दिन सबेरे उठकर उन्होंने देखा, घर में कहीं सरला का पता नहीं है। सरला के बिस्तर पर उन्हें एक पत्र मिला, जो इस प्रकार था :—

श्री० चरणेषु !

कल रात को आपके सोने चले जाने के बाद मैं बहुत देर तक आपकी बातों पर विचार करती रही। मुझे निश्चय है कि मेरा आपके निकट रहना या आपसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखना अनुचित है। मानव-हृदय बड़ा दुर्बल होता है, न जाने कब क्या हो जाय ? हृदय को रोक रखना दुस्तर है। मैं तो पतित हूँ, मेरा कुछ न बिगड़ेगा ; लेकिन आपका सर्वनाश करना मुझे स्वीकार नहीं। हृदय को टुकड़े-टुकड़े नोच सकती हूँ, लेकिन आपके अमङ्गल की कल्पना मेरे लिए असह्य है। अब मैं आपसे जीवन भर के लिए बिदा होती हूँ। अपना प्रबन्ध मैं किसी न किसी प्रकार कर लूँगी। मेरे लिए चिन्ता कर दुखी न होइएगा।

दुखिनी,

—सरला